पर्यावरण बोध

कक्षा 9 के लिए भूगोल की पाठ्यपुस्तक

पर्यावरण बोध

(माध्यमिक कक्षाओं के लिए भूगोल की पाठ्यपुस्तक)

IX

एन.० अनन्तपद्मनाभन्

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
अप्रैल 1989 चैत्र 1910

नवीं पुनर्मुद्रण
मार्च 2001 फाल्गुन 1922

P.D. 40T DRH

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् 1989

सर्वाधिकार सुरक्षित

- □ प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- □ इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय, या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- □ इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग	हेली एक्सटेंशन, बनाशंकरी III इस्टेज	डाकघर नवजीवन	32, बी.टी. रोड, सुखचर
नई दिल्ली 110016	बैंगलूर 560085	अहमदाबाद 380014	24 परगना 743179

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा दीपक प्रिन्टर्स एवं पब्लिशर्स, 6/269 डूंगर मोहल्ला, पांडव रोड, शाहदरा, दिल्ली 110032 द्वारा मुद्रित।

प्रस्तावना

यह पुस्तक माध्यमिक कक्षाओं के नवीन पाठ्यक्रम के अनुसार तैयार की गई है। पुस्तक के पहले आधे भाग में पर्यावरण के भौतिक तथा जैविक पक्षों को अध्ययन-क्षेत्र में लिया गया है। तदुपरांत बढ़ती जनसंख्या तथा संसाधनों के लिए निरंतर बढ़ती माँग के संदर्भ में पर्यावरण पर मनुष्य के प्रभाव की चर्चा है। मानचित्रों द्वारा पर्यावरण को समझने में जो सहायता सुलभ होती है, उसका वर्णन भी एक अध्याय में किया गया है। मनुष्य तथा पर्यावरण के आपसी सम्बन्धों को पुस्तक के अन्तिम अध्याय में, दो विभिन्न क्षेत्रों के माध्यम से उभारा गया है। हमारा प्रमुख उद्देश्य यह रहा है कि विद्यार्थी पर्यावरण के अंगों तथा प्रक्रियाओं को समझें और सह-अस्तित्व की भावना से इसके संग रहना सीखें।

यद्यपि मैंने पांडुलिपि को अपने उस कार्यकाल में तैयार किया जब मैं कालिजियेट शिक्षा, मद्रास के निदेशक पद पर था, फिर भी इस पुस्तक का मेरे राजकीय कर्तव्यों से कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। लेखन कार्य प्रायः प्रातःकालीन अवधि में ही सम्पन्न हुआ है। एन०सी०ई०आर०टी० के सामाजिक एवं मानविकी शिक्षा विभाग द्वारा कामराज विश्वविद्यालय, मदुरै में आयोजित कार्यगोष्ठी में पांडुलिपि का अन्तिम रूप दिया गया। मैं गोष्ठी में आमंत्रित शिक्षकों के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने अपने बहुमूल्य सुझावों से पांडुलिपि तथा मानचित्रों के संशोधन में सहायता की है। मानचित्रों एवं रेखाचित्रों को बनवाने तथा उनके शीर्षक आदि तैयार करने में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के भूतपूर्व प्राचार्य डा० के०एल० जोशी जुटे रहे हैं। पांडुलिपि को प्रकाशन योग्य बनाने में हर प्रकार का जो भी योगदान उन्होंने किया, उसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ। मैं एन०सी०ई०आर०टी०, नई दिल्ली के निदेशक का भी आभारी हूँ जिन्होंने इस पाठ्यपुस्तक को तैयार करने का एक और सुअवसर मुझे प्रदान किया।

पुस्तक को सुधारने के लिए प्राप्त सुझावों का मैं स्वागत करूँगा।

एन० अनन्तपद्मनाभन्

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ :

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

विषय-सूची

		पृष्ठ
	प्राक्कथन	iii
	प्रस्तावना	v
	खंड एक : हमारा पर्यावरण	
1.	हमारा पर्यावरण—अंग और प्रक्रियाएँ	1
2.	धरती का स्वरूप	14
3.	जल-परिमंडल	31
4.	पृथ्वी का आवरण—वायुमंडल	40
5.	जैवमंडल	58
	खंड दो : मानचित्र—पर्यावरण बोध में सहायक	
6.	मानचित्र—पर्यावरण बोध के साधन	73
	खंड तीन : पर्यावरण पर मनुष्य का प्रभाव	
7.	हमारी बढ़ती जनसंख्या	87
8.	मानव व्यवसाय	99
9.	हमारे संसाधन	110
0.	प्राकृतिक प्रदेशों में मानव जीवन	134
1.	पर्यावरण पर मनुष्य का प्रभाव	148
2.	क्षेत्र-विकास	158
	परिशिष्ट—I	

1

हमारा पर्यावरण– अंग और प्रक्रियाएँ

पर्यावरण से तात्पर्य किसी वस्तु के पास-पड़ोस से है। उदाहरण के लिए, किसी पौधे का पर्यावरण वे परिस्थितियाँ हैं, जो उसकी वृद्धि में सहायक होती हैं। पंजाब की पर्यावरणीय परिस्थितियाँ गेहूँ की खेती के लिए उपयुक्त हैं। लेकिन तमिलनाडु में कावेरी डेल्टा की पर्यावरणीय परिस्थितियाँ गेहूँ की खेती के लिए उपयुक्त नहीं हैं। पर्यावरणीय परिस्थितियाँ एक स्थान से दूसरे स्थान में बदलती रहती हैं।

हमारे लिए उस पर्यावरण का महत्व सबसे अधिक है, जिसमें मनुष्य रहता है। पृथ्वी मनुष्य का आवास है। मनुष्य पृथ्वी के पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं से अलग-थलग नहीं रह सकता, क्योंकि अपने भोजन और अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह उन पर ही आश्रित हैं। अतः हमारे लिए यह जरूरी हो जाता है कि हम अपनी इस पृथ्वी के सभी पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं के पर्यावरण का अध्ययन करें।

पर्यावरण के तत्व

पृथ्वी सौरमंडल का अनोखा ग्रह है, क्योंकि केवल इसी पर विविध प्रकार के पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं के विकास तथा जीवन के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ पाई जाती हैं। पृथ्वी की इस विशिष्टता के पीछे कई कारक काम करते हैं। इनमें से एक महत्वपूर्ण कारक है, सूर्य से पृथ्वी की दूरी। सूर्य के निकटवर्ती ग्रह शुक्र और बुध की तरह पृथ्वी न तो बहुत अधिक गर्म है और न ही बृहस्पति जैसे सूर्य से दूर-के ग्रहों के समान अत्यंत ठंडी। पृथ्वी के चारों ओर फैले वायुमंडल में आक्सीजन पाई जाती है। आक्सीजन सभी प्राणियों के जीवन के लिए अनिवार्य है। वायुमंडल पृथ्वी के धरातल को ताप की चरम सीमाओं से बचाता है। इसका मतलब यह है कि वायुमंडल के कारण पृथ्वी पर दिन और रात तथा गर्मियों और सर्दियों के तापमान में बहुत ज्यादा अंतर नहीं होता है। तापमान की इसी विशिष्टता के कारण पृथ्वी पर विशाल मात्रा में जल पाया जाता है। पृथ्वी पर तापमान में होने वाले परिवर्तनों के कारण जल ठोस और गैसीय अवस्थाओं में भी मिलता है। तापमान के परिवर्तन से ही पानी का संचरण जलमंडल, स्थलमंडल और वायुमंडल के बीच होता रहता है। पृथ्वी पर जल के कारण ही विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधों और मनुष्य समेत अनेक जीव-जन्तुओं की विविध जातियों का विकास तथा वृद्धि संभव हो सकी हैं। इस प्रकार अपने जैव मंडल के कारण पृथ्वी बिल्कुल अनोखी है।

किसी प्रदेश विशेष में पाए जाने वाले पेड़-पौधे और जीव जन्तु उस प्रदेश के भौतिक

पर्यावरण पर आश्रित होते हैं। इस प्रकार मनुष्य के पर्यावरण के दो मुख्य अंग हैं – एक भौतिक पर्यावरण तथा दूसरा जैव पर्यावरण। स्थल, जल और वायु भौतिक पर्यावरण के तत्व हैं। इसके विपरीत जैव पर्यावरण में पेड़-पौधे और छोटे बड़े सभी जीव-जन्तु सम्मिलित हैं। भौतिक पर्यावरण तथा जैव पर्यावरण एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। भौतिक पर्यावरण के बदलने से जैव पर्यावरण भी बदल जाता है।

गतिशील पर्यावरण

भौतिक और जैव पर्यावरण के तत्वों में सदैव कुछ न कुछ परिवर्तन होता रहता है। स्थलाकृतियों के स्वरूप में कभी अचानक तो कभी धीरे-धीरे परिवर्तन हो जाता है। वायु और जल के परिसंचरण के कारण विभिन्न ऋतुओं की जलवायु की दशाओं में परिवर्तन हो जाता है। भौतिक पर्यावरण में कभी-कभी बहुत बड़े परिवर्तन भी हुए हैं, जिससे पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं की कुछ जातियाँ ही विलुप्त हो गयी हैं। यही नहीं, नए भौतिक पर्यावरण के अनुरूप नई जातियों का विकास भी हुआ है। आज से लगभग साढ़े छः करोड़ वर्ष पूर्व पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं की अनेक जातियाँ बहुत बड़ी संख्या में विलुप्त हो गयीं। ऐसी विलुप्त जातियों के प्रमाण जीवाश्मों के रूप में शैलों की परतों के बीच सुरक्षित मिले हैं। मनुष्य का विकास भी लगभग दस लाख वर्ष पूर्व पर्यावरण में परिवर्तन आने के कारण ही हुआ था।

पृथ्वी के लंबे इतिहास में महाद्वीपों और महासागरों के स्वरूप भी बदलते रहे हैं। आज इस बात के काफी प्रमाण उपलब्ध हैं कि कभी सारे महाद्वीप एक साथ जुड़े हुए थे और फिर धीरे-धीरे वहाँ से खिसककर अपनी वर्तमान स्थितियों में पहुँचे हैं। पृथ्वी की सबसे ऊपर की परत भूपर्पटी में होने वाली हलचलों के कारण प्रमुख स्थलाकृतियों में परिवर्तन आया है। हिमालय के 8000 मीटर से ऊँचे शिखरों पर भी अवसादी शैलों के निक्षेप मिले हैं। ये निक्षेप बहुत समय पहले कभी इस प्रदेश में स्थित उथले सागर में जमा हुए थे। पृथ्वी के लंबे इतिहास में भौतिक पर्यावरण में परिवर्तनों के फलस्वरूप जैव पर्यावरण में भी परिवर्तन होते रहे हैं। पर्यावरण में कुछ परिवर्तन तो प्राकृतिक प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप होते हैं, लेकिन विगत कुछ वर्षों में मनुष्य के क्रियाकलापों से भी पर्यावरण में बदलाव आया है।

वायुमंडल

वायु का आवरण जो पृथ्वी को चारों ओर से घेरे है, वायुमंडल कहलाता है। पर्यावरण के चार प्रमुख तत्वों में से वायुमंडल सबसे ज्यादा गतिशील है, क्योंकि इसमें न केवल ऋतुओं के अनुसार परिवर्तन होता है, अपितु छोटी सी अवधि में भी परिवर्तन हो जाता है। वायुमंडल के संपूर्ण द्रव्यमान का 99% भाग पृथ्वी की सतह से 32 किलोमीटर की ऊँचाई में ही पाया जाता है। वायुमंडल की इसी परत में अधिकतर परिवर्तन होते हैं। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण वायुमंडल पृथ्वी से जुड़ा रहता है।

संघटन

वायुमंडल विभिन्न गैसों का एक मिश्रण है। निचले स्तरों में वायुमंडल का संघटन अपेक्षाकृत एकसमान रहता है। शुद्ध और शुष्क वायु में नाइट्रोजन (78%), आक्सीजन (21%) और ऑरगन (0.9%) होती है। अन्य गैसें जैसे

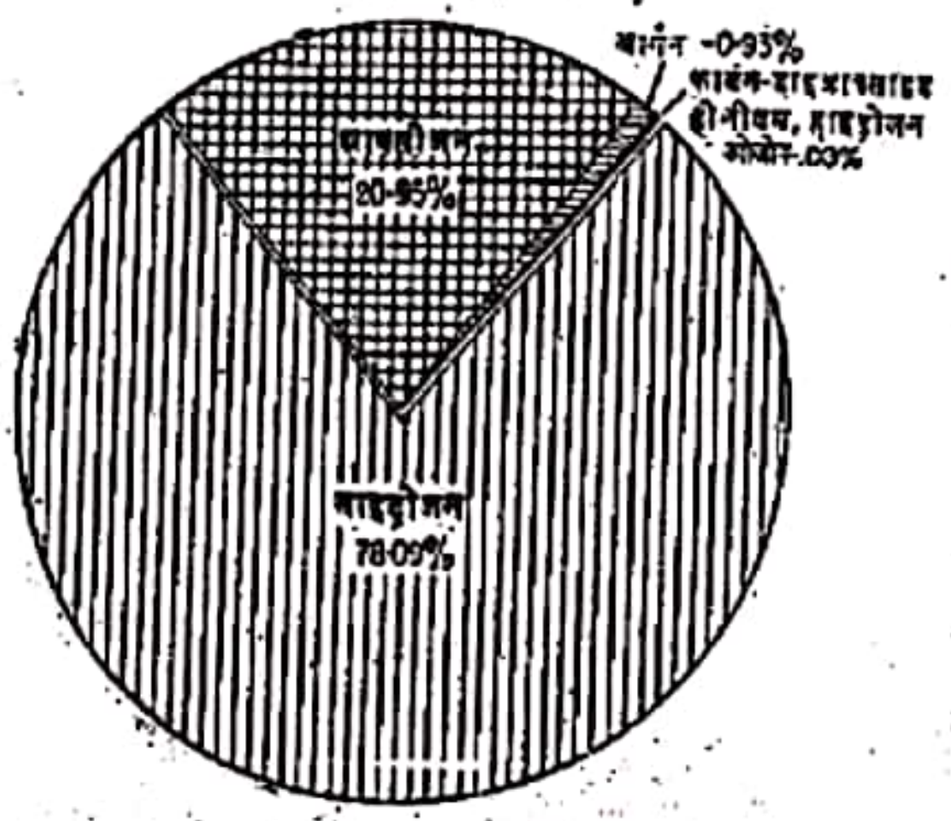

1.1 वायुमंडल का संघटन

वायुमंडल में अनेक गैसें विद्यमान हैं। इनमें से कुछ भारी मात्रा में तथा अन्य बहुत कम मात्रा में पाई जाती हैं। कार्बन डाइआक्साइड महासागरों के ऊपर की अपेक्षा वनों के ऊपर कम क्यों पाई जाती है? महानगरों तथा कारखानों के निकट वायु के संघटन में परिवर्तन क्यों आ जाता है?

कार्बन-डाइआक्साइड, हाइड्रोजन, हीलियम और ओजोन भी वायुमंडल में अल्प मात्रा में विद्यमान हैं। इन गैसों के अतिरिक्त वायुमंडल की निचली परतों में विभिन्न मात्रा में जलवाष्प भी मिलती है। महासागरों, झीलों और अन्य जलाशयों के जल के वाष्पीकरण से वायुमंडल में जलवाष्प आती रहती है। यद्यपि किसी स्थान पर जलवाष्प वायु के संपूर्ण आयतन के 3 से 4% भाग से अधिक नहीं होती, लेकिन वायुमंडलीय प्रक्रियाओं में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। इन गैसों के अतिरिक्त वायुमंडल की निचली परतों में धूल, कार्बन, नमक, परागकण जैसे ठोस कण भी पाए जाते हैं।

संरचना

वायुमंडल का घनत्व ऊँचाई के साथ-साथ घटता जाता है। वायुमंडल में चार विभिन्न परतें हैं। सबसे निचली परत को क्षोभमंडल कहते हैं। इस परत में प्रति 165 मीटर की ऊँचाई पर एक अंश सैल्सियस की औसत दर से वायु का तापमान घटता जाता है। क्षोभमंडल की सीमा विषुवत वृत्त के ऊपर 18 किलोमीटर की ऊँचाई तक तथा ध्रुवों के ऊपर लगभग 8 किलोमीटर तक है। क्षोभमंडल की ऊपरी सीमा को क्षोभ सीमा कहते हैं। मौसम की अधिकांश घटनाएँ क्षोभमंडल में ही होती हैं।

क्षोभमंडल के ऊपर समताप मंडल की दूसरी परत है। समताप मंडल की मोटाई लगभग 50 से 55 किलोमीटर तक है। इस परत में तापमान स्थिर या एकसमान रहता है और उसके बाद ऊँचाई के साथ बढ़ता जाता है। समताप मंडल बादलों तथा मौसम संबंधी घटनाओं से मुक्त रहता

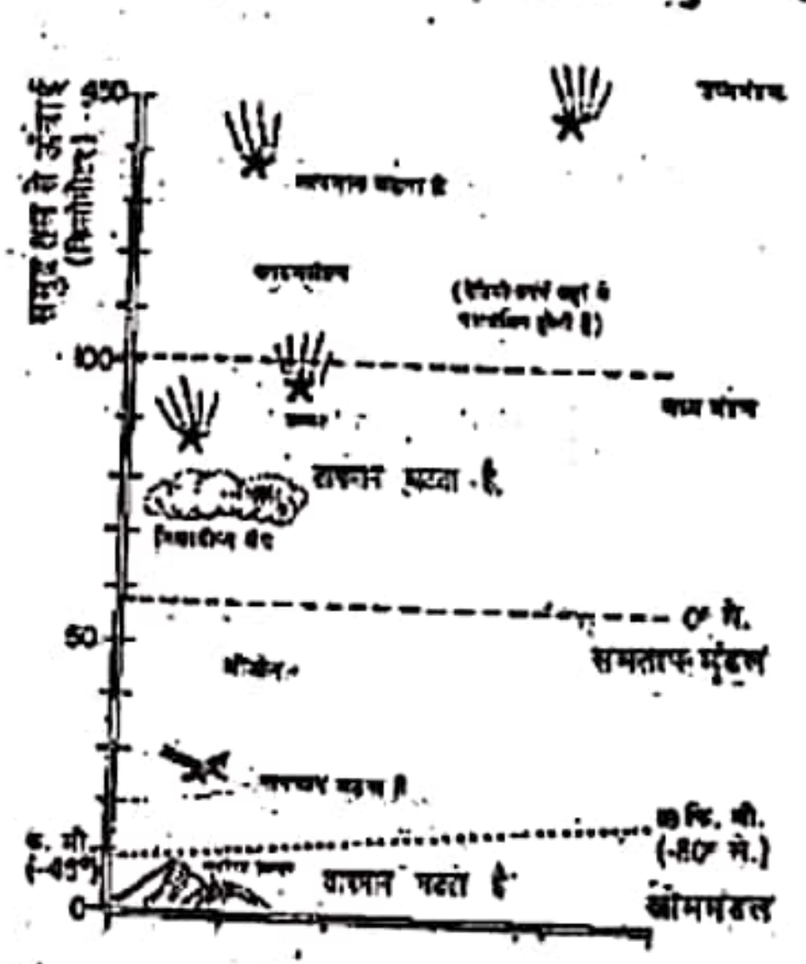

1.2 वायुमंडल की संरचना

वायु मंडल की चार परतों तथा उनकी विशेषताओं को ध्यान से देखिए। भूपृष्ठ से 100 किलोमीटर की ऊँचाई के बाद अंतरिक्ष का विस्तार है। जेट वायुयानों की उड़ान के लिए आदर्श दशाएँ वायुमंडल की किस परत में हैं और क्यों है:

है। अतः समताप मंडल के निचले भाग में जैट वायुयानों के उड़ान भरने के लिए आदर्श दशाएँ हैं। इस परत में पाई जाने वाली ओजोन गैस सूर्य के हानिकारक परावैंगनी विकिरण को अवशोषित कर लेती है।

समताप मंडल के ऊपर मध्य मंडल है। इसके ऊपर ऊष्म मंडल है। इसके निचले भाग में आयनमंडल है इसमें मध्य विद्युत-आवेशित कण होते हैं, जिन्हें आयन कहते हैं। ये कण रेडियो तरंगों को भूपृष्ठ पर परावर्तित करते हैं और इस प्रकार बेतार संचार को संभव बनाते हैं। उष्म मंडल के ऊपरी भाग को बाह्यमंडल कहा जाता है। इसकी कोई सुस्पष्ट ऊपरी सीमा नहीं है। इसके बाद अंतरिक्ष का विस्तार है।

वायुमंडल पर्यावरण का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। वायुमंडल पृथ्वी के लिए कंबल या आवरण का कार्य करता है। इसके कारण सूर्य का परावैंगनी विकिरण भूतल पर नहीं पहुँच पाता। यही नहीं, वायुमंडल के कारण पृथ्वी पर तापमान में बहुत अधिक अंतर भी नहीं हो पाता। सूर्य की किरणें वायुमंडल को एकसमान गर्म नहीं करती हैं। वायुमंडल के असमान रूप में गर्म होने के कारण वायु में परिसंचरण होता है, जिससे पवनें चलती हैं, बादल बनते हैं और वर्षण (वर्षा, हिमपात, ओले, आदि) होता है। पृथ्वी पर जलवायु की दशाओं में विविधता के कारण ही पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं के वितरण में विविधता पाई जाती है।

स्थलमंडल

स्थलमंडल के अंतर्गत भूपृष्ठ पर पाए जाने वाले ठोस शैल पदार्थों की परतें हैं। महाद्वीप और महासागरीय अधस्तल शैल पदार्थों से बने हैं। स्थलमंडल की औसत मोटाई लगभग 100 किलोमीटर है। इसमें भूपर्पटी और ऊपरी मैंटल आते हैं। भूपर्पटी की मोटाई महासागरों की अपेक्षा महाद्वीपों में अधिक है। पृथ्वी की आंतरिक परतों की अपेक्षा भूपर्पटी का घनत्व कम है। भूपर्पटी में जो शैल पाई जाती हैं, उनमें सिलिका और अलुमिनियम की मात्रा अधिक होती है। अतः इसे सिआल भी कहते हैं। सिआल शब्द अंग्रेजी के सिलिका तथा अलुमिनियम शब्द के प्रारंभिक दो-दो अक्षरों को जोड़कर बनाया गया है।

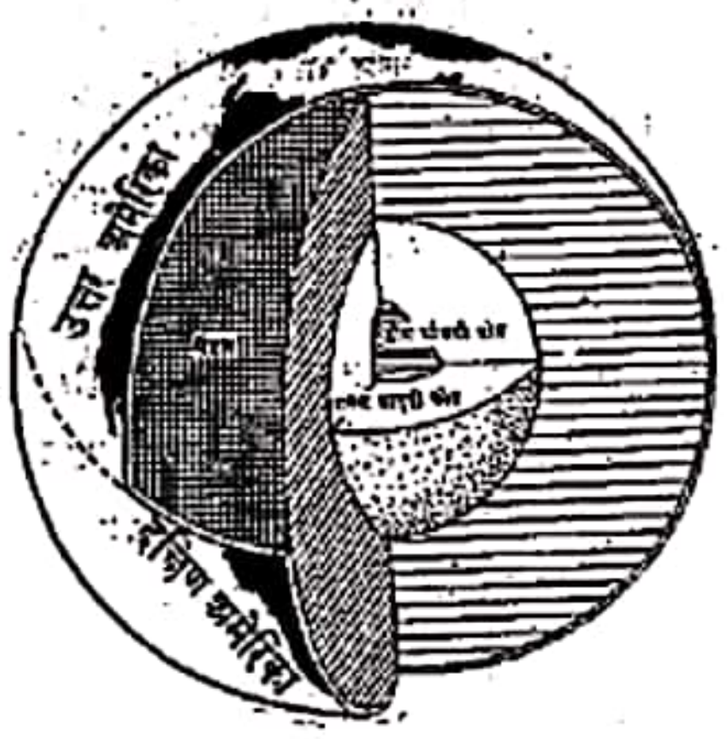

1.3 पृथ्वी के आंतरिक भाग की परतदार संरचना
पृथ्वी की पतली और ठोस पर्पटी सभी प्रकार के जीवों का आधार है। खानों के अनुभवों से पता चलता है कि भूगर्भ के अंदर जाने पर तापमान में वृद्धि होती है।

सिआल के नीचे मैंटल की परत है। मैंटल की गहराई 2900 किलोमीटर तक है। मैंटल के दो भाग हैं – (अ) आंतरिक सिलिकेट परत या सीमा, जिसके पदार्थों में सिलिका और मैग्नीशियम अधिक हैं, (ब) धातुओं और सिलिकेट के मिश्रण से बना परिवर्ती क्षेत्र।

मैंटल के नीचे क्रोड है। क्रोड धातुओं से बनी है। बहुत ऊँचे तापमान तथा भारी दबाव के कारण यह गाढ़े तरल या प्लास्टिक अवस्था में है। पृथ्वी की क्रोड की त्रिज्या लगभग 3400 किलोमीटर है। इसमें निकिल और लोहे की प्रधानता है। अत: इसे निफे भी कहते हैं। निफे शब्द अंग्रेजी के निकिल तथा फैरस शब्दों के प्रारंभिक दो-दो अक्षरों को जोड़कर बनाया गया है। क्रोड में निकिल और लोहे की प्रधानता के कारण पृथ्वी में चुंबक शक्ति है।

शैलों के प्रकार और शैल चक्र

भूपर्पटी विभिन्न प्रकार की शैलों से मिलकर बनी है। शैलों का निर्माण खनिजों से हुआ है। खनिज प्रकृति में पाए जाने वाले ठोस पदार्थ हैं। खनिजों का निश्चित रासायनिक संघटन होता है।

भूपर्पटी के खनिजों में सिलिकेट की अधिकता है। सिलिकेट खनिज दो तत्वों– सिलिका तथा आक्सीजन के योग से बने हैं। शैलों में पाए जाने वाले सिलिकेट खनिजों में फेलस्पार, स्फटिक तथा अभ्रक की अधिकता है।

उत्पत्ति के आधार पर शैलों के तीन प्रमुख वर्ग किए जाते हैं– आग्नेय, अवसादी और कायांतरित।

आग्नेय शैल

जो शैल तरल पदार्थों के जमने से बनी हैं, उन्हें **आग्नेय शैल** कहते हैं। ये शैल मैग्मा के धीरे-धीरे ठंडे होने से बनी हैं। मैग्मा शैलों का तरल रूप है, जिसका उद्भेदन ज्वालामुखियों के द्वारा होता है। पृथ्वी अपनी प्रारंभिक अवस्था में गर्म और तरल थी। धीरे-धीरे वह ठंडी हुई और इसके ऊपर ठोस भूपर्पटी बन गई। पृथ्वी की मूल भूपर्पटी आग्नेय शैलों से बनी थीं। अत: आग्नेय शैलों को प्राथमिक शैल भी कहा जाता है। बेसाल्ट और ग्रेनाइट आग्नेय शैलों के उदाहरण हैं।

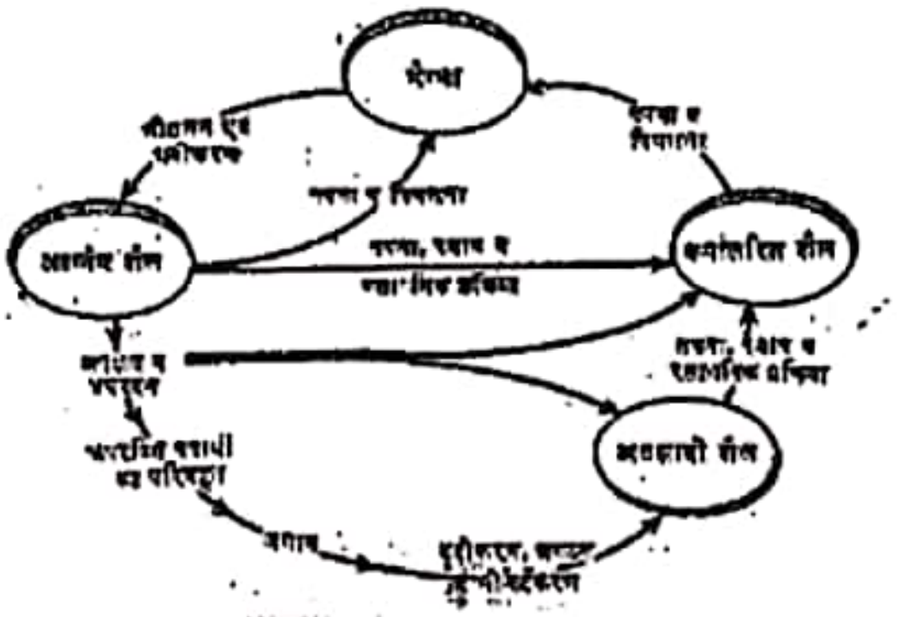

1.4 शैलों के प्रकार और उनका निर्माण

भूपृष्ठ पर तीन प्रकार की शैलों को ध्यान से देखिए। मैग्मा परिवर्तित होकर आग्नेय शैल बन जाता है। आग्नेय शैलों से अवसादी तथा कायांतरित शैलों का निर्माण होता है।

अवसादी शैल

ये उन अवसादों से बनती हैं, जो सामान्यत: सागरों और झीलों के तल पर जमा होते हैं। अवसादों में बजरी, बालू, गाद और चिकनी मिट्टी के कण सम्मिलित होते हैं। अवसाद दबाव और चूने जैसे संयोगी पदार्थों के मेल से ठोस शैलों के रूप में बदल जाते हैं। चूने का पत्थर और बलुआ पत्थर अवसादी शैल हैं। अवसादी शैलों को परतदार शैल भी कहते हैं, क्योंकि ये शैल परतों के रूप में मिलती हैं। इन शैलों के निर्माण के समय अवसादी शैलों की परतें एक दूसरे के ऊपर जमती गयी थीं। पृथ्वी की सतह पर अवसादी शैलों का विस्तार सबसे अधिक है। अवसादी शैलों में जीवाश्म मिलते हैं। जीवाश्म पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं के अवशेष हैं। ये अवशेष अवसादों के साथ जमा हो गये थे।

कायांतरित शैल

ये वे शैल हैं जो आग्नेय और अवसादी शैलों के कायांतरण से बने हैं। अत्यधिक दबाव या गर्मी या दोनों के कारण आग्नेय और अवसादी शैलों का रूप या काया बदल जाती है और फिर इन्हीं शैलों को कायांतरित कहते हैं। अत्यधिक ताप या दबाव के कारण शैलों मे विद्यमान खनिजों का रूपांतरण हो जाता है और नए खनिज बन जाते हैं। यह प्रक्रिया लगभग मुलायम मिट्टी की कच्ची ईंटों को भट्टे में आग से तपाकर पक्की ईंटें बनाने की प्रक्रिया के समान है। संगमरमर एक कायांतरित शैल है, जो चूने के पत्थर के कायांतरण से बना है। बलुआ पत्थर कायांतरित होकर क्वार्टजाइट में बदल जाता है।

स्थल मंडल में विभिन्न खनिज तथा कोयला और खनिज तेल जैसे ईंधन पाए जाते हैं। पौधों के उगने के लिए भूमि पर गृदा की परत का होना अनिवार्य है। पृथ्वी की सतह पर पर्वत, पठार, घाटी और मैदान जैसी अनेक स्थलाकृतियाँ बन गई हैं। नदियों तथा दूसरे कारकों के द्वारा स्थलाकृतियों का स्वरूप धीरे-धीरे बदलता रहता है। पृथ्वी की हलचलों या ज्वालामुखियों के उद्भेदन से भूपृष्ठ में आकस्मिक परिवर्तन भी हो जाते हैं।

किसी क्षेत्र विशेष की स्थलाकृतियों का उपयोग मनुष्य उसकी प्रकृति के अनुसार एक निश्चित सीमा तक ही कर सकता है। उदाहरण के लिए एक पहाड़ी ढलान को तब तक कृषि योग्य नहीं बनाया जा सकता जब तक उसे काफी धन व्यय करके सीढ़ीदार खेतों में न बदल लिया जाए। इसी प्रकार भवनों और महामार्गों का निर्माण भी क्षेत्र की स्थलाकृति के अनुरूप ही होता है। अतः किसी क्षेत्र में भूमि का उपयोग स्थलाकृतियों की प्रकृति, आर्थिक तथा सांस्कृतिक कारकों पर निर्भर करता है। अतएव यदि हम भूमि के समुचित उपयोग का नियोजन करना चाहते हैं तो उस क्षेत्र में स्थलाकृतियों का निर्माण करने वाली प्रक्रियाओं को समझना बहुत आवश्यक है।

जलमंडल

जलमंडल से तात्पर्य जल की उस परत से है जो पृथ्वी की सतह पर महासागरों, झीलों, नदियों तथा अन्य जलाशयों के रूप में फैली है। पृथ्वी की सतह के संपूर्ण क्षेत्रफल के 71% भाग में जल का विस्तार है। इसलिए पृथ्वी को कभी-कभी जलीय ग्रह भी कहते हैं। यह समझा जा सकता है कि महाद्वीप विशाल महासागरों में ऊपर उठे हुए बड़े द्वीप हैं। पृथ्वी के ध्रुवीय प्रदेशों में तथा पर्वतों पर जल बर्फ की चादरों के रूप में पाया जाता है। जल धरातल के नीचे भूमिगत जल के रूप में भी मिलता है। जल, जलवाष्प के रूप में वायुमंडल की निचली परतों में पाया जाता है। यही नहीं पेड़-पौधे और मनुष्य समेत सभी जीव-जन्तु मुख्य रूप से जल से ही बने है। पृथ्वी पर जितना जल उपलब्ध है, उसका 97% भाग महासागरों में है, 2% भाग बर्फ की चादरों के रूप में जमा है और 1% से कम अलवण जल या ताजे जल के रूप में उपलब्ध है।

वायुमंडल में वायु के परिसंचरण के समान ही जलमंडल में भी जल का परिसंचरण होता है। सूर्य की किरणों से महासागरों और झीलों आदि का जल गर्म होकर वाष्प में बदलता रहता है। जल के वाष्प में बदलने की प्रक्रिया को वाष्पीकरण कहते हैं। वाष्पीकरण के द्वारा जल, वायुमंडल की निचली परतों में पहुँचता रहता है। हम जानते हैं कि वायुमंडल में जलवाष्प शीतल होकर जल के

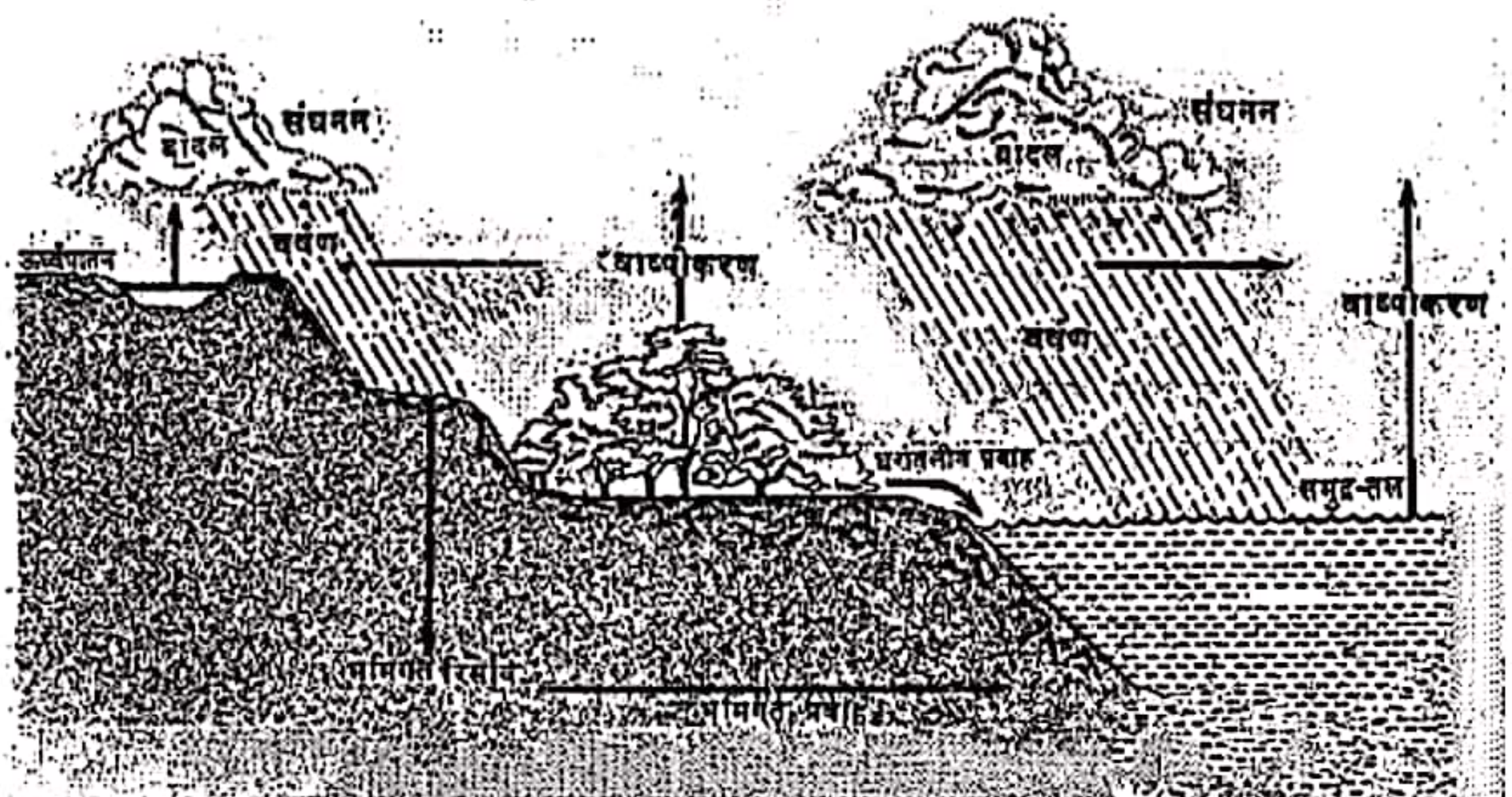

1.5. जल-चक्र

जल निरंतर महासागरों से वायुमण्डल, वायुमण्डल से भूपृष्ठ और भूपृष्ठ से पुन: सागरों की ओर गतिशील रहता है। क्या आप बता सकते हैं कि इस जल-चक्र के लिए कौन सी शक्ति उत्तरदायी है?

अति सूक्ष्म कणों में संघनित हो सकती है। जल के इन्हीं कणों से वादल बनते हैं। बादलों से भूपृष्ठ पर वर्षण होता है। वर्षण में वर्षा, हिमपात आदि सम्मिलित है। भूपृष्ठ पर वर्षा का जल नदियों के रूप में बहकर अंतत: पुन: महासागरों में मिल जाता है। जल के परिसंचरण की इस प्रक्रिया में जीवमंडल के पेड़-पौधे और जीव-जन्तु जल का उपयोग कर लेते हैं। भूपृष्ठ पर जल झीलों वर्फ की चादरों तथा धरातल के नीचे भूमिगत जल के रूप में अस्थायी तौर पर जमा हो जाता है। जलमंडल, वायुमंडल और स्थलमंडल के बीच जल के परिसंचरण को जलचक्र का नाम दिया गया है।

महासागर के जल में सदा परिसंचरण होता है, चाहे वह उर्ध्वाधर (ऊपर से नीचे) हो अथवा क्षैतिज (एक किनारे से दूसरे किनारे की ओर)। महासागरों के जल की सतह पर जब पवनें चलती हैं तब वे अपने साथ जल को बहा ले जाती हैं। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप लहरें और धाराएं बनती हैं। यदि हम महासागरों में चलने वाली धाराओं की दिशाओं को ध्यान से देखें तो उनका भूमंडलीय पवनों की दिशाओं से संबंध स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। सूर्य और चन्द्रमा की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण महासागरों के जल में एक तीसरे प्रकार की गति भी होती है। जल की इस गति को ज्वार-भाटा कहते हैं। सामान्यत: एक दिन में समान अंतर पर दो बार ज्वार-भाटे आते हैं।

परिवहन के लिए महासागरों का बड़ा महत्व है। आधुनिक जलयानों के विकास से विभिन्न देश एक दूसरे से जुड़ गए हैं। समुद्रतटीय प्रदेशों की जलवायु पर महासागरों का समकारी प्रभाव पड़ता है। महासागर वनस्पति और जीव जन्तुओं के

भंडार हैं। महासागर मनुष्य के लिए खाद्य पदार्थ प्रदान करने वाले बहुत बड़े स्रोत हैं। महासागरों के तल में खनिज तेल के बहुमूल्य विशाल भंडारों का पता लगा है। यही नहीं, महासागरों के अधस्तल में अनेक मूल्यवान खनिजों के भंडार भी हैं। भूमि के संसाधनों के साथ-साथ मनुष्य अब अपने भोजन तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए महासागरों की तरफ़ ध्यान देने लगा है।

जैव मंडल

हम जान चुके हैं कि जैव मंडल हमारे ग्रह–पृथ्वी का अनोखा अंग है। जिन जीवों से मिलकर जैव मंडल बना है, ये अधिकतर उसी संकीर्ण क्षेत्र में पाए जाते हैं, जहाँ स्थलमंडल, वायुमंडल और जलमंडल मिलते हैं। भूमि पर अनेक पेड़-पौधे और जीव जन्तु पाए जाते हैं। ये वहीं मिलते हैं, जहाँ स्थलमंडल और वायुमंडल का संपर्क होता है। ठीक उसी प्रकार समुद्र और स्थल के संपर्क में आने वाला क्षेत्र भी जीवों से भरा पड़ा है। ये जीव अधिकतर समुद्री तट और तट के समीपवर्ती उथले सागर के जल में निवास करते हैं। तट से दूर महासागरों के मध्य में अनेक जीव जन्तु रहते हैं। लेकिन ये अधिकतर जीव

1.6 जैव मंडल

जीव केवल जैव मंडल में ही पाए जाते हैं। यह एक संकीर्ण क्षेत्र है। जिसका विस्तार स्थलमंडल, जलमंडल तथा क्षोममंडल के भागों तक सीमित है। इसी में जीवों का प्रजनन और संवर्धन होता है।

महासागरीय जल के ऊपरी भाग मे रहते हैं। महासागरीय जल के ऊपरी भाग को सूर्य का प्रकाश मिलता रहता है और यह वायुमंडल के संपर्क में भी बना रहता है।

जैव प्रक्रियाओं अर्थात् प्रजनन वृद्धि आदि के लिए सूर्य के प्रकाश से ही ऊर्जा मिलती है। जीवों की उत्पत्ति और विकास के लिए 'पदार्थ' (मैटर) खनिजों से प्राप्त होता है। ये खनिज मृदा, भूमि और महासागरों के जल में तथा वायुमंडल की निचली परतों में विद्यमान आक्सीजन तथा कार्बन-डाइआक्साइड के रूप में पाए जाते हैं। अजैव पदार्थों का जैव पदार्थों में रूपांतरण सूर्य की ऊर्जा से ही संभव होता है। इसी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप पृथ्वी पर सूक्ष्म जीवाणुओं से लेकर बड़े वृक्षों, हाथी और विशालकाय ह्वेल जैसे अनेक और विविध प्रकार के जीव पाए जाते हैं। जैव मंडल के विकास और अस्तित्व को पर्यावरण के तत्वों के बीच पदार्थों और ऊर्जा के स्थानांतरण ने ही संभव बनाया है।

प्रत्येक जीव अपने अस्तित्व और विकास के लिए भौतिक दशाओं पर आश्रित है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि किसी क्षेत्र में पाए जाने वाले पेड़-पौधों तथा जीव-जन्तुओं के प्रकारों का सीधा संबंध उस क्षेत्र के भौतिक पर्यावरण से है। प्रत्येक जीव अपने लिए विशेष प्रकार के प्राकृतिक आवास को पसन्द करता है। जैव मंडल के सभी जीव एक दूसरे पर आश्रित हैं। इस प्रकार जैव मंडल के सभी जीव न केवल एक दूसरे पर आश्रित हैं; अपितु वे उस भौतिक पर्यावरण से भी प्रभावित होते हैं, जिसमें कि वे रहते हैं। पारिस्थितिकी (इकालॉजी) वह विज्ञान है जो विभिन्न प्रकार के जीवों तथा उनके भौतिक पर्यावरण के अन्तर्संबंधों का अध्ययन करता है।

मनुष्य जैव मंडल का ही एक अंग है। मानव इतिहास के प्रारंभिक युगों में मनुष्य भी अन्य जीवों की भाँति पूरी तरह से अपने पर्यावरण पर ही आश्रित था। लेकिन बहुत बड़ी जनसंख्या का भरण पोषण, संग्रहण, आखेट और मत्स्य ग्रहण के द्वारा संभव न हो सका। कृषि के विकास से भोजन प्रचुर मात्रा में मिलने लगा। इसी के फलस्वरूप लोग एक स्थान पर बस्तियाँ बसाकर स्थायी रूप से रहने लगे। कोयले, लौह अयस्क तथा अन्य खनिजों के खनन ने औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया। इनसे खेतों और कारखानों का उत्पादन बढ़ा। आस्ट्रेलिया और अमेरिका जैसे नए महाद्वीपों में जाकर मनुष्य ने बस्तियाँ बसाईं। अपने उपकरणों के बल बूते पर मनुष्य पर्यावरण का स्वामी बन बैठा। मनुष्य के सभी क्रियाकलापों का एक मात्र उद्देश्य पर्यावरण से अपनी बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करना हो गया है। विगत 100 वर्षों में जनसंख्या तेजी से बढ़ी है। जिससे मनुष्य की आवश्यकताओं में भी भारी वृद्धि हुई है। इन सबका दुष्प्रभाव भौतिक तथा जैविक पर्यावरण पर स्पष्ट झलकता है। शहरी तथा औद्योगिक क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर पर्यावरण का प्रदूषण हुआ है। पर्यावरण में हुए परिवर्तनों के कारण मनुष्य के अस्तित्व को ही खतरा पैदा हो गया है।

स्वाध्याय

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए –
   (1) पृथ्वी को अनोखा ग्रह क्यों मानते हैं?
   (2) "गतिशील पर्यावरण" की व्याख्या कीजिए।
   (3) वायुमंडल के संघटन का वर्णन कीजिए।
   (4) अवसादी शैल कैसे बनती हैं? ऐसी शैलों के दो उदाहरण दीजिए।
   (5) कौन सी प्रक्रियाएँ जलमडल के जल में परिसंचरण उत्पन्न करती हैं?
   (6) 'जैव मंडल' का अर्थ स्पष्ट कीजिए?
   (7) महासागरों का हमारे लिए क्या महत्व है?
2. अंतर स्पष्ट करिए –
   (1) भौतिक पर्यावरण तथा जैविक पर्यावरण।
   (2) क्षोभमंडल और समताप मंडल।
   (3) सिआल और सीमा।
   (4) आग्नेय और कायांतरित शैलें।
   (5) वाष्पीकरण और संघनन।
3. निम्नलिखित में से प्रत्येक के लिए एक-एक पारिभाषिक शब्द दीजिए–
   (1) वायुमंडल की नीचे की परत, जिसमें प्रायः सभी मौसमी घटनाएँ घटती हैं?
   (2) भूपृष्ठ पर शैल पदार्थों की परत।
   (3) समुद्र, वायु तथा स्थल के मध्य जल का परिसंचरण।
   (4) वह विज्ञान जो विभिन्न प्रकार के जीवों तथा उनके भौतिक पर्यावरण के अंतर्संबंधों का अध्ययन करता है।
   (5) मनुष्य के लिए स्थलमंडल के महत्व का वर्णन कीजिए।
   (6) वायुमंडल के संघटन तथा संरचना का विवरण दीजिए।
   (7) पर्यावरण में जैव मंडल के महत्व की विवेचना कीजिए।

स्वयं करें और खोजें

1. अपने क्षेत्र के पर्यावरण का अध्ययन कीजिए तथा पर्यावरण के विभिन्न अंगों में होने वाले परिवर्तनों में से चार के नाम लिखिए।
2. स्थानीय क्षेत्र का निरीक्षण करके वहाँ के पर्यावरण में मनुष्य के क्रियाकलापों से हुए परिवर्तनों की सूची बनाइए।

3. अपने निकटवर्ती क्षेत्र में शैलों के नमूने एकत्र करके उनके नाम लिखिए।
4. भारत के कुछ प्रमुख भवनों तथा स्मारकों की सूची बनाइये। यह ज्ञात कीजिए कि वे किस प्रकार की शैलों से बने हैं। इनके चित्र एकत्र करने का प्रयत्न कीजिए।

पठनीय पुस्तकें

1. लेक पी० : फिजीकल ज्याग्रफी, मैकमिलन एण्ड कंपनी, कलकत्ता।
2. जॉन पी० कोलार्स एण्ड जान डी० निश्च्युएन : फ़िजीकल ज्यग्रफी –इनवायरनमेंट एण्ड मैन, मैग्राहिल, न्यूयार्क।
3. गोह चेंग लियोंग : सर्टीफिकेट फिजीकल एण्ड ह्यूमन ज्याग्रफी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
4. जोसेफ एम० मोरान तथा अन्य : इंट्रोडक्शन टु इनवायरनमेंटल साइंस, डब्ल्यू० एच० फ्रीमैन एण्ड कंपनी, सेन फ्रांसिस्को।
5. आर०जी० बैरी एण्ड आर०जे० शीरले : एटमस्फीयर, वैदर एण्ड क्लाइमेट, मैथ्यून एण्ड कंपनी लि० ब्रिटेन।

2

धरती का स्वरूप

पृथ्वी का धरातल सब जगह एकसमान नहीं है। वह कहीं ऊँचा है तो कहीं नीचा। कहीं पर्वत और पठार हैं तो कहीं मैदान। पर्वत, पठार और मैदान महाद्वीपों की प्रमुख स्थलाकृतियाँ हैं। स्थलाकृतियों का आकार तथा आकृति न केवल एक स्थान से दूसरे स्थान पर भिन्न हैं, अपितु उनमें समय के अनुसार भी परिवर्तन होते रहे हैं। ये परिवर्तन धीरे-धीरे या आकस्मिक रूप से हुए हैं। भूकंप, ज्वालामुखी के उद्भेदन या बाढ़ से होने वाले परिवर्तनों के बारे में हमारी जानकारी अधिक है। धीरे-धीरे होने वाले परिवर्तनों का क्षेत्र व्यापक होता है और साथ ही वे निरंतर होते रहते हैं।

भूपृष्ठ पर स्थलाकृतियों का निर्माण दो प्रकार की प्राकृतिक प्रक्रियाओं—बाह्य और आंतरिक द्वारा होता है। बाह्य प्रक्रियाएँ वे हैं जो वायुमंडल और जलमंडल में होती हैं, लेकिन इनका प्रभाव भूपृष्ठ पर पड़ता है। आंतरिक प्रक्रियाएँ भूगर्भ में घटित होती हैं और वे भूपृष्ठ में परिवर्तन करती हैं। बाह्य प्रक्रियाएँ धीरे-धीरे कार्य करती हैं। ये उच्च भूमियों को घर्षित करती हैं और इनके पदार्थों को निम्न भूमियों में जमा करती हैं। आंतरिक प्रक्रियाओं से भूपर्पटी में हलचल होती है, जिससे पर्वतों और पठारों का निर्माण होता है। किसी स्थान की स्थलाकृतियों का स्वरूप एक समयावधि में इन्हीं आंतरिक और बाह्य प्रक्रियाओं की पारस्परिक क्रिया द्वारा निर्धारित होता है।

बाह्य प्रक्रियाएँ

भूपर्पटी विभिन्न प्रकार के शैलों से बनी है। शैलों पर ऋतुओं की दशाओं का प्रभाव पड़ता है, जिससे शैल टूट-फूटकर छोटे-छोटे कणों में बदल जाते हैं। ऋतु तत्वों तथा पेड़-पौधों की जड़ों के फैलाव द्वारा शैलों के टूटने फूटने की प्रक्रिया को अपक्षय कहते हैं। तापमान, आर्द्रता तथा वर्षण ऋतु के तत्व हैं। अपक्षय अपने स्थान पर होता है अर्थात् शैल जहाँ पर स्थित हैं, वहीं पर टूट जाते हैं। शैलों के खनिजों के संघटन में रासायनिक परिवर्तन आने से भी अपक्षय होता है। ऐसा तब होता है जब पानी रिसकर शैलों की दरारों और जोड़ों में चला जाता है।

अपक्षय के प्रभाव से भूपृष्ठ पर शैलों के अपक्षयित कणों की एक परत बिछ जाती है। अपक्षयित कणों की यह परत यदि एक लंबे समय तक यथावत् पड़ी रहती है, तो इस परत में धीरे-धीरे रासायनिक और जैविक परिवर्तन होने लगते हैं, जिससे मृदा का निर्माण होता है। इस प्रकार अपक्षय मृदा के निर्माण में सहायक होता है। अपक्षय से अनेक छोटी-छोटी स्थलाकृतियाँ भी बन

2.1 शैलों का अपक्षय

(क) शैलों के जोड़ों में प्रविष्ट होकर जल, उन्हें अपक्षयित करता है। समय बीतने पर ये टूट-फूट जाती हैं।

(ख) पौधों की जड़ें शैलों की दरारों में से होकर अंदर घुस जाती हैं और उन्हें वहीं तोड़-फोड़ देती हैं।

जाती हैं। ऐसी स्थलाकृतियों का निर्माण अपक्षय की तीव्रता तथा प्रकार में अंतर आने से होता है।

सभी पेड़-पौधों के उगने और बढ़ने के लिए मृदा अनिवार्य है। मृदा खनिज पदार्थों तथा जैव पदार्थों से मिलकर बनी है। खनिज पदार्थों में बालू और चीका मिट्टी प्रमुख हैं। जैव पदार्थों में सड़ी गली फूल-पत्तियाँ, मृत जीवों के अवशेष, सूक्ष्म जीवाणु तथा केंचुए सम्मिलित हैं। मृदा भौतिक, रासायनिक तथा जैविक परिवर्तनों के कारण बनती है। ये परिवर्तन मृदा की परत में होते हैं। मृदा के निर्माण को कई कारक प्रभावित करते हैं। इन कारकों में जलवायु, मूल शैलों की प्रकृति, क्षेत्र की स्थलाकृति तथा वनस्पति के प्रकार मुख्य हैं। इन कारकों में भी जलवायु का महत्व सबसे अधिक है क्योंकि जलवायु शैलों के अपक्षय, मृदा की परत में आर्द्रता की मात्रा तथा वनस्पति की प्रकृति को प्रभावित करती है। सामान्यतः मृदा का निर्माण शैलों के अपक्षय से होता है, लेकिन नदी घाटियों और डेल्टा प्रदेशों में जलोढ़ मृदा नदियों द्वारा बहाकर लाए गए पदार्थों के निक्षेप से बनी है।

गुरुत्वाकर्षण से भूपृष्ठ के ढाल पर एकत्र अपक्षयित कण नीचे की ओर खिसकते रहते हैं। इस प्रकार खड़े ढाल पर अपक्षयित कणों के अकस्मात् खिसकने से भूस्खलन की घटनाएँ होती हैं। भूस्खलन वर्षा ऋतु में ज्यादा होते हैं। वर्षा का जल अपक्षयित कणों से होकर नीचे चला जाता है। इससे कणों में रगड़ कम होती है और उनका वजन बढ़ जाता है। भूस्खलन से सड़कें और रेल मार्ग बन्द हो जाते हैं। मकानों और कृषि-भूमि को भारी नुकसान पहुँचता है।

तल संतुलन की प्रक्रियाएँ

शैलों के अपक्षयित कणों को नदी और पवन जैसे गति शील कारक निम्न स्थलों या समुद्र तलों में ले जा कर जमा कर देते हैं। इन प्रक्रियाओं को

तल संतुलन की प्रक्रियाएँ कहते हैं, क्योंकि इनसे उच्चे तथा निम्न भूमियों के तलों का अंतर घटता है। ये प्रक्रियाएँ धरातल को समय की एक लंबी अवधि में सामान्य तल पर लाने का प्रयास करती हैं। तल संतुलन की प्रक्रियाओं के दो अंग हैं—एक निम्नीकरण तथा दूसरा अधिवृद्धि। निम्नीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें अपरदन द्वारा उच्च भूमियों के पदार्थों को हटा दिया जाता है। अधिवृद्धि वह प्रक्रिया है जिसमें निम्न भूमियों में पदार्थों का निक्षेपण (जमाव) होता है। इस प्रक्रिया से निम्न भूमियों का तल क्रमशः ऊँचा उठता जाता है। विभिन्न क्षेत्रों में निम्नीकरण तथा अधिवृद्धि की दोनों प्रक्रियाएँ साथ-साथ चलती रहती हैं।

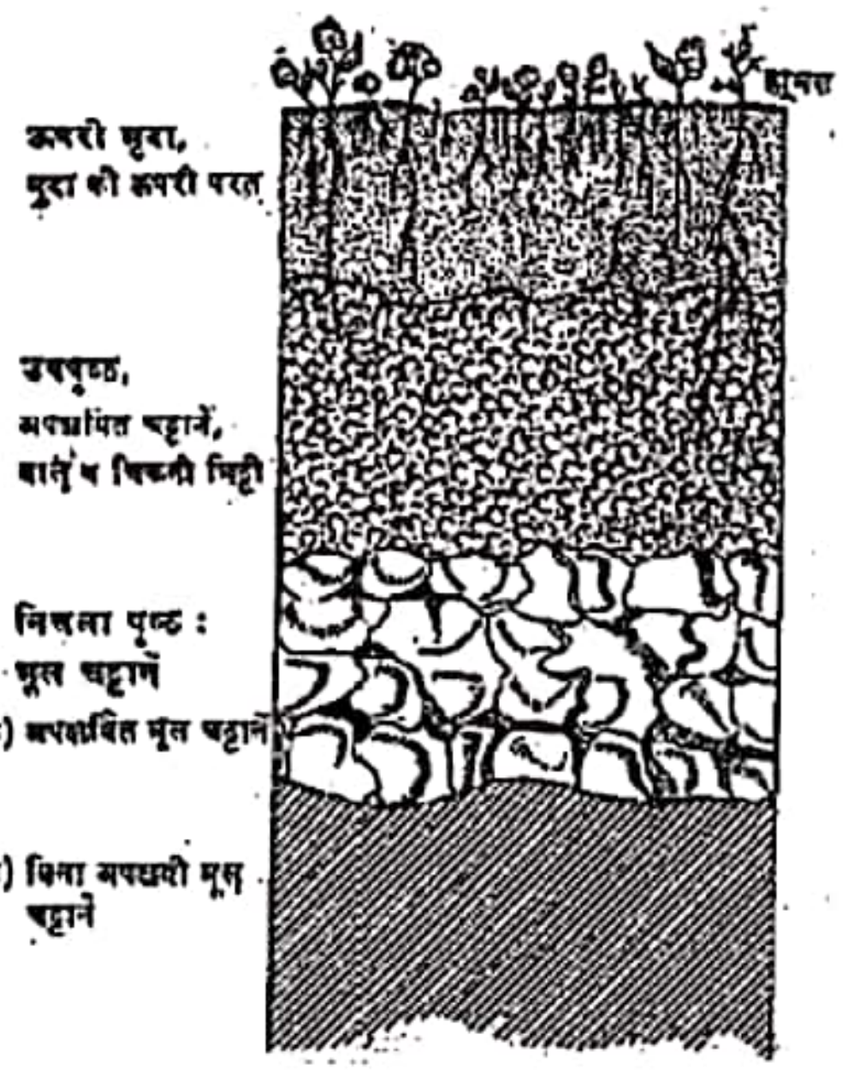

2.2 मृदा-निर्माण

शैलों के मृदा-कणों में बदलने की तीन प्रमुख अवस्थाओं को नोट कीजिए।

तल संतुलन के कारक

नदियाँ, हिमानियाँ, पवनें और लहरें तल संतुलन के प्रमुख कारक हैं। ये कारक भूपृष्ठ पर कार्य करते हैं। ढाल के नीचे की ओर पदार्थों को ले जाने में गुरुत्वाकर्षण बल इन कारकों की सहायता करता है। पवन ढाल के ऊपर भी पदार्थों को ले जा सकती है। लेकिन पवन भी केवल धूल और बालू के बहुत छोटे-छोटे कणों को ही ढाल के ऊपर ले जा पाती है। तल संतुलन के प्रत्येक कारक का महत्व कुछ विशेष क्षेत्रों में ही होता है। हिमानियों का कार्य ध्रुवीय प्रदेशों तथा हिमाच्छादित पर्वतीय भागों तक सीमित रहता है। पवन का कार्य मरुस्थल में प्रधान होता है, क्योंकि वनस्पति के आवरण के बिना धूल और बालू के शुष्क और ढीले कण तेज पवनों द्वारा आसानी से हटाए जा सकते हैं। लहरों का कार्य समुद्रतटीय प्रदेशों में महत्वपूर्ण है। तल संतुलन के कारकों में बहते हुए जल का कार्य सबसे अधिक व्यापक है। इसलिए नदी के कार्य को तल संतुलन की सामान्य प्रक्रिया कहा जाता है। एक प्रदेश विभिन्न ऋतुओं में एक से अधिक तल संतुलन के कारकों से प्रभावित हो सकता है। उदाहरण के लिए अर्द्ध मरुस्थलीय प्रदेश की छोटी वर्षा ऋतु में बहते हुए जल का कार्य प्रधान होता है तथा इसके विपरीत शुष्क ऋतु में पवन का कार्य प्रमुख होता है।

नदियाँ

नदियाँ पर्वतीय या पहाड़ी प्रदेशों से निकल कर, निम्न भूमि प्रदेशों में बहती हुई, समुद्र में जाकर मिल जाती हैं। नदियों में बहते हुए जल की मात्रा ऋतुओं के अनुसार घटती-बढ़ती रहती है। इनमें जल की मात्रा पिघलती बर्फ तथा झरनों से प्राप्त जल से भी प्रभावित होती है। जिन नदियों में

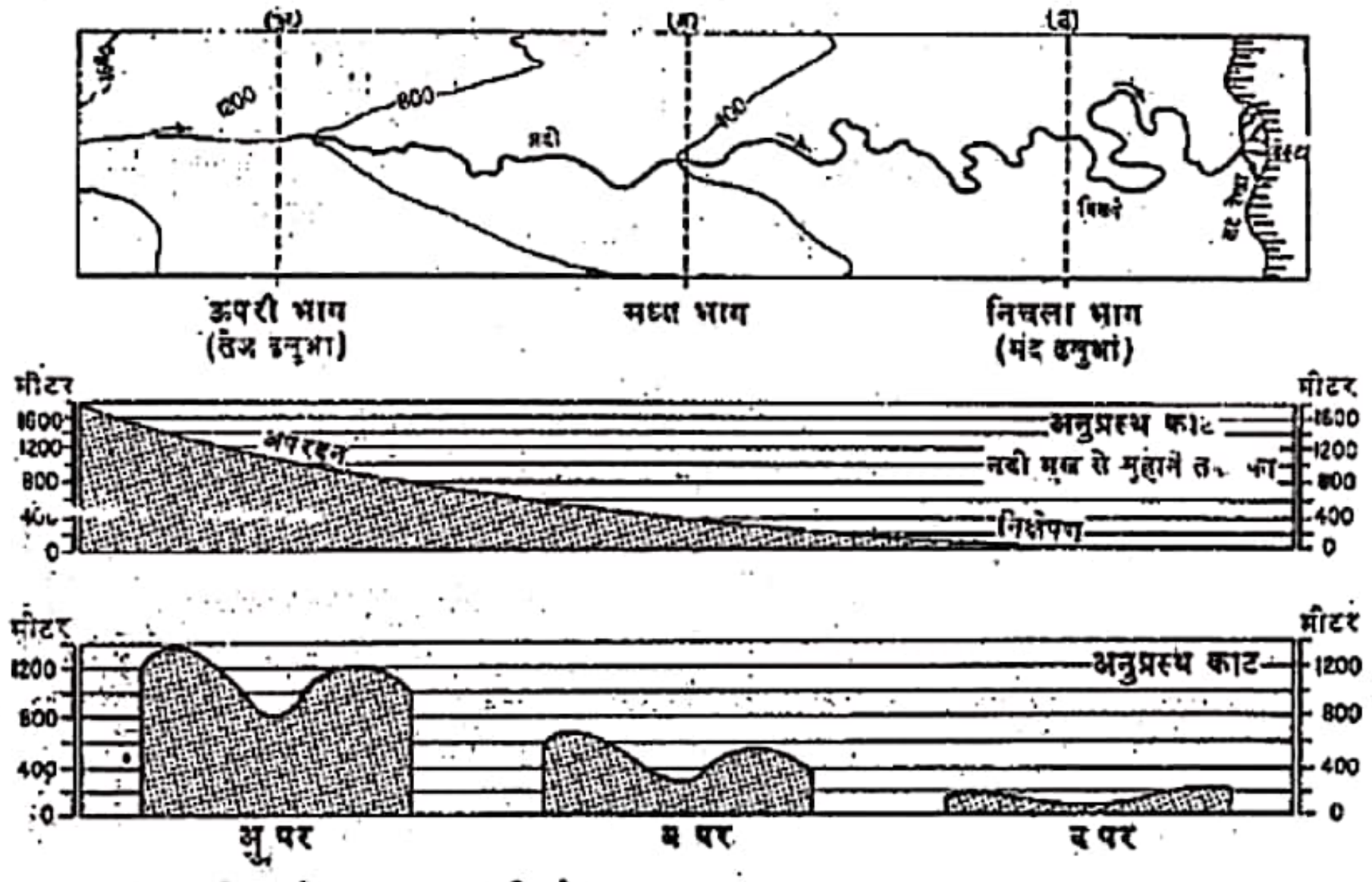

2.3 नदी मार्ग पर अनुप्रस्थ परिच्छेद

उद्गम से लेकर मुहाने तक नदी के ऊपरी, मध्य तथा निचले भागों को देखिए। नदी के मार्ग के तीनों भागों के ढाल तथा स्थलाकृतियों में आपको क्या अंतर दिखाई देता है।

जल का प्रवाह पूरे साल बना रहता है, उन्हें सदानीरा कहते हैं। शुष्क ऋतु में असदानीरा नदियों में जल का प्रवाह नहीं रहता है।

उद्गम से लेकर मुहाने तक नदी के मार्ग को ऊपरी, मध्य और निचले भागों में विभाजित किया जाता है। ऊपरी मार्ग में नदी का जल खड़े ढाल पर बहुत तेज गति से बहता है। अतः नदी मार्ग के इस भाग में अपरदन की क्रिया सबसे ज़्यादा होती है। ऊपरी मार्ग में अपरदन द्वारा नदी घाटी गहरी होती जाती है और महाखड्ड तथा केनियन बन जाते हैं। नदी घाटी के खड़े ढाल अपक्षय से धीरे-धीरे टूट-फूटकर घिस जाते हैं और घाटी अंग्रेजी के 'V' अक्षर की आकृति के समान बन जाती है। घाटी को गहरी करने की क्रिया नदी मार्ग के ऊपरी भाग में अधिक तीव्रता से होती है। नदी घाटी के तल का अपरदन सब जगह एकसमान नहीं होता। घाटी कहीं ज्यादा गहरी हो जाती है और कहीं कम गहरी। इस प्रकार क्षिप्रिकाएँ और जल प्रपात बन जाते हैं। कभी-कभी नदी के मार्ग में कठोर और प्रतिरोधी शैल आ जाते हैं। नदी का जल इन कठोर और प्रतिरोधी शैलों को तो काट नहीं पाता लेकिन नीचे की ओर कम कठोर शैल आसानी से कट जाते हैं। इस प्रकार जल प्रपात बन जाते हैं। जल विद्युत बनाने के लिए जल प्रपातों का उपयोग किया जाता है। नदी के ऊपरी मार्ग में अनेक सहायक नदियाँ मुख्य नदी में आकर मिलती हैं।

मध्य मार्ग में घाटी का ढाल ऊपरी मार्ग की

अपेक्षा कम होता है। यहाँ घाटी की गहराई और अधिक नहीं बढ़ती है। ऊपरी मार्ग की अपेक्षा मध्य मार्ग में जल की मात्रा अधिक होती है। यहाँ घाटी काफी चौड़ी हो जाती है। नदी की धारा चौड़े मैदान के एक छोटे से भाग में बहती है। चौरस मैदान में नदी की धारा बड़े-बड़े मोड़ बनाती है। नदी धारा के इन बड़े-बड़े मोड़ों को विसर्प कहते हैं। बाढ़ के समय नदी की धारा किनारे तोड़कर बहने लगती है और पूरे मैदान का विस्तृत क्षेत्र पानी में डूब जाता है। जब बाढ़ उतरती है तो अवसाद जमा होने लगते हैं। इन अवसादों को जलोढक कहते हैं। नदी धारा के दोनों ओर के मैदान को बाढ़कृत मैदान कहते हैं। यही मैदान नदी में बाढ़ आने पर पानी में डूब जाते हैं।

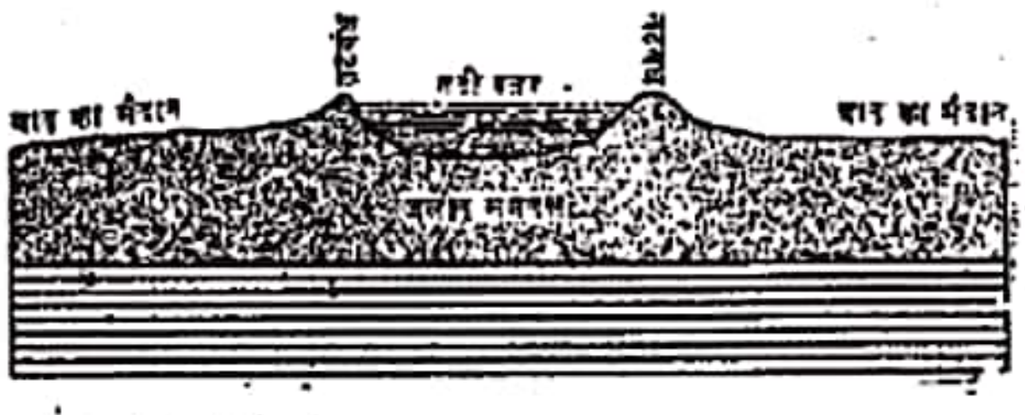

2.4 (क) विसर्प

नदी अपने निचले मार्ग में विसर्प के नाम से प्रसिद्ध बड़े-बड़े मोड़ क्यों बनाती है?

(ख) बाढ़ का मैदान: नदी की धारा के दोनों ओर की निम्न समतल भूमि ही बाढ़ का मैदान है। बाढ़ के समय इस मैदान में पानी भर जाता है।

नदी के निचले मार्ग में घाटी के तल का ढाल सबसे कम होता है। अतः नदी अपने साथ लाए अवसादों को बहाकर ले जाने में असमर्थ रहती है। नदी मार्ग के इस भाग में निक्षेपण की क्रिया प्रधान हो जाती है। अत: नदी की धारा अवरुद्ध हो जाती है और इस प्रकार धारा कई उपनदियों या वितरिकाओं में बँट जाती है। उपनदी, सहायक नदी से भिन्न होती है। सहायक नदी मुख्य नदी में आकर मिलती हैं तथा अपने जल से मुख्य नदी के जल की मात्रा में वृद्धि करती हैं। इसके विपरीत उपनदी मुख्य नदी से एक धारा के रूप में अलग हो जाती है और मुख्य नदी का ही जल बहाकर ले जाती है। नदी के निचले मार्ग में छोटी बड़ी अनेक उपनदियाँ बन जाती हैं। इनका विस्तार जलोढ़ मैदान के बहुत बड़े क्षेत्र में होता है। इस विस्तृत जलोढ़ मैदान को डेल्टा कहते हैं। डेल्टा की आकृति त्रिभुज के समान होती है, जो यूनानी अक्षर डेल्टा(Δ)से मिलती है। डेल्टा जलोढ़ मिट्टी के उपजाऊ निक्षेप होते हैं। विश्व में नील नदी का डेल्टा बहुत प्रसिद्ध है। प्रायद्वीपीय भारत की पूर्व की ओर बहनेवाली गोदावरी, कृष्णा और कावेरी नदियों ने भी डेल्टा बनाए हैं, क्योंकि इन नदियों के निचले मार्ग में ढाल बहुत धीमा है। प्रायद्वीपीय भारत की पश्चिम की ओर बहने वाली नदियाँ डेल्टा नहीं बनाती हैं। इन नदियों के मार्ग का ढाल बहुत तीव्र है। अत: इन नदियों की जल धारा का बहाव बहुत तेज होता है, जिससे ये जलोढ़ अवसादों को ले जाकर सीधे समुद्री अधस्तल में जमा कर देती हैं। नर्मदा और तापी नदियाँ गहरी और संकरी घाटी से होकर सागर में मिलती हैं। नदियों के मुहाने की संकरी और गहरी घाटी को ही ज्वार-नदमुख (एस्चुअरी) कहते हैं।

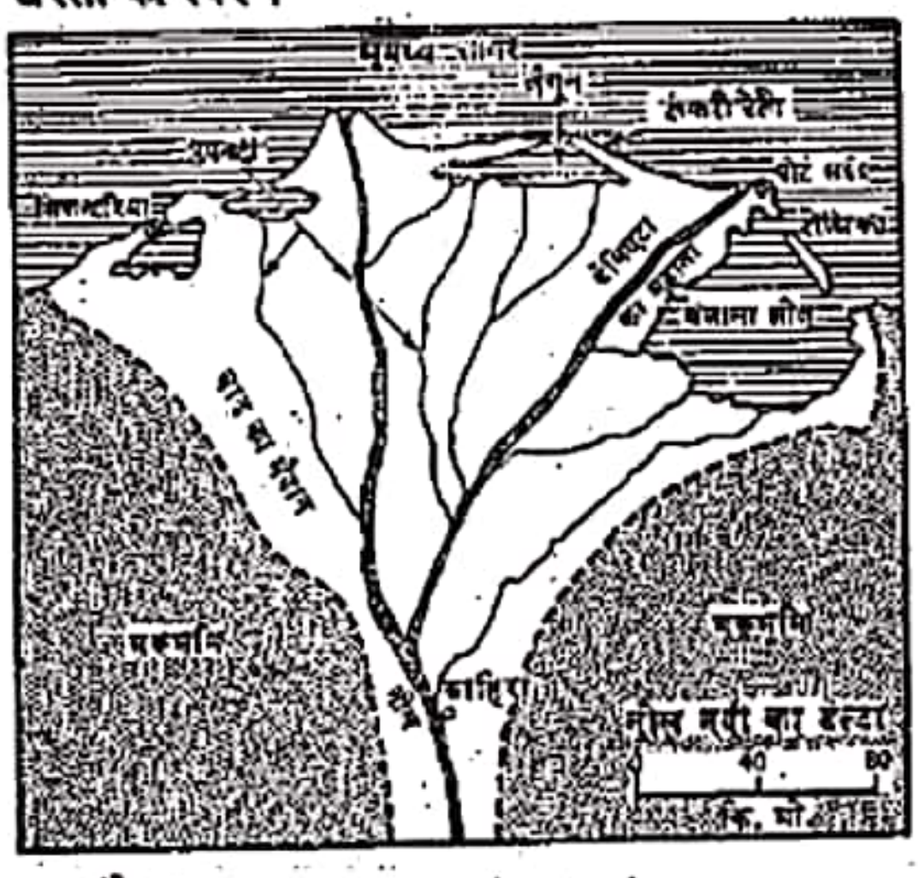

2.5 डेल्टा

नदी अपने साथ बहाकर लाए गए महीन पदार्थों जैसे कीचड़ को मुहाने के पास सागर के जल में जमा कर देती है। महीन पदार्थ सागर के खारी जल में बड़ी जल्दी बैठ जाते हैं। इस प्रकार सागर से भूमि उभरने लगती है। यही डेल्टा है। नदियों के अधिकतर डेल्टा हमारे लिए क्यों महत्वपूर्ण है?

नदी अपने पूरे मार्ग में तीन कार्य करती है—अपरदन, परिवहन और निक्षेपण। अवसादों के परिवहन का कार्य तो नदी के पूरे मार्ग में होता रहता है, लेकिन ऊपरी मार्ग में तीव्र ढाल होने के कारण अपरदन की क्रिया मुख्य है। इसके विपरीत नदी के निचले मार्ग में अवसादों के निक्षेपण की क्रिया प्रधान है, क्योंकि यहाँ ढाल बहुत धीमा होता है। मध्य मार्ग में न तो अपरदन अधिक होता है और न ही निक्षेपण, लेकिन फिर भी दोनों क्रियाएँ चलती ही रहती हैं। वास्तव में स्थल खंडों को घर्षित करने में नदियों की सामर्थ्य बहुत अधिक होती है। गंगा जैसी नदियाँ प्रति दिन 10 लाख टन अवसाद बहाकर ले जाती हैं। ऐसा अनुमान है कि वर्तमान अपरदन की दर से संयुक्त राज्य अमेरिका में समुद्र तल से ऊँची भूमि एक करोड़ बीस लाख वर्षों में घर्षित होकर समुद्र तल के बराबर हो जाएगी। क्या यह संभव है?

भूमिगत जल

चूने के पत्थर जैसे घुलनशील शैलों के क्षेत्र में तल संतुलन के कारक के रूप में भूमिगत जल महत्वपूर्ण कार्य करता है। के पत्थर में कैल्सियम कार्बोनेट होता वायुमंडल से कार्बन-डाइआक्साइड वर्षा के में मिल जाती है। जब चूने के पत्थर वाले शैल वर्षा होती है तो वर्षा के जल से चूने के पत्थ में विद्यमान कैल्सियम कार्बोनेट में रासायनिक क्रिया होती है। इसके परिणामस्वरूप घुलनशील कैल्सियम-बाइकार्बोनेट बन जाता है। चूने के पत्थर के शैलों की सतह पर होकर जहाँ-जहाँ से वर्षा का जल बहता है वहाँ की शैल घुल जाती है और नालियाँ सी बन जाती हैं। मेड़ और नालियों वाले ऊबड़-खाबड़ धरातल को **क्लिंट** या **लेपीज** कहते हैं। यदि कहीं पर वर्षा का पानी जमा हो जाता है तो वहाँ चूने के पत्थर के घुल जाने से गड्ढे बन जाते हैं। इन गड्ढों को **घोल-रंध्र** कहते हैं। चूने के पत्थर की शैलों के जोड़ों और दरारों में जल के रिसने से भूमि के नीचे **कंदराएँ** बन जाती हैं। भूमिगत कंदराएँ कुछ-कुछ गर्म रहती हैं, अतः वहाँ पानी भाप बनकर उड़ता रहता है और पानी में घुला चूना विभिन्न आकृतियों में जमा होता जाता है। कंदराओं की छत से चूने के जमाव से नीचे की ओर लटकती हुई जो आकृति बनती है, उसे **स्टैलेक्टाइट** कहते हैं। इसी प्रकार कंदरा के तल पर ऊपर की ओर उठती हुई चूने के जमाव से जो आकृति बनती है, उसे **स्टैलेग्माइट** कहते हैं। कुछ कंदराओं में स्टैलेक्टाइट तथा स्टैलेग्माइट बढ़ते-बढ़ते एक दूसरे से मिल जाते हैं और इस तरह उनके मिलने से स्तंभ बन जाते हैं।

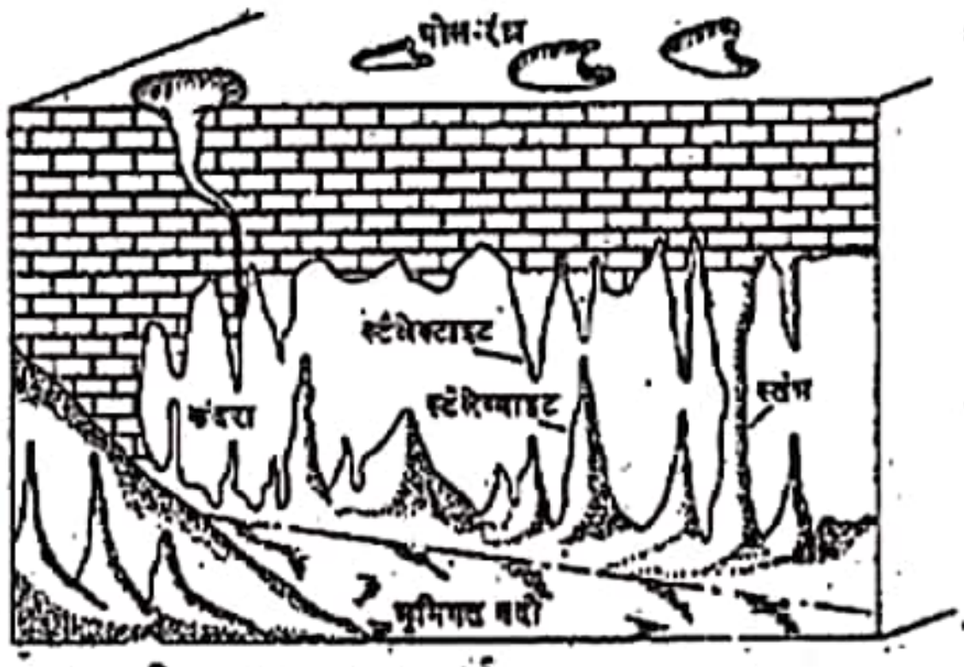

2.6 भूमिगत जल एवं कार्य

चूने का पत्थर एक ऐसी शैल है जो जल में घुल जाती है। ऐसी शैलों में से होकर जब भूमिगत जल बहता है, तब कुछ विशेष प्रकार की स्थलाकृतियाँ बन जाती हैं। आरेख में इन स्थलाकृतियों को पहचानिए।

हिमानियाँ

बर्फ के गतिशील ढेर को हिमानी कहते हैं। ध्रुवीय क्षेत्रों और उच्च पर्वत श्रेणियों में हिमानियाँ पाई जाती हैं। इन भागों में सदैव बर्फ और हिम का आवरण बना रहता है। जिस सीमा के ऊपर सदैव हिम और बर्फ जमा रहता है, उसे हिम रेखा कहते हैं। विषुवतीय प्रदेश में हिम रेखा समुद्रतल से 5500 मीटर की ऊँचाई पर होती है। विषुवत वृत्त से दूर जाने पर हिम रेखा की ऊँचाई क्रमशः घटती जाती है। ध्रुवीय प्रदेशों में हिम रेखा समुद्र तल पर ही होती है।

हिमानी दो प्रकार की होती हैं—महाद्वीपीय हिमानी तथा पर्वतीय हिमानी।

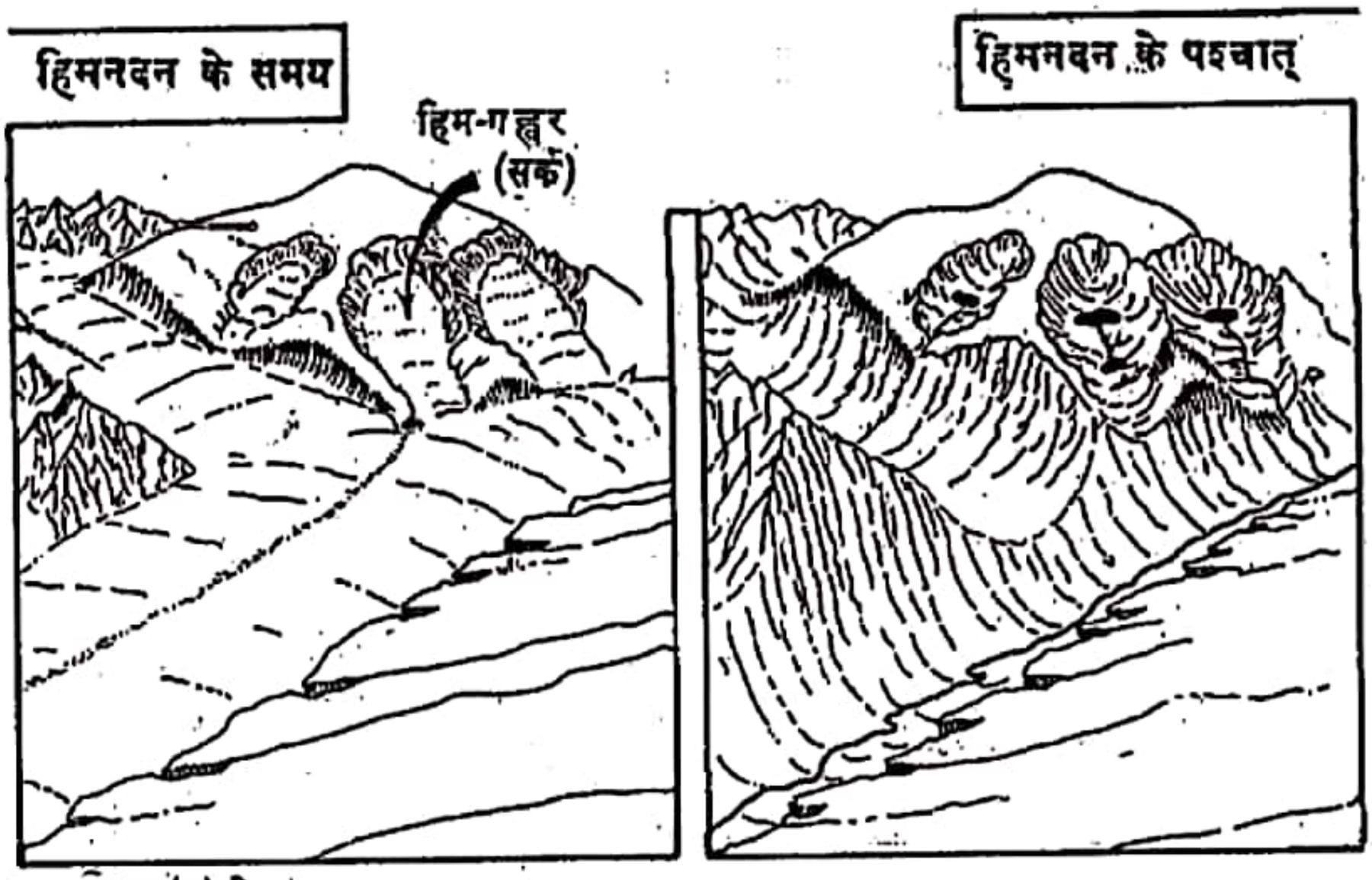

2.7 (क) हिम गह्वर

सभी घाटी हिमानियाँ हिम गह्वरों से उत्पन्न होती हैं और पूर्व स्थित नदी-घाटियों में से होकर नीचे की ओर खिसकती हैं। हिमनदन के बाद हिम गह्वर का तल अपेक्षाकृत सपाट तथा उसके चारों ओर खड़े ढाल क्यों बन जाते हैं?

2.7 (ख) हिमनदित घाटी

घाटी-हिमानी द्वारा हिमोढ़ों के निक्षेपण तथा V आकार की घाटी के निर्माण कार्य पर ध्यान दीजिए।

महाद्वीपीय हिमानी

महाद्वीपीय हिमानियाँ ध्रुवीय प्रदेशों में मिलती हैं। इन क्षेत्रों में पूरा का पूरा विशाल प्रदेश बर्फ की मोटी चादरों से ढका रहता है। विशाल अंटार्कटिका महाद्वीप इसी प्रकार की बर्फ की मोटी चादरों से ढका है। महाद्वीपीय हिमानियों का विस्तार सदा एक जैसा नहीं रहता। पृथ्वी के गर्म होने पर महाद्वीपीय हिमानियाँ किनारों की ओर से पिघलने लगती हैं और उनका विस्तार घटता जाता है। आज से दस लाख वर्ष पूर्व पृथ्वी अपेक्षाकृत काफी ठंडी थी, तब यूरोप, एशिया तथा उत्तर अमेरिका के उत्तरी भागों में महाद्वीपीय हिमानियों का विस्तार था।

पर्वतीय हिमानी

पर्वतीय हिमानियाँ हिमालय और आल्प्स जैसे ऊँचे पर्वत प्रदेशों में पाई जाती हैं। ऐसे प्रदेशों में बर्फ हिम गड्ढों में तथा पर्वतशिखरों की निकटवर्ती घाटियों के ऊपरी भागों में जमा हो जाता है तथा वहीं से बर्फ के ढेर घाटियों में नीचे की ओर खिसकने लगते हैं। घाटी में इस प्रकार के खिसकते हुए बर्फ के ढेर को **घाटी हिमानी** कहा जाता है। घाटी के तल तथा किनारों की रगड़ से ठोस बर्फ के खंडों की गति बहुत धीमी हो जाती है। घाटी हिमानियों की औसत गति प्रतिदिन कुछ सेंटीमीटर ही होती है। घाटी हिमानियाँ सामान्यत: छोटी होती हैं। उनकी लंबाई 100 किलोमीटर से अधिक नहीं होती। जैसे ही घाटी हिमानियाँ खिसककर नीचे की ओर कुछ गर्म भागों में पहुँचती हैं, तो वे पिघलने लगती हैं और नदियों का रूप ले लेती हैं। हिमालय की नदियाँ जैसे गंगा और यमुना घाटी हिमानियों से निकली हैं।

पर्वतीय प्रदेशों में हिमपात होने पर हिम, शिखरों के पास वाले गड्ढों में जमा हो जाता है। जैसे-जैसे हिम का जमाव बढ़ता जाता है, वह दाब के कारण बर्फ में बदल जाता है। पर्वतीय प्रदेश में हिमानियों द्वारा किए गए अपरदन से आराम कुर्सी के आकारवाले गड्ढे बन जाते हैं, जिन्हें **हिमगह्वर** कहते हैं। हिमगह्वरों का तल अपेक्षाकृत सपाट होता है और चारों ओर खड़े ढाल होते हैं। हिमगह्वरों में बर्फ जमा होती रहती है। किनारे के शैलों के अपक्षय से हिमगह्वरों का आकार क्रमश: बढ़ता जाता है। हिमगह्वर सामान्यत: आकार में छोटे होते हैं। इनका व्यास कुछ मीटर से लेकर कुछ किलोमीटर तक होता है।

कुछ पर्वतीय प्रदेश कभी बहुत पहले हिमानियों से ढके थे। आज हिमानियों की बर्फ पिघलने से उस प्रदेश के हिमगह्वरों में झीलें बन गई हैं, जिनसे नदियाँ निकलती हैं।

हिमानियों का उद्गम हिमगह्वरों से होता है। यहाँ से वे पहले से विद्यमान नदी घाटियों में खिसकने लगती हैं। हिमानियों के बर्फ के विशाल परिमाण के कारण घाटी की आकृति बदल जाती है। हिमानी 'V' आकार की नदी घाटी के दोनों ओर से ऊपर होकर आगे बढ़ती है। हिमानी बड़ी मात्रा में शैल खंडों को लेकर चलती है, जो हिमानी के तल में जमा होते जाते हैं। हिमानी के गतिशील होने से नदी की 'V' आकार की घाटी घर्षित होकर 'U' आकार की घाटी में बदल जाती है। 'U' आकार की घाटी का तल चौड़ा और सपाट होता है तथा किनारे खड़े। पर्वतीय प्रदेशों में 'U' आकार की घाटियों का होना इस बात का प्रमाण है कि भूतकाल में ये प्रदेश घाटी हिमानियों से ढके थे।

जब हिमानी नीचे की ओर खिसकती हुई अपेक्षाकृत गर्म भागों में पहुँचती है, तो इसकी बर्फ पिघल जाती है और इसके साथ आए सारे पदार्थ निक्षेपित हो जाते हैं। इस प्रकार के निक्षेपों को **हिमोढ** कहते हैं, जिनमें विभिन्न आकार-प्रकार के शैल खंड और कण होते हैं।

पवन

तल संतुलन के कारक के रूप में पवन का कार्य ढाल के नीचे की ओर बहनेवाली नदियों तथा हिमानियों से भिन्न है। पवन बहुत बड़ी मात्रा में धूल और बालू के छोटे-छोटे कणों को सैकड़ों किलोमीटर की दूरी तक सामान्य ढाल के ऊपर की ओर भी ले जा सकती है। मरुस्थलीय और अर्द्ध मरुस्थलीय क्षेत्रों में ही पवन का कार्य प्रधान होता है।

वनस्पतिरहित भूभाग पर पवनें बिना किसी रुकावट के चलती हैं तथा शुष्क धूल तथा बालू कणों को उड़ाती रहती हैं। बालू के कण भारी होने के कारण वायुमंडल के निचले स्तरों में ही उड़ते हैं, परन्तु धूल के कण हल्के होने के कारण वायु में अधिक ऊँचाई तक लटके हुए दूर तक चले जाते हैं।

पवन के साथ उड़नेवाले बालू कण अपरदन का काम करते हैं। ये बालू कण पवन के मार्ग में आने वाले अवरोधों से टकराकर काट-छाँट करते हैं। पवन चारों दिशाओं से चल सकती है, इसलिए अपरदन क्रिया का प्रभाव भी सभी दिशाओं में हो

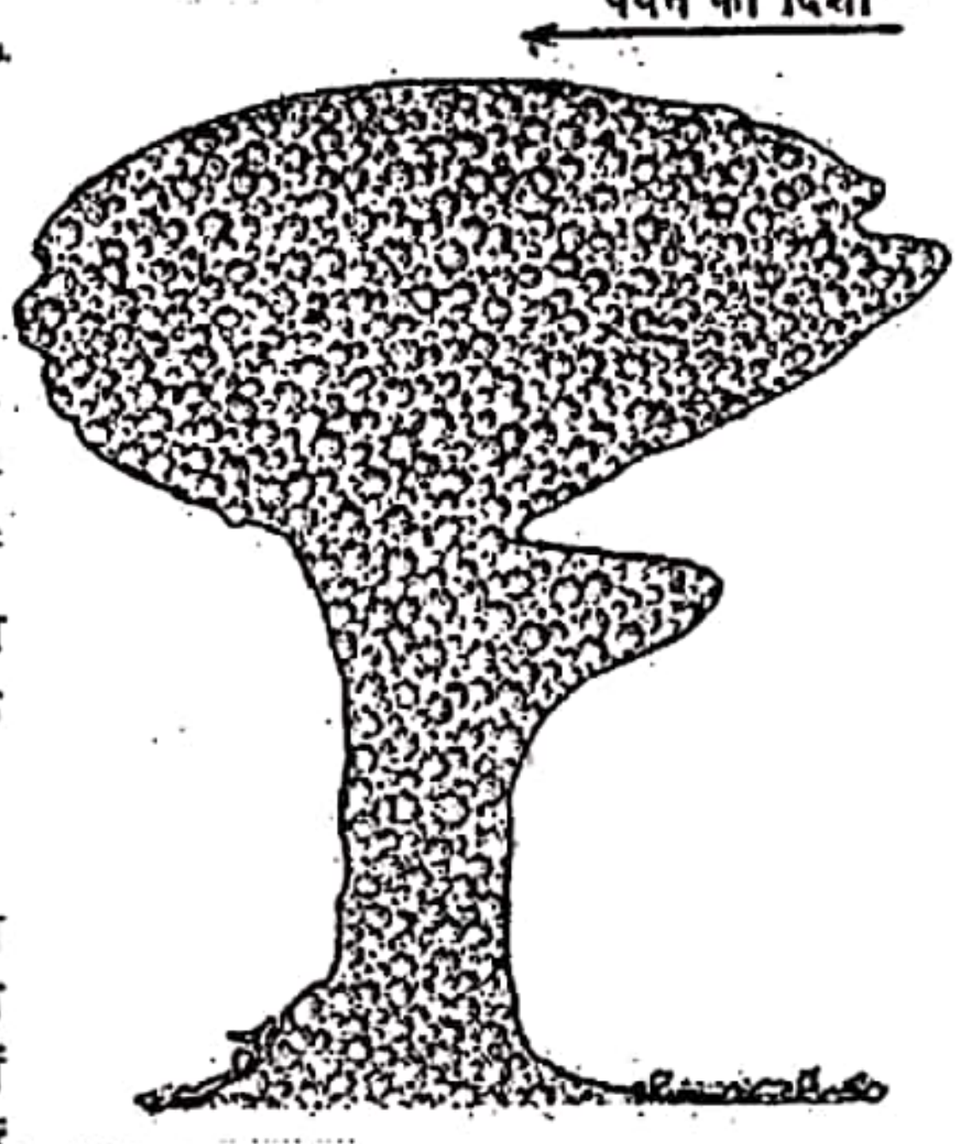

2.8 छत्रक शैल

छत्रक शैल पवन के अपरदन द्वारा बनी स्थलाकृति है। इस शैल की आकृति अनियमित होती है। पवन के द्वारा अपरदित शैलों की आकृति नियमित क्यों नहीं होती है?

सकता है। पवन द्वारा उड़ाए गए बालू कणों द्वारा अपरदन की क्रिया भूपृष्ठ से कुछ मीटर की ऊँचाई तक ही ज्यादा प्रभावशाली होती है। इस प्रकार एक विशेष स्थलाकृति बन जाती है जिसे **छत्रक शैल** कहते हैं।

छत्रक शैल की आकृति छत्रक (कुकुरमुत्ता) के समान होती है, जिसका तना पतला तथा ऊपरी भाग छाते की भाँति चौड़ा होता है। छत्रक शैल का पतला तना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि भूपृष्ठ की रगड़ से पवन की गति कम हो जाती है। यद्यपि पवन की गति छत्रक शैल के ऊपरी भाग पर ज्यादा तेज होती है, लेकिन वहाँ अपरदन कम होता है, क्योंकि पवन इस ऊँचाई तक बालू के कणों को अधिक मात्रा में नहीं उड़ा पाती।

जब पवन का वेग कम हो जाता है या मार्ग में कोई रुकावट आ जाती है या वर्षा होती है, तो पवन के साथ उड़नेवाले पदार्थों का निक्षेपण होता है। इस प्रकार बालू के निक्षेपण से बालू के टिब्बे बन जाते हैं। बालू के टिब्बे विभिन्न आकार-प्रकार के होते हैं। सबसे सामान्य बालू के टिब्बे चन्द्राकार

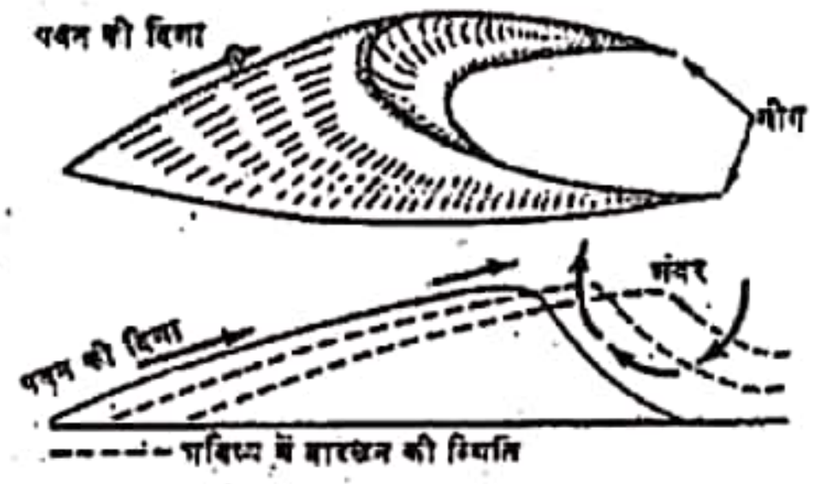

2.9 बालू के टिब्बे

बालू के टिब्बे पवन के निक्षेपण के परिणामस्वरूप बनते हैं। बालू के सामान्य टिब्बे धनुषाकार होते हैं जिनके शृंग पवन के बहने की दिशा की ओर होते हैं। बारखन नाम के बालू के टिब्बे किस दिशा में स्थानांतरित होते हैं?

होते हैं। इनके दोनों छोरों पर पवन की दिशा में सींग जैसी आकृति निकली रहती है। ऐसे टिब्बों को बारखन कहते हैं। पवन लगातार बालू कणों को उड़ाती रहती है। अतः बालू के ये टिब्बे पवन की दिशा में क्रमशः आगे की ओर खिसकते रहते हैं।

पवन धूल के महीन कणों को सैकड़ों किलोमीटर दूर तक उड़ाकर ले जाती है। आर्द्र प्रदेशों में वर्षा होने पर धूल के ये महीन कण जमा हो जाते हैं। धूल के ऐसे महीन कण एक विस्तृत क्षेत्र के पूरे के पूरे भूपृष्ठ को ढक लेते हैं। पवन द्वारा उड़ाकर जमा किए गए ऐसे निक्षेपों को **लोएस-निक्षेप** कहते हैं। चीन की राजधानी बीजिंग के उत्तर पश्चिम में एक विशाल क्षेत्र में लोएस-निक्षेप हैं।

लहरें

तल संतुलन के कारक के रूप में लहरों का कार्य केवल उस सीमित क्षेत्र में है, जहाँ सागर और भूमि मिलते हैं। महासागरों के जल की सतह पर पवन की रगड़ से लहरें बनती हैं। लहरें तट की ओर चलती हैं और तट के पास उथले जल में बड़े वेग से टूटती हैं। जब विशाल जलराशि बड़े वेग से तट से टकराती है, तो तट के साथ का भूभाग टूटने-फूटने लगता है। जब लहरें तट से टकराकर वापस लौटती हैं, तो वे अपरदित कणों को भी बहा ले जाती हैं और उन्हें सागर तल पर तथा तट के साथ-साथ जमा करती रहती हैं। इस प्रकार लहरें अपरदन, परिवहन और निक्षेपण का कार्य करती हैं।

तट पर लहरों के अपरदन से विभिन्न ऊँचाइयों के भृगु (खड़ी चट्टान) बन जाते हैं। भृगुओं का सागर की ओर का ढाल एक दम खड़ा होता है। लहरें भृगु के निचले भाग में टकराती रहती हैं

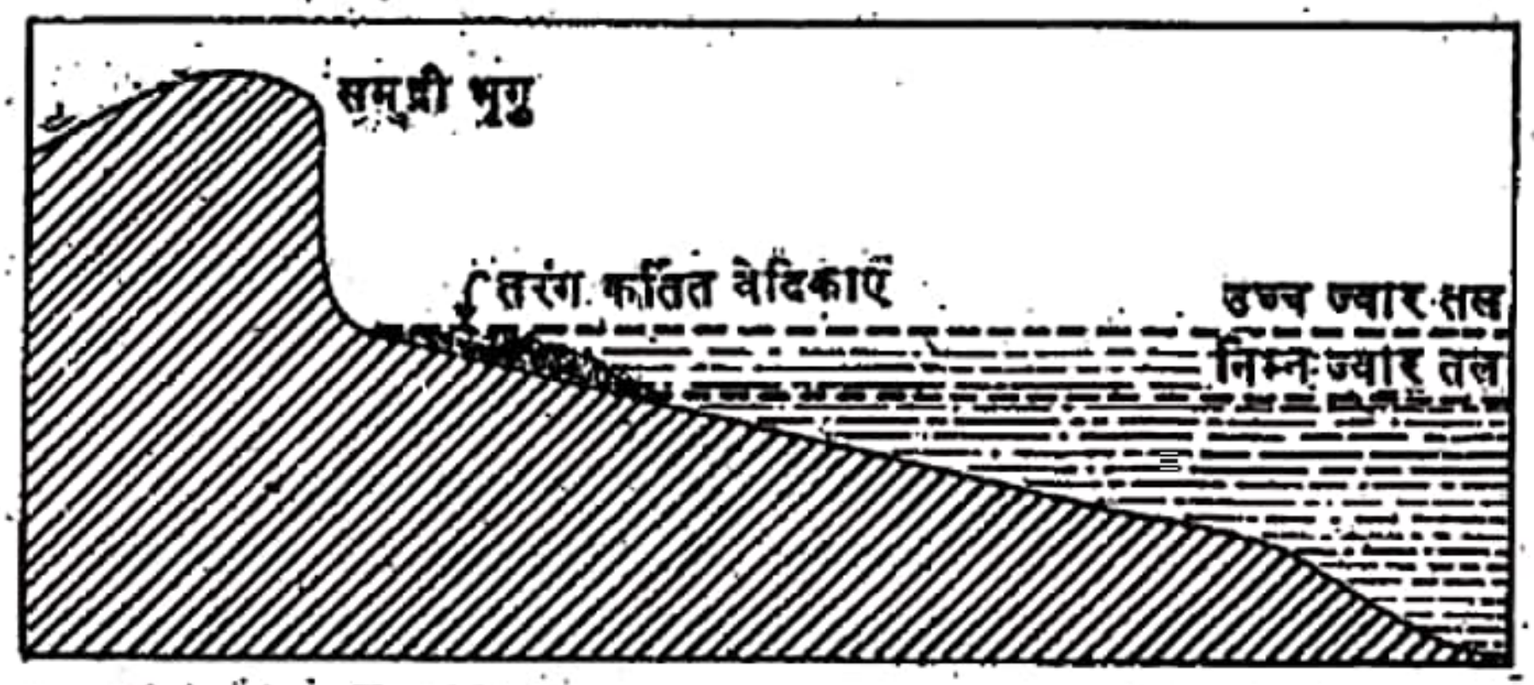

2.10 (क) तरंग-कर्तित वेदिका

समुद्र की लहरें चट्टानी तट के भृगुओं के निचले भागों पर प्रहार करती हैं। लहरों के निरंतर प्रहार से भृगु टूट-फूटकर धीरे-धीरे स्थल में अंदर की ओर खिसकते रहते हैं। इस प्रकार जहाँ पहले भृगु होते थे, वहाँ अब चौरस वेदिका बन गई है, जिसे तरंग-कर्तित वेदिका कहते हैं।

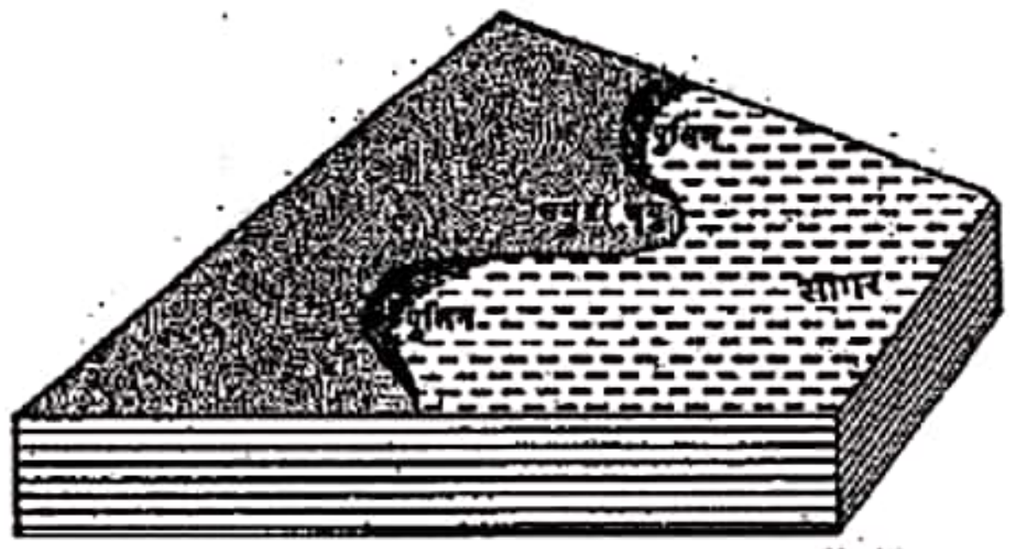

(ख) समुद्री पुलिन तथा समुद्री भृगु

चट्टानी तट पर प्रचंड लहरों के द्वारा हुए अपरदन से समुद्र की ओर खड़े ढाल वाले भृग बन जाते हैं। पुलिन, बालू और बंकड़, संकरी खाड़ियों तथा मंद ढाल वाली तटरेखाओं के साथ साथ पाए जाते हैं क्योंकि यहाँ लहरों द्वारा अपरदन कार्य कम होता है। भारत में केरल, उड़ीसा और गोआ के तट पर प्रसिद्ध पुलिन या बीच हैं।

और कालांतर में भृगु, स्थल में भीतर की ओर हटते जाते हैं। इस प्रकार समय बीतने पर तट के सहारे लहरों द्वारा अपरदित, लगभग सपाट मंच बन जाता है, जिसे तरंग-निर्मित-वेदी कहते हैं। भृगु, समुद्र के खड़े ढाल वाले तटों पर भलीभाँति विकसित होते हैं, क्योंकि यहाँ लहरें बड़े वेग से टकराती हैं। जहाँ तट का ढाल कम होता है, वहाँ तट के साथ सागर उथला होता है। ऐसे तटों पर लहरें तट से दूर ही टूट जाती हैं। अतः इन तटों पर भृगु नहीं बन पाते हैं।

तट के साथ-साथ लहरों द्वारा पदार्थ जमा हो जाते हैं ऐसे जमाव को पुलिन कहते हैं। पुलिन में बालू तथा थोड़े बहुत कंकड़-पत्थर होते हैं। मंद ढाल वाली तट-रेखाओं के सहारे पुलिनों की चौड़ाई ज्यादा होती है। लहरों द्वारा पदार्थों के तट के समीप जमा होने से बालू रोधिकाएँ बन जाती हैं। बालू रोधिकाएँ कई प्रकार की आकृतियों में बनती हैं। ये बालू रोधिकाएँ या तो तट के समान्तर होती हैं या तट के साथ किसी कोण पर बनी होती हैं। बालू रोधिका और तट के बीच का उथला और संकरा सागर रह जाता है, जिसे लैगून कहते हैं। धीरे-धीरे यह अवसादों के जमाव से भर जाता है। केरल तट के पश्च-जल (बैक वाटर) के क्षेत्र इसी प्रकार बने हैं।

आंतरिक प्रक्रियाएँ

आलय का निर्माण अवसादी शैलों की परतों से हुआ है। इन शैलों में समुद्री जीवों के जीवाश्म मिले हैं। अतः इससे स्पष्ट है कि इन ऊँची पर्वत श्रेणियों की उत्पत्ति उथले सागरों के तल में जमा हुए अवसादों से हुई है। हिमालय जिन अवसादी शैलों से बना है उनमें बड़े पैमाने पर वलन, विकृति और विस्थापन हुआ है। अवसादी शैलों की परतों का ऊपर उठना तथा भिंचना बड़े पैमाने पर कार्यरत आंतरिक शक्तियों द्वारा ही हुआ होगा। इस प्रकार की शक्तियों से भूपर्पटी की हलचलें, ज्वालामुखी विस्फोट तथा भूकंप उत्पन्न होते हैं। इन आंतरिक शक्तियों को विवर्तनिक शक्तियाँ कहते हैं। तल संतुलन की प्रक्रियाएँ बाह्य होती हैं। अतः इन्हें आसानी से देखा जा सकता है। लेकिन आंतरिक शक्तियों की प्रकृति को देखना संभव नहीं है, क्योंकि वे पृथ्वी के अंदर कार्य करती हैं। पृथ्वी की आंतरिक परतों के संघटन, संरचना तथा भौतिक दशाओं के बारे में हमारी जानकारी बहुत कम है। अतः इनकी कार्य प्रणाली के बारे में अच्छी तरह ज्ञान पाना संभव नहीं है, फिर भी आंतरिक शक्ति के प्रभाव को भूपृष्ठ पर बनी प्रमुख स्थलाकृतियों के रूप में देखा जा सकता है।

पृथ्वी की हलचलें

भूपर्पटी की हलचलों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-(क)उर्ध्वाधर हलचलें,(ख)क्षैतिज हलचलें। पृथ्वी के कुछ भाग कमजोर होते है। यहाँ कुछ गहरी और लंबी दरारें पड़ जाती हैं, जिन्हें भ्रंश कहते हैं। इन्हीं भ्रंश-रेखाओं के सहारे भूपर्पटी का कुछ भाग या तो ऊपर उठ जाता है या नीचे धँस जाता है। दो निकटवर्ती भ्रंशों के बीच के भूभाग के ऊपर उठने से खंड पर्वत बन जाते हैं। भ्रंशों के बीच के भूभाग के नीचे धँसने से भ्रंश घाटी बन जाती है। पूर्वी अफ्रीकी भ्रंश घाटी इसका एक अच्छा उदाहरण है। इस भ्रंश घाटी के दोनों ओर खड़े ढाल होते हैं। भूपर्पटी पर बड़े पैमाने पर होने वाली उर्ध्वाधर हलचलों को महाद्वीप-निर्माणकारी हलचलें कहते हैं।

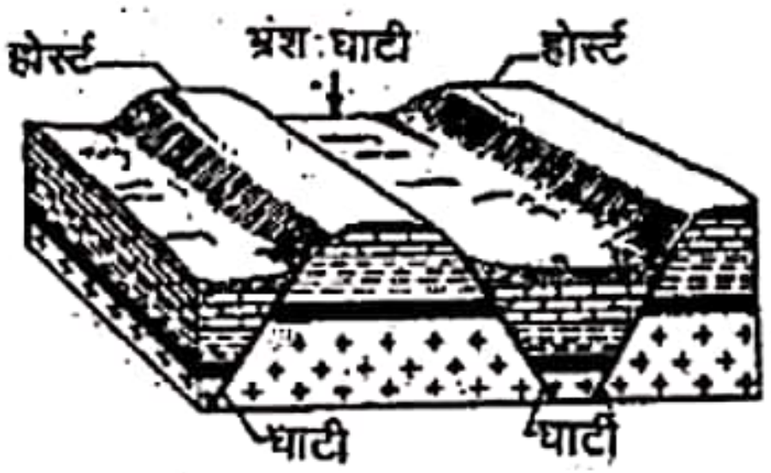

2.11 भ्रंश-घाटी

ऊपर उठे हुए दो निकटवर्ती भूखंडों के साथ साथ नीचे धँसे हुए भूखंडों को देखिए। ऊर्ध्वाधर संचरण के परिणामस्वरूप ये दो भ्रंशों के बीच स्थित हैं। इनमें से कौन सा भूखंड भ्रंश घाटी है तथा कौन सा खंड होर्स्ट है?

भूपर्पटी की क्षैतिज हलचलों के द्वारा शैलों की परतों में वलन और विस्थापन होता है। वलन की सामान्य प्रक्रिया में शैलों की परतें ऊपर और नीचे की ओर मुड़ जाती हैं। ऊपर की ओर उठे वलन को अपनति तथा नीचे की ओर के वलन को अभिनति कहते हैं। सामान्य वलन में दो अपनतियों के बीच एक अभिनति होती है। इस प्रकार के सामान्य वलन बहुत ही कम दिखाई पड़ते

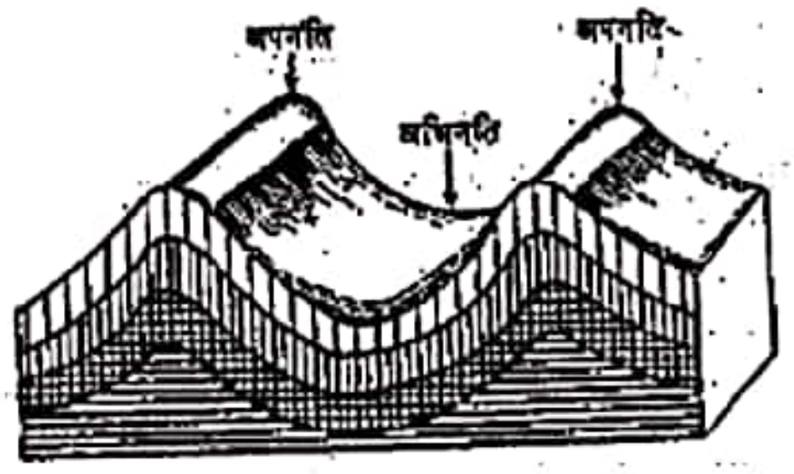

2.12 साधारण वलन

क्षैतिज दबाव से अवसादी शैलों के संस्तरों में मोड़ पड़ जाते हैं। ऊपर की ओर मुड़ा हुआ भाग अपनति कहलाता है। इसमें शैलों का झुकाव विपरीत दिशाओं में है। नीचे की ओर मुड़े भाग को अभिनति कहते हैं। इसमें शैल संस्तरों का झुकाव एक ही दिशा में होता है।

हैं। ज्यादातर वलन इस सीमा तक भिच जाते हैं कि शैलों की परतें बहुत दूर तक अपने पूर्व स्थान से अलग हट जाती हैं। परिणामस्वरूप एक बहुत ही जटिल संरचना बन जाती है। बड़े पैमाने पर होने वाली क्षैतिज हलचलों को पर्वत-निर्माणकारी हलचलें कहते हैं, क्योंकि उनसे हिमालय जैसी वलित पर्वत श्रेणियों का निर्माण होता है।

पृथ्वी के इतिहास के विभिन्न युगों में दोनों प्रकार की हलचलें हुई हैं। प्रमुख पर्वत श्रेणियों तथा पठारों का वर्तमान वितरण इन्हीं हलचलों का परिणाम है।

ज्वालामुखी

ज्वालामुखी भूपर्पटी में बना एक छेद या दरार है। पृथ्वी के अंदर से मैग्मा, इसी छेद या दरार से निकलता है। मैग्मा में पिघले हुए शैलों के साथ भाप और गैसें भी शामिल होती हैं। जैसे ही मैग्मा भूपृष्ठ पर आता है, वैसे ही भाप और गैसें तुरंत उसमें से उड़ जाती हैं। भूपृष्ठ पर शैलों के पिघले इस रूप को **लावा** कहते हैं। यह धीरे-धीरे ठंडा होकर ठोस रूप धारण कर लेता है। पृथ्वी के भीतर से पदार्थों का उद्भेदन शांत या विस्फोटक हो सकता है।

2.13 विवर के साथ ज्वालामुखी शंकु

ज्वालामुखी भूपटल का एक विवर है जिससे लावा, गैसें और भाप पृथ्वी के पृष्ठ पर पहुँचती हैं।

सबसे सामान्य प्रकार का ज्वालामुखी **केन्द्रीय** है, जिसमें उद्भेदन भूपृष्ठ के एक ही स्थान पर संकरी नली से होता है। भूपृष्ठ पर जिस छेद या संकरी नली से उद्भेदन होता है, उसे **निकास नलिका** कहते हैं। जो पदार्थ उद्भेदन से बाहर निकलते हैं, वे निकास नलिका के चारों ओर जमा होकर एक शंक्वाकार पहाड़ी का रूप ले लेते हैं। लावा की क्रमिक परतों के जमाव से पहाड़ी का आकार बढ़ता जाता है। लावा की परतों के बीच में विस्फोट उद्भेदनों में बाहर आए शैल कणों और

खंडों तथा अन्य पदार्थों की परतें भी जमा होती रहती हैं। विस्फोटक उद्भेदनों से निकास नलिका के चारों ओर एक गड्ढा बन जाता है। ज्वालामुखी शंकु की चोटी पर बने इस गड्ढे को ज्वालामुखी विवर (क्रेटर) कहते हैं। उत्पत्ति तथा आकृति की दृष्टि से अधिकतर ज्वालामुखी, शंकु और विवर वाले ही होते हैं। ऐसे ज्वालामुखियों की शृंखला से ज्वालामुखी पर्वत शृंखला बनती है।

भारत का दक्षिण का पठार, उत्तरी आयरलैंड तथा आइसलैंड जैसे संसार के कुछ भागों की भूपर्पटी में बनी संकरी दरारों में से ज्वालामुखी उद्भेदन हुआ है। इन्हें दरारी उद्भेदन कहा जाता है। कभी-कभी दरारें कई किलोमीटर लंबी होती हैं। इनमें से बहुत बड़ी मात्रा में मैग्मा निकलकर एक विस्तृत क्षेत्र को ढक लेता है, जिससे लावा की मोटी चादरें बन जाती हैं, जो पठार का रूप ले लेती हैं। ये पठार सैकड़ों वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले होते हैं। भारत के दक्षिण के पठार के पश्चिमी भाग में लावा की चादरों की मोटाई 1000 मीटर से अधिक है।

क्रियाशीलता के आधार पर ज्वालामुखियों को सामान्यतः तीन वर्गों में रखा जाता है। **सक्रिय ज्वालामुखी** वे हैं, जिनमें निकट भूतकाल में उद्भेदन हुआ है। विश्व में लगभग 500 सक्रिय ज्वालामुखी हैं। इनमें से अधिकतम प्रशान्त महासागर में या उसके चारों ओर स्थित हैं। **सुप्त ज्वालामुखी** वे हैं, जिनमें ऐतिहासिक काल के प्रारंभ में उद्भेदन हुआ था और जो अब शांत हैं। **मृत ज्वालामुखी** वे हैं, जिनमें ऐतिहासिक काल में उद्भेदन नहीं हुआ है। इटली का विसूवियस ज्वालामुखी मृत समझा जाता था, परन्तु उसमें सन् 79 में अचानक उद्भेदन हो गया।

भूकंप

जब दिवर्तनिक शक्तियों द्वारा भूपर्पटी का कोई भाग अचानक अपने स्थान से हट जाता है, तब कंपन या तरंगें पैदा होती हैं। हलचल वाले केन्द्र से ये तरंगें चारों ओर चलती हैं। इन अचानक आए कंपनों को **भूकंप** कहते हैं। पृथ्वी के अंदर जहाँ भूकंप की तरंगें उत्पन्न होती हैं, उस स्थान को **भूकम्प उद्गम केंद्र** कहते हैं। इस उद्गम केंद्र के ठीक ऊपर भूपृष्ठ पर स्थित बिन्दु को **अधिकेंद्र** कहते हैं। अधिकांश भूकंपों का उद्गम केंद्र 60 किलोमीटर से कम गहराई पर होता है। भूपृष्ठ पर सबसे अधिक कंपन अधिकेंद्र पर होता है। अधिकेंद्र से दूरी जैसे-जैसे बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे ही कंपनों की तेजी घटती जाती है।

भूपर्पटी के अस्थिर भागों में भूकंप अक्सर आते ही रहते हैं। निर्बलता की रेखाओं के साथ-साथ होने वाली हलचलों से तथा ज्वालामुखी उद्भेदनों से भूपृष्ठ पर भूकंप उत्पन्न होते हैं।

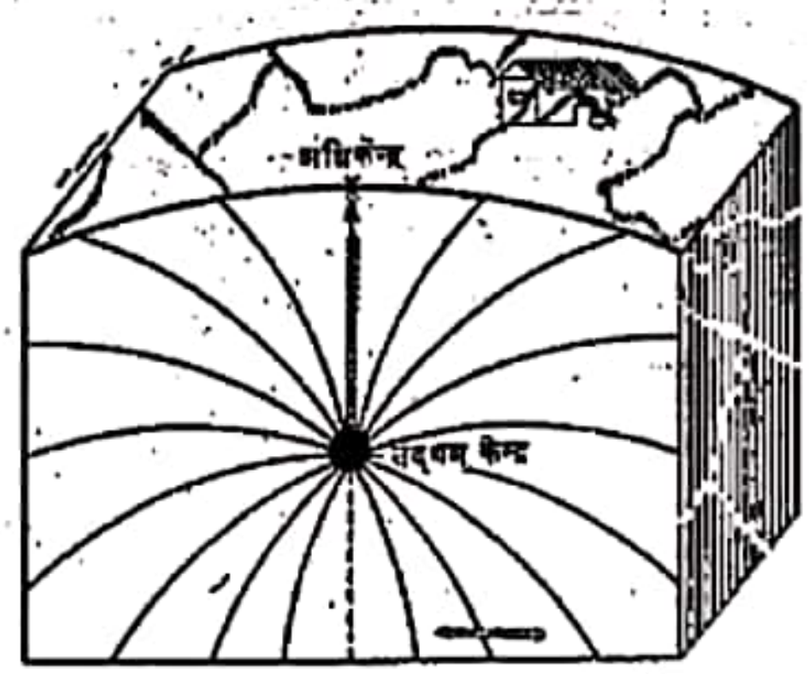

2.14 भूकम्पीय केन्द्र, उद्गम केन्द्र तथा अधिकेन्द्र भूपृष्ठ पर स्थित अधिकेन्द्र को आरेख में देखें। यह भूकम्पीय केन्द्र, जहाँ से भूकम्प की तरंगें उत्पन्न होती हैं, के ठीक ऊपर होता है।

सैकड़ों हल्के भूकंप तो प्रतिदिन आते रहते हैं। प्रबल भूकंप से जन-धन की बड़ी बर्बादी होती है, ये कभी-कभी ही आते हैं। भूकंप की तरंगों के मार्ग को अंकित करनेवाले यंत्र को भूकंप लेखी कहते हैं। भूकंप की तरंगों की तीव्रता तथा उनके उत्पन्न होने का समय भूकंप लेखी द्वारा अंकित किया जाता है।

भूकंप की तरंगों से भूपृष्ठ के भागों का उर्ध्वाधर तथा क्षैतिज विस्थापन होता है। भूपृष्ठ पर काफी दूर तक दरारें पड़ जाती हैं। नदियों के मार्ग बदल जाते हैं, जिससे अचानक बाढ़ आ जाती है। पहाड़ों में भूस्खलन से नदियों की धारा के अवरुद्ध होने से झीलें बन जाती हैं। सड़कें, रेल मार्ग और भवन नष्ट हो जाते हैं। इससे जन जीवन और धन संपत्ति की भारी हानि होती है। नगरों में गैस और पानी की पाइप लाइनें टूट जाती हैं। जब भूकंप का अधिकेंद्र समुद्र तल पर होता है, तो समुद्र में बहुत ऊँची-ऊँची और बड़ी-बड़ी लहरें उठकर तट की ओर बढ़ती हैं। ऐसी लहरों को भूकंपीय समुद्री लहरें कहते हैं। इससे समुद्र तट के पास वाले विस्तृत क्षेत्र पानी में डूब जाते हैं।

भूकंप नव निर्मित वलित पर्वत प्रदेशों में प्रायः आते ही रहते हैं। ये प्रदेश अपेक्षाकृत अस्थिर हैं। लगभग दो-तिहाई भूकंप प्रशांत महासागर के उत्तरी व दक्षिण अमेरिका और एशिया के पूर्वी तटों के साथ-साथ फैले क्षेत्रों में आते हैं। 20 प्रतिशत भूकंप यूरोप और एशिया में फैले अल्पाइन-हिमालय पर्वत–प्रदेश में आते हैं।

भारत में कश्मीर घाटी (1823 तथा 1885), कुमाऊँ की पहाड़ियों (1803), कच्छ (1869), उत्तर बिहार (1934) असम (1897, 1950) और लातूर (1993) में विनाशकारी भूकंप आए हैं। हिमाचल प्रदेश के किन्नौर जिले में 1975 में और उत्तर काशी में 1991 में भयंकर भूकंप आए जिनसे जान-माल का भारी नुकसान पहुँचा था। भारत के दक्षिण के पठार को सामान्यतः स्थिर एवं भूकंपरहित माना जाता है। लेकिन सन् 1967 में कोयना नगर में और 1993 में लातूर में भयंकर भूकंप आया। जिन क्षेत्रों में भूकंप अक्सर आते रहते हैं जैसे जापान में, वहाँ ऐसे मकान बनाए जाते हैं, जो भूकंप के झटकों को सह लें और गिरें नहीं।

नदियों जैसी सतत संतुलनकारी बाह्य शक्तियाँ भूपृष्ठ पर काट-छाँट करती हैं। वे विशाल मात्रा में पदार्थों को महाद्वीपों से ले जाकर महासागरों में जमा करती रहती हैं। इससे भूपर्पटी का संतुलन बिगड़ता है। आंतरिक शक्तियाँ भूपर्पटी के संतुलन को पुनः स्थापित करती हैं। यह कार्य वे भू-भागों को ऊपर उठाकर, वलित पर्वतों का निर्माण करके तथा ज्वालामुखी क्रियाओं से विशाल परिमाण में लावा के उद्भेदन द्वारा करती हैं। भूपर्पटी में संतुलन बनाए रखने के लिए पृथ्वी में हलचल पैदा करनेवाली विवर्तनिक शक्तियों तथा तल संतुलनकारी प्रक्रियाएँ एक साथ काम करती हैं।

स्वाध्याय

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए–
   (1) 'अपक्षय' का क्या अर्थ है?
   (2) ऊपरी मार्ग में नदी के कार्य का वर्णन करो।
   (3) तल संतुलन कारक के रूप में भूमिगत जल के कार्य की विवेचना कीजिए।
   (4) पवन द्वारा कौन सी विशिष्ट स्थलाकृतियाँ बन जाती हैं?
   (5) ज्वालामुखियों का उनकी क्रियाशीलता के आधार पर वर्गीकरण कीजिए।
2. अंतर स्पष्ट करिए–
   (1) अधिवृद्धि और निम्नीकरण
   (2) स्टैलेक्टाइट और स्टैलेग्माइट
   (3) सहायक नदी और उपनदी
   (4) महाद्वीपीय हिमानी और पर्वतीय हिमानी
   (5) उपनति और अभिनति।
3. निम्नलिखित दोनों स्तंभों में से सही जोड़े बनाइए।

तल संतुलन के कारक	स्थलाकृति
(1) नदी	वारखन
(2) हिमानी	भृगु
(3) भूमिगत जल	हिमोढ
(4) पवन	कंदराएँ
(5) लहरें	विसर्प

4. तल संतुलन के कारक के रूप में नदी के कार्य का वर्णन कीजिए।
5. पृथ्वी की हलचलों से उत्पन्न स्थलाकृतियों की विवेचना कीजिए।

स्वयं करें और जानें

1. इस अध्याय में वर्णित प्रत्येक स्थलाकृति का मिट्टी का मॉडल तैयार कीजिए।
2. विगत कुछ वर्षों में आए भूकंपों के विवरण की अखबारी कतरनें इकट्ठी कीजिए।
3. अपने विद्यालय के निकटवर्ती क्षेत्रों में जाकर वहाँ की स्थलाकृतियों को पहचानिए।
4. निम्नलिखित स्थलाकृतियों को दिखाने के लिए आरेख बनाइए –
   विसर्प, हिमगह्वर, बारखन, 'U' आकार की घाटी

5. भारत तथा विश्व के अन्य देशों की महाखड्ड बनाने वाली नदियों की सूची बनाइये।
6. भारत की उन नदियों की सूची बनाइए, जो डेल्टा नहीं बनातीं। इन नदियों द्वारा डेल्टा न बनाए जाने के कारणों की खोज कीजिए।
7. राजस्थान के मरुस्थल के निकटवर्ती क्षेत्रों में विस्तार के बारे में जानकारी प्राप्त करिए। इसके विस्तार को रोकने के उपायों का पता भी लगाइए।

पठनीय पुस्तकें

1. गोह चेंग लियोंग : सर्टिफिकेट फिजीकल एण्ड ह्यूमन ज्याग्रफी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
2. बुनेट आर०बी० : फिजीकल ज्याग्रफी इन डायग्राम्स, ओरियंट लौगमैन, नई दिल्ली।
3. एन०के० होरैक्स : फिजीकल ज्याग्राफी एण्ड क्लाइमटॉलाजी, लौगमैन, लंदन।
4. मॉक हाउस एफ०जे० : प्रिंसिपिल्स ऑफ फिजीकल ज्याग्रफी, यूनिवर्सिटी ऑफ लंदन प्रेस, लंदन।

3

जल-मडंल

महासागरों के रूप में जल की प्रचुरता के कारण हमारी पृथ्वी अनोखी है। विशाल मात्रा में जल का होना तापमान की दशाओं को मृदुल बनाता है। महासागरों का जल स्थल भाग की भाँति जल्दी गर्म नहीं होता है। स्थल की तुलना में जल को गर्म करने के लिए ढाई गुनी ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यही नहीं, जल की सतह पर पड़नेवाली सूर्य की किरणें भी परिवर्तित हो जाती हैं तथा सौर ऊर्जा का कुछ भाग जल के वाष्पीकरण में खर्च हो जाता है। सूर्य की किरणें स्थल की अपेक्षा जल में अधिक गहराई तक प्रवेश कर जाती हैं। सौर ऊर्जा जल की विशाल मात्रा को संवहन द्वारा गर्म करती है। अत: महासागरों के ऊपर वायुमंडल का तापमान, स्थल भाग की अपेक्षा कम रहता है। इस प्रकार महासागर तापमान की विषमताओं को कम करते हैं। तभी तो पृथ्वी पर ग्रीष्म ऋतु और शीत ऋतु तथा दिन और रात के तापमानों में ज्यादा अंतर नहीं होता।

महासागरीय जल

महासागरों के जल में लवण की मात्रा भूपृष्ठीय जल तथा भूमिगत जल की अपेक्षा अधिक होती है। जल की लवणता से तात्पर्य, लवण की उस मात्रा से है, जो जल में घुली होती है। समुद्री जल की औसत लवणता 35 ग्राम प्रति किलोग्राम होती है। समुद्र के उन तटीय क्षेत्रों में लवणता औसत से कम होती है, जहाँ बड़ी-बड़ी नदियाँ ताजा जल डालती रहती हैं। उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में लवणता औसत से अधिक होती है, क्योंकि वहाँ समुद्र के जल का वाष्पीकरण अधिक होता है।

सूर्य द्वारा महासागरों की सतह के जल के गर्म होने से जल भाप बनकर उड़ जाता है। इस प्रकार जल में लवणता की मात्रा बढ़ जाती है। परिणामस्वरूप ऊपर का जल भारी हो जाता है और नीचे की ओर पैठ जाता है तथा सतह से नीचे का जल ऊपर आ जाता है। इस प्रकार समुद्र जल की लवणता से ऊर्ध्वाधर परिसंचरण पैदा होता है।

विभिन्न प्रकार के जीवों की उत्पत्ति के लिए महासागरों के खारे पानी में आदर्श दशाएँ रही हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि जीवों की उत्पत्ति सर्वप्रथम सागरों में हुई और बाद में वे वहाँ से स्थल पर फैल गए। महासागरों के जल में विभिन्न प्रकार के अनेक जीव जन्तु और वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। इनमें सूक्ष्म प्लवक से लेकर विशाल-काय ह्वेल शामिल हैं।

महासागरीय अधस्तल

महासागरीय अधस्तल सपाट नहीं है, जैसा

कि पहले विश्वास किया जाता था। महासागरीय अधस्तल के उच्चावचन लक्षणों में महाद्वीपों की अपेक्षा विविधता है। तट के समीपवर्ती उथले क्षेत्र को महाद्वीपीय निमग्न तट कहते हैं। महाद्वीपीय निमग्न तट की सीमा 150 से लेकर 200 मीटर की गहराई तक होती है। इस उथले सागर के अधस्तल पर स्थल से आए हुए अवसाद जमा होते रहते हैं। महाद्वीपीय निमग्न तट की औसत चौड़ाई लगभग 70 किलोमीटर है, लेकिन कुछ क्षेत्रों में इसकी चौड़ाई कई सौ किलोमीटर से भी अधिक है। महाद्वीपीय निमग्न तट के उथले सागर मत्स्य ग्रहण के प्रमुख क्षेत्र हैं। संसार का एक चौथाई पैट्रोलियम महाद्वीपीय निमग्न तट से ही निकाला जाता है।

महाद्वीपीय ढाल

महाद्वीपीय ढाल वास्तव में महाद्वीपों की जलमग्न अंतिम सीमा है। इसका ढाल खड़ा है, जो महाद्वीपीय निमग्न तट और महासागरीय मैदान को जोड़ता है। इसकी औसत गहराई लगभग 3600 मीटर है।

महासागरीय अधस्तल के लगभग 40 प्रतिशत भाग में महासागरीय मैदान फैले हैं। ये अपेक्षाकृत सपाट हैं। महासागरीय मैदानों की गहराई 3000 से 5000 मीटर के बीच होती है। अवसादों के जमा होने से ही महासागरीय मैदानों की सतह सपाट बन गई है।

कुछ महासागरों में स्थल की पर्वत श्रेणियों जैसी संकरी और लंबी पर्वत श्रेणियाँ हैं। इन्हें जलमग्न कटक कहते हैं। इन कटकों के कुछ शिखर समुद्र तल से ऊपर द्वीपों के रूप में निकल आते हैं। महासागरीय अधस्तल पर जलमग्न पठार तथा शंक्वाकार ज्वालामुखी पहाड़ियाँ भी हैं।

महासागरीय मैदान के कुछ भागों में गहरे, संकरे और खड़े ढाल वाले खड्ड पाए जाते हैं। इन्हें गर्त या खाई कहते हैं। सामान्यतः ये खाइयाँ महासागरीय मैदान के सिरों पर स्थित हैं। इन खाइयों की गहराई समुद्रतल के नीचे 6000 से लेकर 11000 मीटर तक होती है। जलमग्न

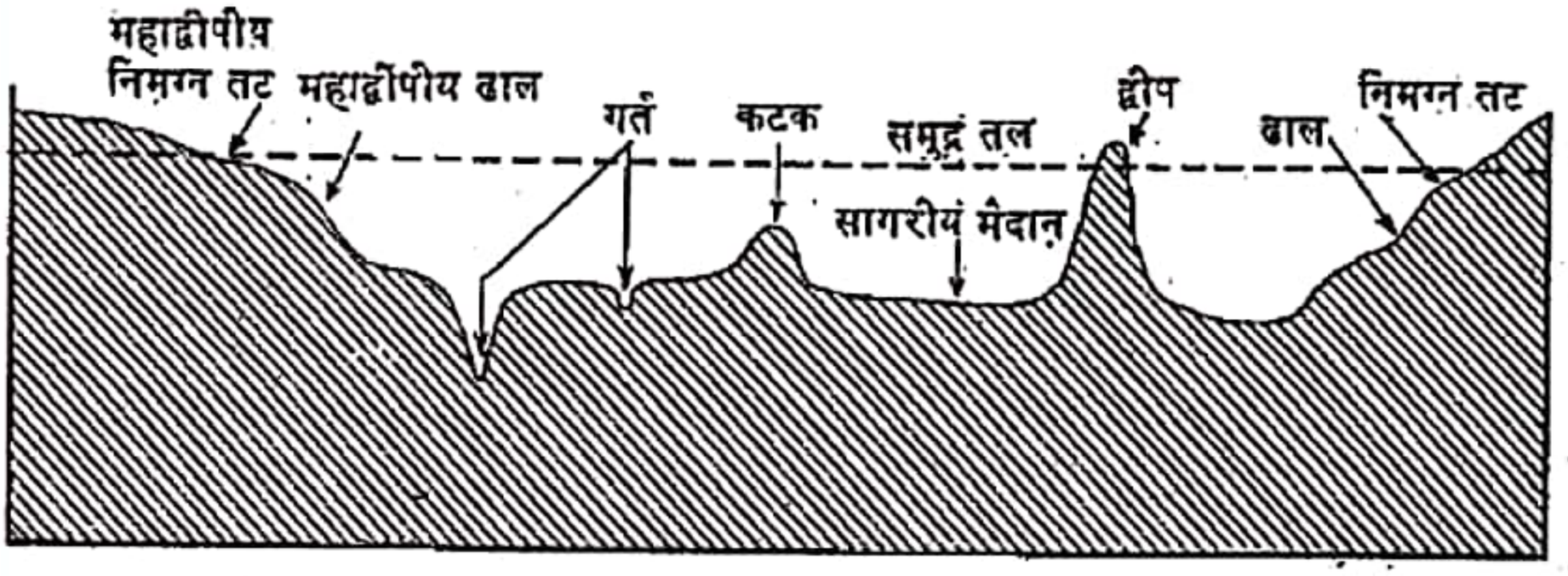

3.1 अंतः समुद्र उच्चावचन
महासागरीय अधस्तल पर भी स्थल की भाँति विविध भौतिक लक्षण पाए जाते हैं। महाद्वीपीय निमग्न तट हमारे लिए अधिक उपयोगी क्यों हैं।

उच्चावचन के प्रमुख लक्षण जैसे कटक, पठार और खाइयाँ विवर्तनिक शक्तियों के ही परिणाम हैं। उदाहरण के लिए एक जलमग्न कटक अटलांटिक महासागर में उत्तर से दक्षिण तक फैला है। प्रशांत महासागर के तट के साथ-साथ गहरी खाइयाँ पाई जाती हैं।

वायु में जल

जलाशयों का जल सौर विकरण द्वारा गर्म होकर वाष्प में बदल जाता है और वायुमंडल में चला जाता है। जल गर्म होकर वाष्प में परिवर्तित हो जाता है। फिर यह जलवाष्प आसानी से वायुमंडल की दूसरी गैसों के साथ मिल जाती है। वाष्पीकरण की यह प्रक्रिया निरंतर नहीं चलती रह सकती, क्योंकि एक निश्चित सीमा तक ही जलवाष्प वायुमंडल में समा सकती है। उदाहरण के लिए 10° तापमान पर एक घन मीटर वायु 11.4 ग्राम जलवाष्प को धारण कर सकती है। वायु की जलवाष्प को ग्रहण करने की ऊपरी सीमा को संतृप्त अवस्था कहते हैं। गर्म वायु, शीतल वायु की अपेक्षा अधिक जलवाष्प धारण कर सकती है।

वायुमंडल में विद्यमान जलवाष्प की मात्रा की माप उसकी आर्द्रता से होती है। वायु के प्रति इकाई आयतन में विद्यमान जलवाष्प की वास्तविक मात्रा को निरपेक्ष आर्द्रता कहते हैं। इसे ग्राम प्रति घन मीटर में व्यक्त किया जाता है। वायु की आर्द्रता की एक अधिक उपयोगी माप आपेक्षिक आर्द्रता है। आपेक्षिक आर्द्रता वह अनुपात है जो किसी तापमान पर वायुमंडल में विद्यमान जलवाष्प की वास्तविक मात्रा तथा उसी तापमान पर वायुमंडल को संतृप्त करने के लिए आवश्यक जलवाष्प की मात्रा के बीच होता है।

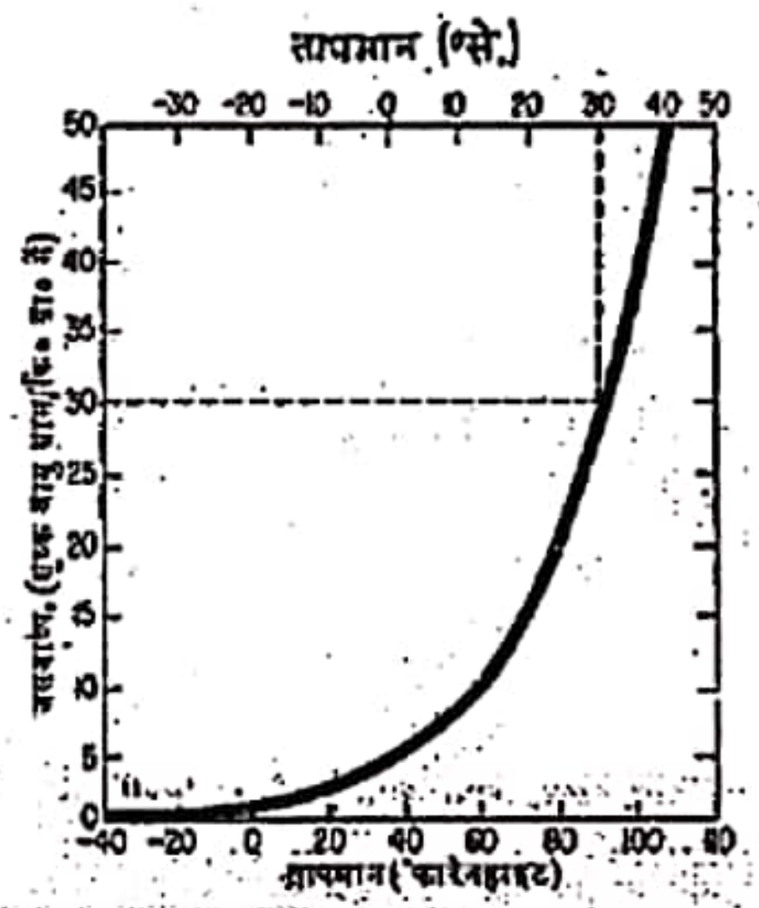

3.2 वायु की जल-धारण क्षमता

ध्यान दीजिए कि ठंडी वायु की तुलना में गर्म वायु में जलवाष्प के रूप में जल धारण करने की क्षमता अधिक है। अतः संतृप्त होने के लिए 10° से० तापमान पर वायु को 30° से० तापमान की तुलना में कम जल वाष्प की आवश्यकता होती है।

इसे प्रतिशत में व्यक्त किया जाता है। उदाहरण के लिए 20° से० ताप पर एक घन मीटर वायु अधिक से अधिक 17 ग्राम जलवाष्प धारण कर सकती है। यदि विद्यमान जलवाष्प की मात्रा केवल साढ़े आठ ग्राम है, तो आपेक्षिक आर्द्रता 50 प्रतिशत हुई। जलवाष्प की मात्रा बढ़ जाने पर या तापमान के घट जाने से आपेक्षिक आर्द्रता बढ़ जाती है। तापमान के बढ़ जाने पर या जलवाष्प की मात्रा के घट जाने पर आपेक्षिक आर्द्रता भी कम हो जाती है। जिस तापमान पर वायु संतृप्त होती है, उसे **ओसांक** कहते हैं।

संघनन

संघनन वाष्पीकरण की विपरीत प्रक्रिया है।

इस प्रक्रिया में जलवाष्प, जल या बर्फ के छोटे-छोटे कणों में बदल जाती है। संघनन तभी शुरू होता है, जब वायु तापमान ओसांक से नीचे गिर जाता है। जब आपेक्षिक आर्द्रता शत प्रतिशत होती है, तब वायुमंडल में विद्यमान अतिरिक्त जलवाष्प, जल के नन्हे-नन्हे कणों के रूप में संघनित हो जाती है। उदाहरण के लिए, जब एक घन मीटर वायु में 20° से० तापमान पर 15 ग्राम जलवाष्प है और यदि इसका तापमान घटकर 10° से० हो जाए तो यह वायु केवल 11.4 ग्राम जलवाष्प धारण करके संतृप्त हो जाएगी। ऐसी दशा में अतिरिक्त 3.6 ग्राम अतिरिक्त जलवाष्प संघनित हो जाती है। संघनन की प्रक्रिया तभी संभव है, जब वायुमंडल में छोटे-छोटे ठोस कण विद्यमान हों। ये छोटे कण धूल, नमक या पराग के कणों के रूप में हो सकते हैं। जलवाष्प इन्हीं छोटे-छोटे कणों के चारों ओर एक बहुत ही महीन परत के रूप में संघनित होती है। जल के ये नन्हे-नन्हे कण वायु में तैरते रहते हैं। इन्हीं से बादल बनते हैं। बादलों में बर्फ के छोटे-छोटे कण भी हो सकते हैं। बादलों का वर्गीकरण उनकी आकृति और ऊँचाई के आधार पर किया जाता है।

वर्षण

वर्षण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा वायुमंडल में संघनित जलवाष्प वर्षा तथा हिम आदि के रूप में भूपृष्ठ पर गिरती है। बादल के लाखों जलकणों के मिलने से वर्षा की एक बूँद बनती है। इस अवस्था में यह बूँद इतनी भारी हो जाती है कि वायुमंडल में ठहर नहीं सकती और वर्षा के रूप में भूपृष्ठ पर गिर पड़ती है। संघनन की प्रक्रिया की अपेक्षा वर्षण की प्रक्रिया अधिक जटिल है।

वर्षण के रूप

वर्षण का सबसे सामान्य रूप वर्षा है। वर्षा की बूँदों का व्यास कुछ मिलीमीटर ही होता है। फुहार हल्की वर्षा का रूप है। फुहार में जल की बूँदें बहुत ही छोटी होती हैं, जिनका व्यास 0.5 मिलीमीटर से भी कम होता है। जब संघनन हिमांक बिन्दु से नीचे तापमान पर होता है, तब जलवाष्प सीधे बर्फ के रवों के रूप में संघनित हो जाती है। ये पृथ्वी पर हिम चूर्ण के ढेरों के रूप में या हिमकणों के रूप में गिर सकती है। वर्षण के इस रूप को हिमपात कहते हैं। मध्य तथा उच्च अक्षांशों और ऊँचे पर्वतीय प्रदेशों में हिमपात बिल्कुल सामान्य बात है। जब वर्षा की बूँदें भूपृष्ठ के निकट की वायु की बहुत ठंडी परतों से होकर गुजरती हैं, तब वर्षा की बूँदें हिम बनकर नीचे गिरती हैं। वर्षण के इस रूप को हिमवृष्टि कहते हैं।

जब वायुमंडल में वायु की प्रचंड ऊर्ध्वाधर धाराएँ चलती हैं, तब वायुमंडल के उच्च स्तरों में संघनन नीचे तापमान पर होता है। बर्फ के कण आकार में क्रमशः बड़े होते जाते हैं तथा ऊपर की ओर उठती हुई तेज वायु धारा के कारण नीचे नहीं गिर पाते। ऐसी परिस्थितियों में बर्फ के रवे बढ़कर कुछ सेंटीमीटर व्यासवाले भी हो जाते हैं और ठोस पुंज के रूप में नीचे गिरते हैं। वर्षण के इस रूप को ओला कहते हैं। ओले फसलों और इमारतों को नुकसान पहुँचाते हैं।

भूमि पर जल

वायुमंडल का जल वर्षण के रूप में भूपृष्ठ के साथ-साथ महासागरों पर भी गिरता है। वर्षा का जल नदी-नालों के रूप में भूमि के ढाल पर नीचे की ओर बहता है। जो जल गड्ढों में जमा हो जाता है,

उससे झीलें बन जाती हैं। नदियों पर बनाए गए बाँधों के पीछे विशाल जलाशय बन जाते हैं। भूमि पर जल बर्फ की चादरों के रूप में भी संचित है। अंटार्कटिका, ग्रीनलैंड तथा ध्रुवों के चारों ओर के प्रदेशों में बर्फ की विशाल और मोटी चादरें फैली हैं। ऊँचे पर्वतीय प्रदेशों के कुछ क्षेत्र भी बर्फ की चादरों से ढके हैं। भूमि पर उपलब्ध कुल जल की मात्रा का लगभग दो तिहाई भाग बर्फ की चादरों के रूप में संचित है। कल्पना कीजिए कि यदि पृथ्वी आज की अपेक्षा ज्यादा गर्म हो जाए और सभी बर्फ की चादरें पिघल जाएँ, तो क्या होगा? पृथ्वी के आज की अपेक्षा अधिक ठंडी होने पर कैसी परिस्थितियाँ होंगी?

कृषि और उद्योगों के लिए, भूपृष्ठ पर उपलब्ध जल का उपयोग बहुत आसानी से हो सकता है। मनुष्य की जल संबंधी अन्य आवश्यकताएँ भी इसी जल से पूरी होती हैं। किसी प्रदेश में भूपृष्ठीय जल की कुल मात्रा इस बात पर निर्भर करती है कि वहाँ कुल कितना वर्षण होता है तथा उसका मौसमी वितरण कैसा है? उस प्रदेश की शैलों तथा मृदाओं की प्रकृति भी वहाँ के जल की कुल मात्रा को प्रभावित करती है।

भूमिगत जल

भूपृष्ठ पर होने वाली वर्षा के जल का कुछ भाग रिसकर धरातल के नीचे चला जाता है। जल का यह रिसाव धरातल पर फैली मृदा की परत तथा शैलों के रंध्रों, जोड़ों और दरारों में से होता है। जल के रिसाव की मात्रा शैलों और मृदाओं की प्रकृति पर निर्भर होती है। बलुई मृदाओं तथा बलुआ पत्थरों में जल आसानी और शीघ्रता से रिस जाता है। ऐसी शैलों को **पारगम्य शैल** कहते हैं। **अपारगम्य शैल** वे हैं जिनमें से होकर जल अधिक मात्रा में नहीं रिस पाता। चिकनी मिट्टी और शैल अपारगम्य शैल हैं। ग्रेनाइट जैसे शैल सरंध्र नहीं हैं, लेकिन उनमें विद्यमान दरारों और जोड़ों से होकर जल रिस जाता है।

मृदा और शैलों से होकर जल के रिसने से भूपृष्ठ के नीचे एक ऐसा क्षेत्र बन जाता है, जो जल से भरपूर होता है। इस क्षेत्र की शैलों के सभी रंध्रों, जोड़ों और दरारों में पूरा का पूरा जल भरा होता है। जल से परिपूर्ण इस क्षेत्र की ऊपरी सीमा को **जलस्तर** कहते हैं। जलस्तर की गहराई सब जगह एक जैसी नहीं होती है। जलस्तर एक स्थान से दूसरे स्थान में तथा ऋतुओं के अनुसार बदलता रहता है।

भूपृष्ठ के नीचे जो जल पाया जाता है, उसके वहाँ पर इकट्ठा होने में बहुत लंबा समय लगा है। भूपृष्ठीय जल की भाँति भूमिगत-जल भाप बनकर नहीं उड़ पाता है। कुछ स्थानों का भूमिगत-जल खारा होने के कारण पीने योग्य नहीं होता है। मृदा की नमी तथा भूमिगत जल से भूपृष्ठ पर उगी वनस्पति का पोषण होता है और वह हरी भरी बनी रहती है।

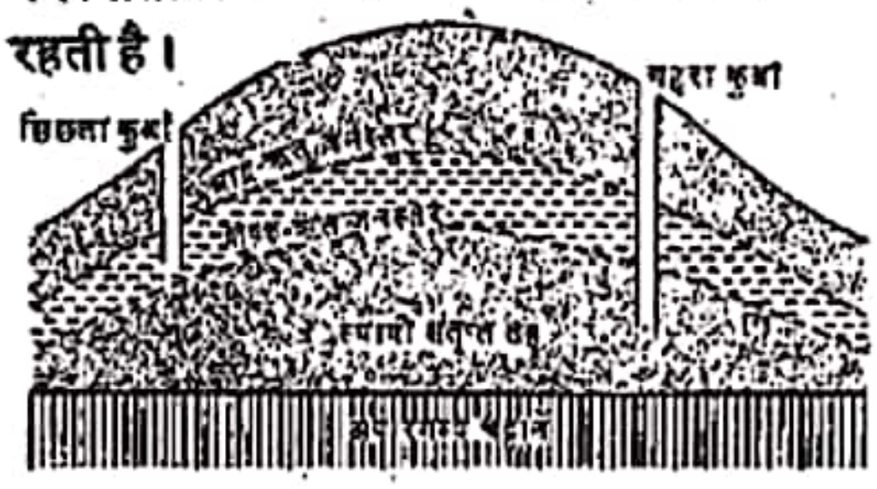

3.3 (क) जलस्तर

वर्षा के जल का एक भाग भूमिगत जल के रूप में एकत्र हो जाता है और इस प्रकार भूपृष्ठ के नीचे एक संतृप्त क्षेत्र बन जाता है। संतृप्त क्षेत्र की ऊपरी सीमा को जल स्तर कहते हैं। अलग-अलग स्थानों में तथा भिन्न-भिन्न ऋतुओं में किस प्रकार जल स्तर की विभिन्न गहराइयों को बताते हैं।

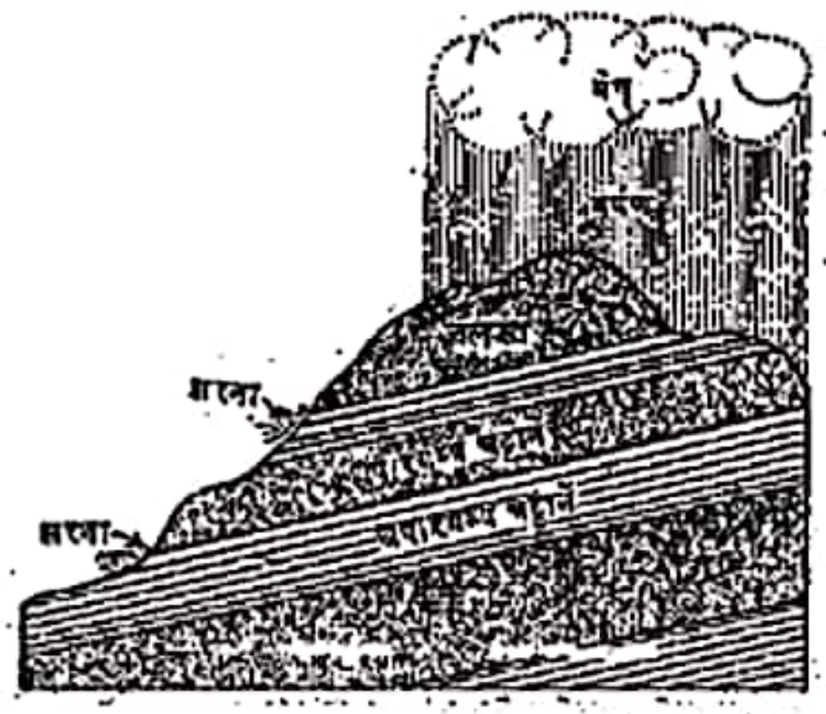

3.3 (ख) झरनों की उत्पत्ति

कभी कभी भूमिगत जल झरनों के रूप में भूपृष्ठ पर आ जाता है। पर्वतीय प्रदेशों में झरनों का पाया जाना सामान्य बात क्यों है?

भूपृष्ठ पर जल जहाँ आसानी से नहीं मिलता, वहाँ मनुष्य भूमिगत जल का उपयोग करता आया है। भूमिगत जल मनुष्य की घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ, सिचाई और उद्योगों की जरूरतें भी पूरी करता है। मनुष्य साधारण कुएँ खोदकर या नल कूप बनाकर भूमिगत जल प्राप्त करता है।

क्या कभी आपने अपने क्षेत्र के कुओं के जल-स्तर को देखा है? कम गहरे कुओं से मनुष्य अपने हाथों से या पशुओं की सहायता से जल निकाल लेता है। लेकिन गहरे कुओं से जल निकालने के लिए डीजल इंजनों या बिजली की मोटरों की मदद ली जाती है। किस कारण से कुओं में जल स्तर घटता-बढ़ता रहता है? ऐसा क्यों है कि गहरे कुओं की अपेक्षा उथले कुएँ जल्दी सूख जाते हैं।

भूमिगत जल कभी-कभी झरनों के रूप में पुनः भूपृष्ठ पर आ जाता है। झरने शैलों की दरारों तथा जोड़ों में से होकर बहते हैं। कुछ झरनों का जल गर्म होता है। कुछ झरने बारहों महीने बहते हैं, लेकिन कुछ झरने साल के कुछ महीनों में सूख जाते हैं।

कुछ प्रदेशों में भूमिगत जल का सिचाई तथा नगरों की जल आपूर्ति के लिए अंधाधुंध उपयोग हुआ है। अतः वहाँ जल स्तर नीचे चला गया है। कहीं-कहीं तो भूमिगत जल के भंडार समाप्त ही हो गए हैं। ऐसे स्थानों में वर्षा के जल को तालाबों में जमा कर लिया जाता है। तालाबों में इकट्ठा हुआ यह जल, रिसकर भूपृष्ठ के नीचे चला जाता है और भूमिगत जल के भंडार पुनः बढ़ जाते हैं। अपनी बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, हमें भूमिगत जल तथा भूपृष्ठीय जल के समुचित उपयोग हेतु सावधानीपूर्वक योजनाएँ बनानी पड़ेंगी।

जैव मंडल में जल

पृथ्वी के जीव-जन्तुओं तथा वनस्पति के लिए जल बहुत महत्वपूर्ण है। पौधे मृदा की नमी तथा भूमिगत जल से पोषक तत्वों को ग्रहण करते हैं। पौधों की आवश्यकता से अधिक जल भाप बनकर वायुमंडल में चला जाता है। पौधों की पत्तियों के सूक्ष्म रंधों में से जल वाष्प के रूप में निकलता है। पौधों की पत्तियों से, इस प्रकार जल के निकलने को **वाष्पोत्सर्जन** कहते हैं। विषुवतीय वन प्रदेशों में वाष्पोत्सर्जन द्वारा काफी बड़ी मात्रा में जल वायुमंडल में मिल जाता है।

जीव-जन्तुओं को भी अपने पोषण तथा वृद्धि के लिए जल की आवश्यकता होती है। जल जीव-जन्तुओं के शरीर के भार का महत्वपूर्ण हिस्सा है। जैव-प्रक्रियाओं में जल का कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण है। पौधों की प्रकाश संश्लेषण जैसी

जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं में जल महत्वपूर्ण माध्यम का कार्य करता है। जल पौधों में पोषक तत्वों के संचय का माध्यम भी है। जल ही जड़ों द्वारा मिट्टी से प्राप्त पोषक तत्वों को पौधों के विभिन्न अंगों में पहुँचाता है। उपापचयन के दौरान उत्पन्न अपशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालने के काम में जल ही माध्यम बनता है। इस प्रकार जल का परिसंचरण केवल स्थलमंडल और वायुमंडल में ही नहीं होता, अपितु जैव मंडल में भी होता है।

जलचक्र

पहले अध्यायों में हम महासागरों से वायुमंडल में, फिर वायुमंडल से स्थलमंडल में तथा वहाँ से पुन: महासागरों में जल के परिसंचरण के विषय में संक्षेप में पढ़ चुके हैं। वास्तव में जलचक्र एक अत्यंत जटिल प्रक्रिया है, जिसमें कई उपचक्र शामिल हैं। उदाहरण के लिए महासागरों का जल भाप बनकर जलवाष्प के रूप में वायुमंडल में मिल जाता है। वायुमंडल से वर्षण के रूप में जल पुन: महासागरों में पहुँच जाता है। इस उपचक्र में स्थलमंडल शामिल नहीं है। अन्य संभावित उपचक्रों के बारे में जानकारी प्राप्त कीजिए।

भूमंडलीय जल-संतुलन

जलमंडल, वायुमंडल तथा स्थलमंडल में उपलब्ध जल की कुल मात्रा अपरिवर्तनीय रहती है। लेकिन इनमें से प्रत्येक परिमंडल में जल की कुल मात्रा एक स्थान से दूसरे स्थान में तथा ऋतुओं के अनुसार बदलती रहती है। इन परिमंडलों के बीच न केवल जल का परिसंचरण होता है, अपितु उसका रूप भी बदलता रहता है। जल तरल

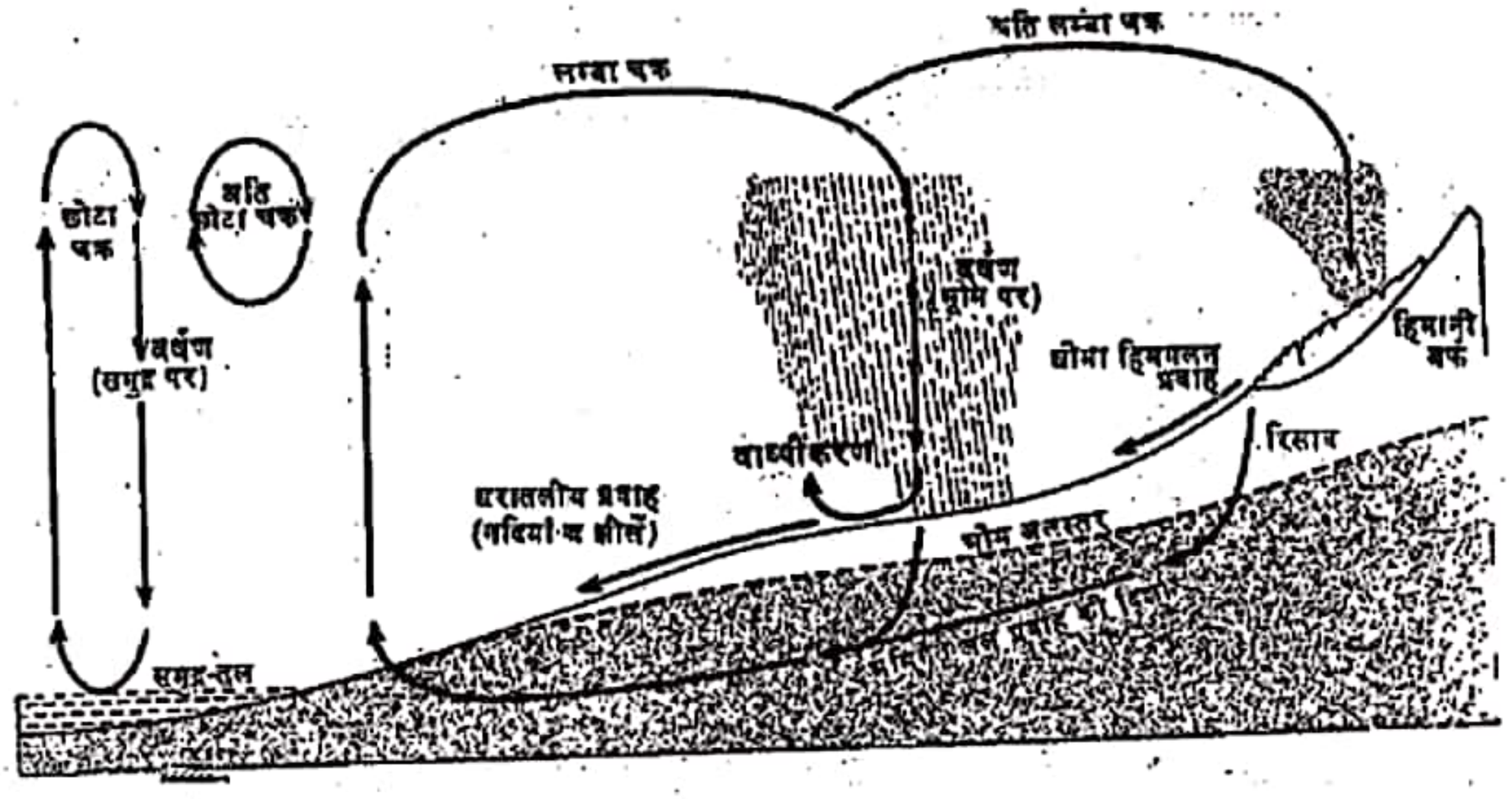

3.4 जलचक्र

ध्यान दीजिए कि जलचक्र, महासागर, वायुमंडल तथा स्थल मंडल के बीच जल का साधारण परिसंचरण नहीं है। जलचक्र के अंतर्गत कई उपचक्र कार्य करते हैं। आरेख में इनका सावधानीपूर्वक अध्ययन कीजिए।

अवस्था से गैसीय अवस्था में पहुँच जाता है और कभी वह बर्फ का ठोस रूप धारण कर लेता है,और फिर उल्टे क्रम में जल ठोस से गैस और फिर तरल अवस्था में पहुँच जाता है।

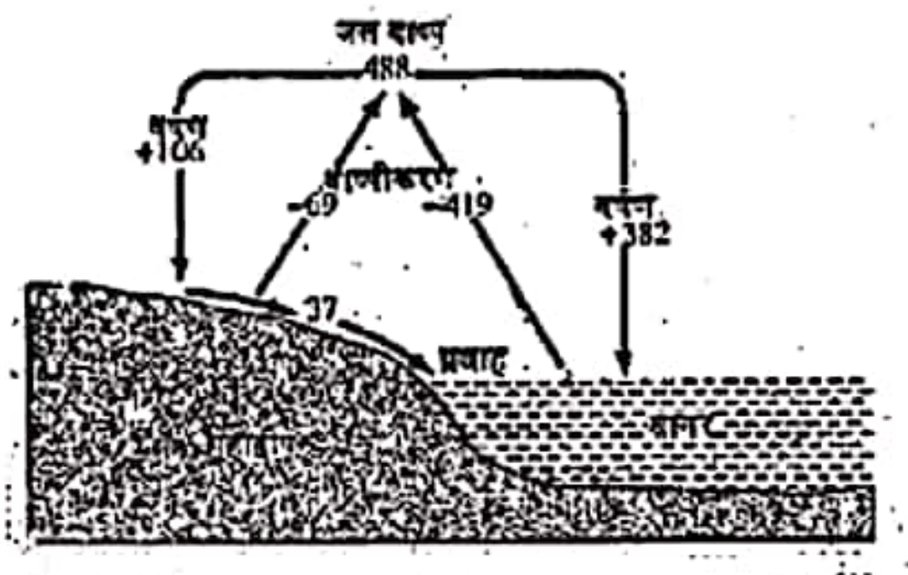

3.5 जल संतुलन

जल का आयतन प्रति वर्ष हज़ार घन किलोमीटर में दिया गया है।

महासागरों में वाष्पीकरण के द्वारा होने वाली जल की कमी पर ध्यान दीजिए। वर्षण तथा नदियों आदि के द्वारा महासागरों में जल फिर लौट आता है। इस प्रकार पृथ्वी पर जल का संतुलन लगभग बना रहता है।

हम जान चुके हैं कि पृथ्वी पर उपलब्ध जल की कुल मात्रा का 97 प्रतिशत भाग महासागरों में है। शेष 3 प्रतिशत अलवण या ताजे जल के रूप में उपलब्ध है। इस 3 प्रतिशत का तीन चौथाई ताजा जल बर्फ की चादरों तथा हिमानियों में संचित है। भूमिगत जल के भंडारों की तुलना में झीलों और नदियों में जल की कुल मात्रा बहुत कम है। महासागरों में वर्षण की अपेक्षा वाष्पीकरण अधिक होता है। लेकिन स्थल से नदियों के रूप में महासागरों में आया जल इस कमी को पूरा कर देता है। इस प्रकार एक इकाई के रूप में पृथ्वी पर जल का पूर्ण संतुलन है।

जल के परिसंचरण से थोड़ा सा भी परिवर्तन आने से स्थल तथा मृदा की परतों में उपलब्ध जल की मात्रा में और भूमिगत जल की मात्रा में परिवर्तन आ जाता है। स्थल पर रहनेवाले मनुष्य समेत सभी जीव-जंतु और वनस्पति, भूपृष्ठीय तथा भूमिगत जल पर आश्रित है। जल की उपलब्ध मात्रा में थोड़ा-सा भी अंतर आने से सूखा पड़ सकता है या बाढ़ आ सकती है। यह सही है कि महासागरों और वायुमंडल में जल प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। लेकिन मनुष्य को अपने उपयोग के लिए जल या तो स्थल पर वर्षण होने से मिलता है या भूपृष्ठ पर जलाशयों में संचित जल के भंडारों से मिलता है या भूमिगत जल के भंडारों से प्राप्त होता है।

स्वाध्याय

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए–
   (क) महासागरों के जल के महत्व की विवेचना कीजिए।
   (ख) जल की भौतिक अवस्था के परिवर्तन में कौन-कौन सी प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं?
   (ग) वर्षण के विभिन्न रूप क्या हैं?

(घ) जलस्तर का क्या अर्थ है?
(ङ) जल-चक्र का संक्षिप्त विवरण लिखिए।

2. अंतर स्पष्ट कीजिए–
(क) महाद्वीपीय निमग्न तट और महाद्वीपीय ढाल।
(ख) आपेक्षिक आर्द्रता तथा निरपेक्ष आर्द्रता।
(ग) वाष्पीकरण तथा वाष्पोत्सर्जन।
(घ) पारगम्य तथा अपारगम्य शैल।

3. निम्नलिखित में से प्रत्येक के लिए एक-एक पारिभाषिक शब्द दीजिए–
(क) वह प्रक्रिया जिसके परिणामस्वरूप बादल बनते हैं।
(ख) धरातल के नीचे जल से परिपूर्ण क्षेत्र की ऊपरी सीमा।
(ग) तापमान जिस पर वायु संतृप्त हो जाती है।
(घ) बर्फ के बड़े-बड़े रवों के रूप में होने वाला वर्षण।

4. भूमिगत जल के महत्व और उसकी उपलब्धि का विवरण लिखिए।
5. जलमंडल में जल के परिसंचरण की विवेचना कीजिए।
6. जीवमंडल में जल के कार्य की समीक्षा कीजिए।

स्वयं करें और खोजें

1. अपने क्षेत्र के जल आपूर्ति के विभिन्न स्रोतों का अध्ययन कीजिए और बताइए कि वे उस क्षेत्र की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त हैं या नहीं।
2. विभिन्न महीनों में अपने क्षेत्र की नदियों, झीलों और कुओं के जल स्तर को नोट करके चार्ट बनाइए।
3. अपने क्षेत्र में होने वाली वर्षा और हिमपात की तिथियाँ नोट कीजिए तथा उनकी मौसमी विषमताओं को पहचानिए।
4. भारत के मानचित्र में गर्म जल के प्रमुख झरनों की स्थिति दिखाइए।

पठनीय पुस्तकें

1. एन०के० होरौक्स : *फिजीकल ज्याग्रफी एंड क्लाइमटॉलाजी*, लौंगमैन, लंदन।
2. ब्लेक पी० : *फिजीकल ज्याग्रफी*, मैक्मिलन एण्ड कम्पनी, कलकत्ता।
3. मॉक हाउस एफ०जे० : *प्रिंसिपिल्स ऑफ फिजीकल ज्याग्रफी*, यूनिवर्सिटी ऑफ लंदन प्रेस, लंदन।
4. इ०ओ० राबिन्सन : *आउटलाइंस ऑफ जनरल ज्याग्रफी*, मैकमिलन, न्यूयार्क।

4

पृथ्वी का आवरण—वायुमंडल

पर्यावरण के भौतिक अंगों में वायुमंडल सबसे ज्यादा गतिशील है। तापमान और अन्य भौतिक दशाएँ, न केवल दिन और रात में बदलती हैं, अपितु उनमें कुछ घंटों की छोटी अवधि में भी परिवर्तन हो जाता है। गर्मियों में तीसरे पहर अचानक तूफान आ जाने से भारी वर्षा हो जाती है और तापमान में कमी आ जाती है। कभी मंद और कभी तेज चलती पवनों तथा आकाश में तैरते बादलों को तो हम देखते ही रहते हैं। तूफान पेड़ों को जड़ से उखाड़ देते हैं और इमारतों को नष्ट कर देते हैं। आप भी भाँति जानते हैं कि सब प्रकार के कार्यों और गति-विधियों का आधार ऊर्जा है। वायुमंडल में होने वाले सभी प्रकार के परिसंचरणों के लिए आवश्यक ऊर्जा का मुख्य स्रोत सूर्य ही है।

सूर्य

सूर्य पृथ्वी से लगभग 13 लाख गुना बड़ा है। यह हमारी पृथ्वी से लगभग 15 करोड़ किलोमीटर की दूरी पर है। सूर्य की केन्द्रीय क्रोड में हाइड्रोजन, हीलियम में बदलती रहती है। इस प्रक्रिया से भारी मात्रा में ऊर्जा पैदा होती है और सभी दिशाओं में विकिरित होती रहती है।

सूर्य से जिस प्रकार की ऊर्जा निकलती है, उसे विद्युत-चुम्बकीय विकिरण के नाम से जाना जाता है। सूर्य द्वारा जो विशाल परिमाण में ऊर्जा विकिरित होती है, उसके 2,00,00,00,000 भागों में से केवल एक ही भाग पृथ्वी प्राप्त कर पाती है। सूर्य द्वारा विकिरित ऊर्जा की मात्रा लगभग अपरिवर्तित रही है। जब सूर्य की किरणें, किसी सतह पर समकोण बनाती हुई पड़ती हैं, तब सूर्य की ऊर्जा की विकिरण दर 2 ग्राम कैलोरी, प्रति वर्ग सेंटीमीटर, प्रति मिनट होती है। इसमें यह माना गया है कि सूर्य की ऊर्जा के विकिरण को पृथ्वी के वायुमंडल की सीमाओं के बाहर नापा गया है, जिसमें ऊर्जा का थोड़ा सा भी ह्रास न हुआ हो।

सूर्यातप

पृथ्वी की सतह पर आने वाले सौर विकिरण को **सूर्यातप** कहते हैं। यह लघु तरंगों के रूप में प्राप्त होता है। सूर्यातप के वायुमंडल में प्रवेश करने पर, उसका कुछ भाग परावर्तित हो जाता है, कुछ भाग को वायुमंडल अवशोषित कर लेता है और उसका शेष अंश पृथ्वी की सतह पर पहुँचता है। बादल, हिमक्षेत्र, महासागर तथा अन्य जलाशय सूर्यातप को परावर्तित करते हैं। लगभग 35% ऊर्जा परावर्तित होकर अंतरिक्ष में विलीन हो जाती है।

वायुमंडल की ऊपरी परतों में मौजूद ओजोन

गैस सूर्य के परावैंगनी विकिरण को अवशोषित कर लेती है। इस प्रकार पृथ्वी इसके हानिकारक प्रभावों से बची रहती है। वायुमंडल की अन्य गैसें, धूल-कण आदि मिलकर सूर्यातप का केवल 14% भाग ही अवशोषित करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि वायुमंडल सूर्यातप के थोड़े से भाग को ही अवशोषित कर पाता है और इसी कारण वह सूर्यातप से सीधे गर्म नहीं होता।

सतह पर पहुँचकर उसे गर्म करता है। पृथ्वी भी ऊष्मा को पुन: अपेक्षाकृत दीर्घ तरंगों के रूप में विकिरित करती है। इसे पार्थिव विकिरण कहते हैं। पृथ्वी की सतह सूर्यातप की जितनी मात्रा अवशोषित करती है, ऊर्जा की ठीक उतनी ही मात्रा उससे विकिरित हो जाती है। इस प्रकार पार्थिव विकिरण 51 इकाई का हुआ। इन 51 इकाइयों में से वायुमंडल की निचली परतों में मौजूद जलवाष्प, कार्बन-डाइआक्साइड तथा अन्य गैसें 34 यूनिटों का अवशोषण कर लेती हैं। शेष 17 इकाई विकिरित होकर अंतरिक्ष में वापिस चली जाती हैं।

पार्थिव विकिरण

सूर्यातप का शेष 51% भाग ही पृथ्वी की

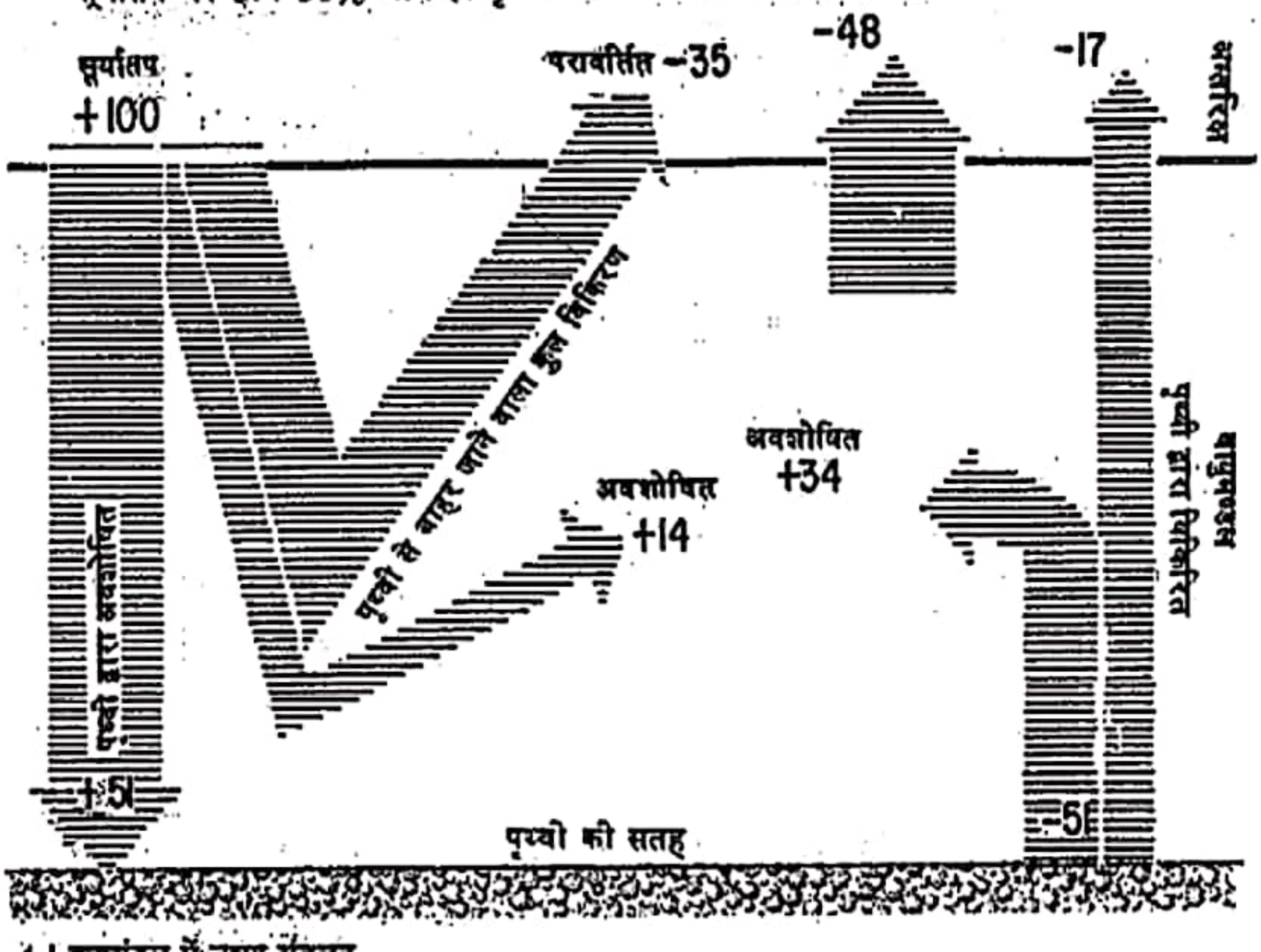

4.1 वायुमंडल में ऊष्मा संतुलन

भूपृष्ठ सौर विकिरण से गर्म होता है। सूर्य द्वारा विकिरित ऊर्जा का कितना भाग पृथ्वी पर पहुँचता है ?
ऊष्मा का कितने प्रतिशत भाग पृथ्वी द्वारा वायुमंडल में विकिरित कर दी जाती है ?

ऊष्मा का संतुलन

चित्र संख्या 4:1 से स्पष्ट है कि पृथ्वी पर ऊष्मा का एक सूक्ष्म संतुलन है। सूर्यातप की 100 इकाई वायुमंडल में प्रवेश करती हैं। इनमें से 35 इकाई परावर्तित हो जाती हैं, 17 इकाई पृथ्वी की सतह से विकिरित हो जाती हैं तथा 48 इकाइयों को वायुमंडल विकिरित कर देता है। इस प्रकार ऊष्मा की प्राप्ति और हानि बराबर हो जाती हैं।

वायुमंडल सर्यातप की 14 इकाइयों को अवशोषित करता है तथा 34 इकाई पार्थिव विकिरण से उसमें आ जाती हैं। इस प्रकार कुल 48 इकाई हो जाती है। वायुमंडल ऊर्जा की इन 48 इकाइयों को वापस अंतरिक्ष में विकिरित कर देता है।

पृथ्वी की सतह सूर्यातप की 51 इकाइयों को अवशोषित करती है तथा उतनी ही मात्रा अर्थात् 51 इकाइयाँ वापस विकिरित कर देती है। अतः इस प्रकार वायुमंडल मुख्यतः पार्थिव विकिरण से गर्म होता है, सीधे सूर्यातप से नहीं। वायुमंडल के कार्य की तुलना "ग्लास हाउस" या "ग्रीन हाउस" के कार्य से की जा सकती है। ठंडे प्रदेशों में सब्जियाँ और फूलों के पौधे "ग्लास हाउसों" में उगाए जाते हैं। "ग्लास हाउस" का आंतरिक भाग बाहर की अपेक्षा गर्म रहता है, क्योंकि काँच सर्यातप को अंदर तो आने देता है, लेकिन पार्थिव विकिरण को तत्काल बाहर नहीं निकलने देता। पृथ्वी को सब ओर से घेरने वाला वायुमंडल "ग्रीन हाउस" की भाँति ही कार्य करता है। यह सूर्यातप को अपने में से गुजरने देता है तथा पार्थिव विकिरण को अवशोषित कर लेता है। इसे वायुमंडल का "ग्रीन हाउस" प्रभाव कहते हैं। वायुमंडल पृथ्वी को गर्म रखकर एक कंबल का कार्य करता है। यदि पृथ्वी को सब ओर से घेरनेवाला वायुमंडल न होता, तो कैसी दशाएँ होतीं?

वायुमंडल मुख्यतः पार्थिव विकिरण से ही गर्म होता है। पृथ्वी की आकृति, इसका घूर्णन और परिक्रमण तापमान को प्रभावित करनेवाले प्रमुख कारक हैं। पृथ्वी की गोल आकृति के कारण, एक निश्चित समय पर सूर्य की किरणें इसके धरातल पर सब जगह लंबवत् नहीं पड़ती हैं। यदि पृथ्वी चपटी होती तो एक निश्चित समय पर सूर्य की किरणें सब जगह लंबवत् पड़तीं। (चित्र4.1) विषुवत वृत्त पर जब सूर्य की किरणें लंबवत् होती हैं, तब वे दोनों ध्रुवों पर स्पर्शीय होती हैं अर्थात् किरणें ध्रुवों को छूती हुई गुजर जाती हैं। इस अवस्था में सूर्य को क्षितिज पर ही देखा जा सकता है। यह अवस्था स्थायी हो जाती, यदि पृथ्वी का अक्ष उसके कक्षा तल के साथ समकोण पर होता।

अक्षांशीय कटिबंध

पृथ्वी का अक्ष ऊर्ध्वाधर से 23½° झुका हुआ है। अतः वह स्थान जहाँ किसी भी दिन सूर्य की किरणें लंबवत् पड़ती हैं, कर्क वृत्त (23½°उ.) तथा मकर वृत्त (23½°द.) के बीच ही स्थित है। कर्क वृत्त और मकर वृत्त के बीच का भाग उष्ण कटिबंध कहलाता है। इस कटिबंध में कहीं न कहीं सूर्य की किरणें वर्षभर सीधी पड़ती हैं। इसलिए यह कटिबंध सबसे अधिक सूर्यातप प्राप्त करता है, क्योंकि कर्क वृत्त तथा मकर वृत्त के मध्य सूर्य की किरणों का आपतन कोण 43° तथा 90° के बीच रहता है। (देखिए परिशिष्ट 1) विषुवत वृत्त पर आपतन कोण 66½° तथा 90° के बीच होता है। सूर्य की सीधी किरणें पृथ्वी की सतह को ज्यादा गर्म करती हैं, क्योंकि एक तो ऊर्जा अपेक्षाकृत छोटे क्षेत्र में संकेंद्रित हो जाती है और दूसरे किरणें वायुमंडल में कम दूरी तय करके आती

हैं। इसके विपरीत सूर्य की तिरछी किरणें ज्यादा बड़े क्षेत्र को गर्म करती हैं और वायुमंडल में ज्यादा दूरी तय करके आती हैं। अतः वे उस क्षेत्र को ज्यादा गर्म नहीं कर पातीं। (देखिए चित्र 4.3 (ख)।

शीतोष्ण कटिबंध

कर्क वृत्त और उत्तरी ध्रुव वृत्त (23½° उ. से 6½° उ.) तथा मकर वृत्त और दक्षिणी ध्रुव वृत्त (23½° द. से 66½° द.) के मध्य के क्षेत्र को शीतोष्ण कटिबंध कहते हैं। इन कटिबंधों में सूर्य

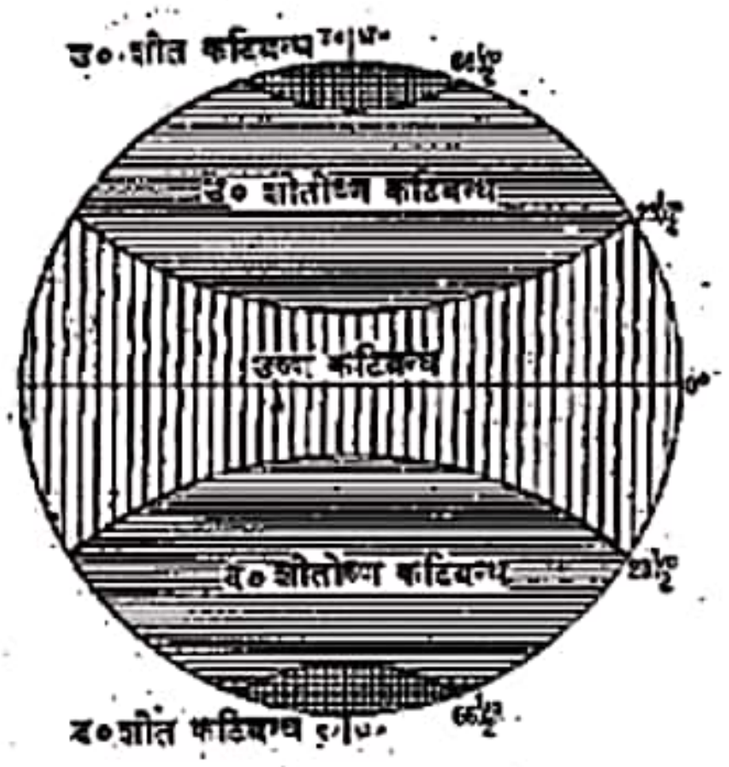

4.2 ताप कटिबंध

पृथ्वी पर प्राप्त सूर्यातप ही मुख्य रूप से तापमान के वितरण को निश्चित करता है। ध्यान दीजिए कि उपरोक्त वितरण को अक्षांशों की सहायता से दिखाने के लिए ग्लोब को किस प्रकार उष्ण शीतोष्ण तथा शीत कटिबंधों में विभाजित किया जाता है।

की किरणें कभी भी सीधी नहीं पड़तीं। यहाँ शीतऋतु की अपेक्षा ग्रीष्म ऋतु में आपतन कोण बड़ा तथा दिन की अवधि लंबी होती है। उष्ण कटिबंध की तुलना में शीतोष्ण कटिबंधों में ग्रीष्म ऋतु तथा शीत ऋतु में विषमताएं अधिक होती हैं। अक्षांशों के बढ़ने के साथ-साथ सूर्य की किरणों का आपतन कोण घटता जाता है। लेकिन ग्रीष्म ऋतु में उच्च अक्षांशों में दिन बड़े होते हैं।

शीत कटिबंध

शीत कटिबंध ध्रुवों के चारों ओर फैले हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में उत्तर ध्रुव और उत्तर ध्रुव वृत्त के मध्य, और दक्षिण गोलार्द्ध में दक्षिण ध्रुव तथा दक्षिण ध्रुव वृत्त के बीच ध्रुवीय कटिबंधों का विस्तार है। इन कटिबंधों में लंबी शीत ऋतु के दौरान सूर्य से प्रकाश नहीं मिलता। लेकिन ग्रीष्म ऋतु के दौरान सूर्य के प्रकाश की अवधि 20 घंटे से अधिक होती है। ग्रीष्म ऋतु में सूर्य के प्रकाश की लंबी अवधि होते हुए भी आपतन कोण के छोटा होने के कारण तापमान काफी कम रहता है।

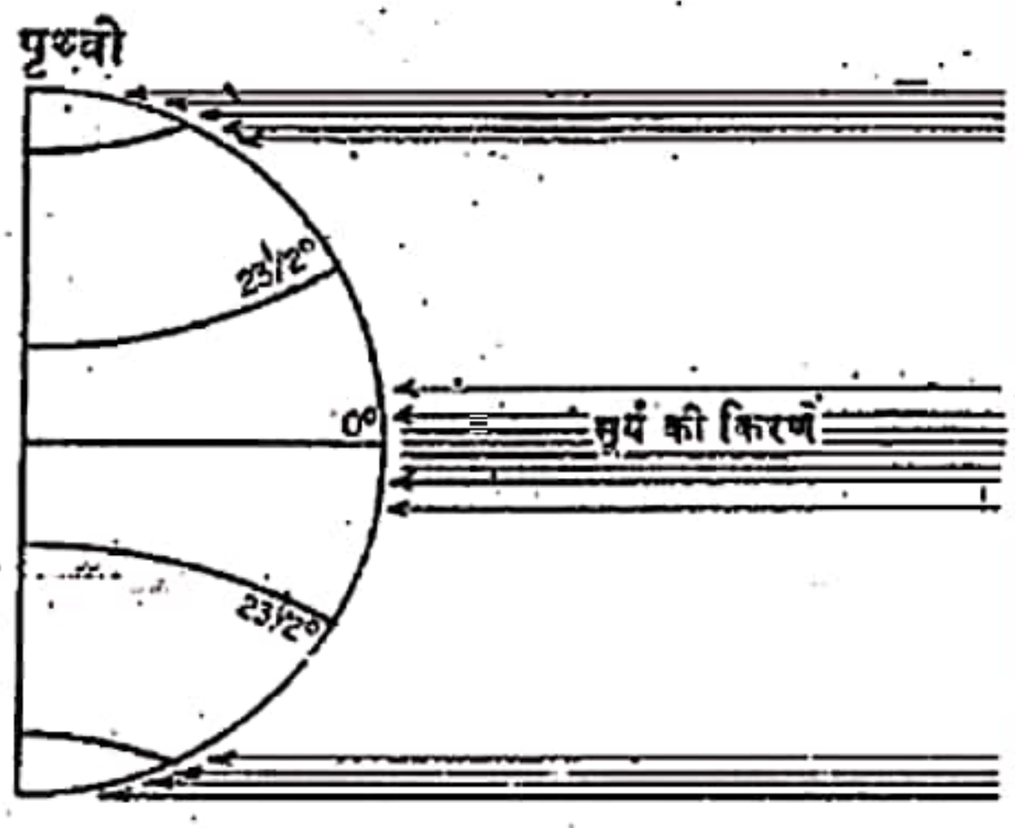

4.3 (क) सूर्य की किरणों का आपतन

विषुवत वृत्त पर सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं। गोलाकार पृथ्वी के ध्रुवों पर वे स्पर्शीय होती हैं। इनमें से कौन सी किरणों का आपतन कोण अधिक होगा तथा कौन सी किरणें कम ताप देंगी।

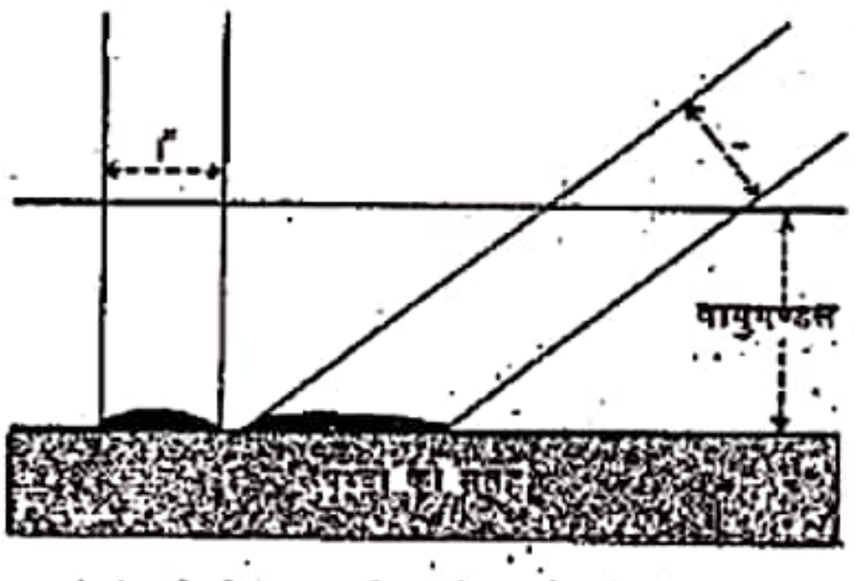

4.3 (ख) सीधी तथा तिरछी सूर्य की किरणें
देखें किस तरह दो प्रकार की किरणों का तापीय प्रभाव धरातल पर भिन्न होता है।

अक्षांशीय ऊष्मा संतुलन

हम जानते हैं कि यदि पृथ्वी और वायुमंडल पर एक साथ विकिरण किया जाए तो ऊष्मा का एक संतुलन दिखाई पड़ता है। ऊर्जा की कोई वास्तविक प्राप्ति या हानि नहीं होती है, लेकिन पृथ्वी और वायुमंडल के मध्य ऊर्जा का स्थानांतरण होता रहता है। पृथ्वी की गोल आकृति के कारण अक्षांशीय कटिबंधों में सूर्यातप के क्षैतिज वितरण में परिवर्तन आ जाता है। चित्र संख्या (4.4 क तथा ख) से स्पष्ट है कि 37½° उ. तथा 37½° द. अक्षांशों के बीच में ऊष्मा की प्राप्ति, उसकी हानि से कहीं अधिक होती है।

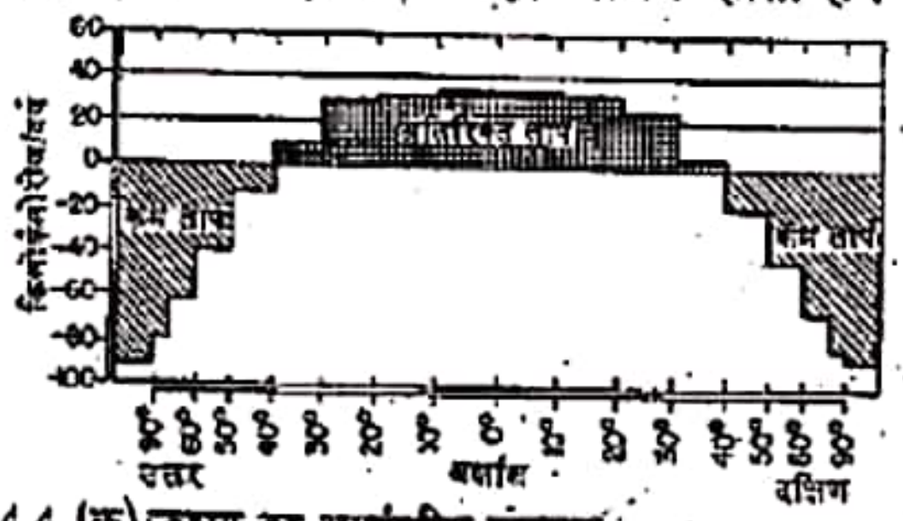

4.4 (क) ऊष्मा का अक्षांशीय संतुलन
भूपृष्ठ पर सूर्यातप का वितरण असमान है। अतिरिक्त और कम ऊर्जा के कटिबंधों के नाम बताइए। ऊष्मा का यह संतुलन किस प्रकार बना रहता है?

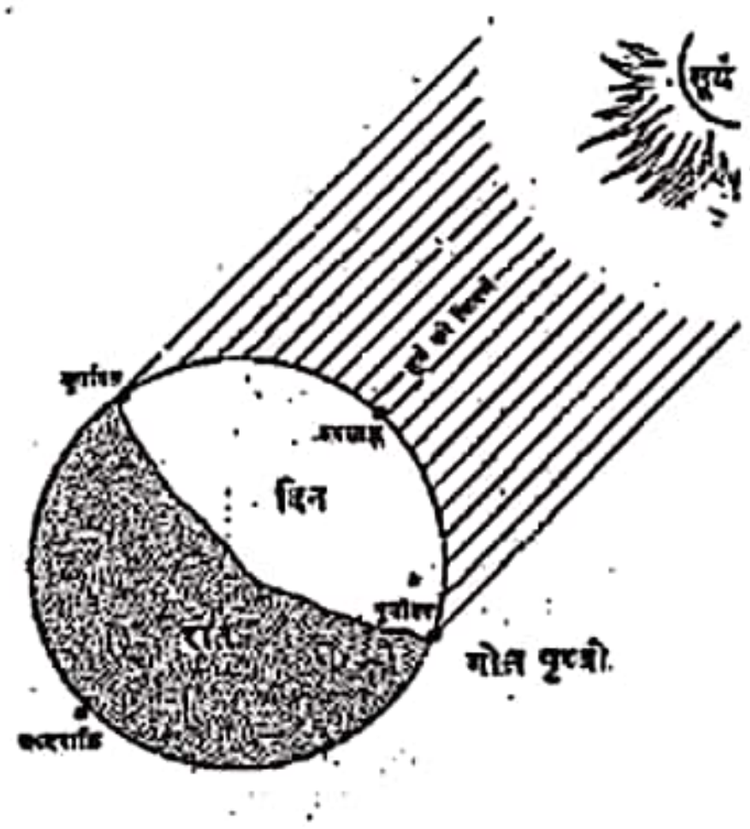

4.4 (ख) अलग अलग समय पर सूर्य की किरणें
देखें किस प्रकार घूमती हुई गोलाकार धरती पर सूर्य की किरणों का तापीय प्रभाव दिन के अलग-अलग समय पर भिन्न होता है। सायंकाल और रात को तथा सर्दियों के महीनों में तापक्रम घटना क्यों शुरू होता है?

इसके विपरीत मध्य और उच्च अक्षांशों में, ऊष्मा आती कम है और निकलती ज्यादा है। यह कैसे संभव है कि यहाँ ऊष्मा की प्राप्ति से उसकी हानि ज्यादा हो। यह केवल तभी संभव है जबकि निम्न अक्षांशों से अतिरिक्त ऊर्जा मध्य और उच्च अक्षांशों में स्थानांतरित हो जाए। ऊष्मा का यह स्थानांतरण पवनों और महासागरीय धाराओं के द्वारा होता है। पृथ्वी और वायुमंडल के असमान रूप से गर्म होने के कारण ही, वायुमंडल तथा महासागरों में परिसंचरण होता है। वायु और जल के परिसंचरण के द्वारा ही पृथ्वी पर ऊष्मा का संतुलन बना हुआ है।

स्थल और समुद्र की विषमताएँ

वायुमंडल पार्थिव विकिरण से गर्म होता है।

अतः भूपृष्ठ की प्रकृति वायुमंडल के गर्म और ठंडा होने का महत्वपूर्ण कारक है। मुख्य विषमता स्थल भागों तथा महासागरों के बीच है। भूपृष्ठ, जिसमें शैल और मृदा हैं, "चालन" (कंडक्शन) से गर्म होता है। शैल ऊष्मा की कुचालक है, अतः सूर्यातप भूपृष्ठ की केवल ऊपरी पतली सतह को ही गर्म कर पाता है। इस प्रक्रिया में ऊर्जा की पूरी मात्रा भूपृष्ठ की एक पतली परत को गर्म करने में लग जाती है। अतः दिन में तापमान बड़ी तेजी से बढ़ता है। स्थल भाग ऊष्मा का अच्छा विकिरक है, अतः यह रात में जल्दी से ठंडा हो जाता है।

जब सूर्यातप जल की सतह पर आता है, तो इस का कुछ भाग परावर्तित हो जाता है। जल, संवहन द्वारा गर्म होता है और इसलिए संवहनीय धाराएँ ऊष्मा को जल में काफी गहराई तक फैला देती हैं। इसके विपरीत स्थल में ऐसा नहीं हो पाता। अपने भौतिक गुणों के कारण जल, स्थल की अपेक्षा धीरे-धीरे गर्म होता है। स्थल की एक इकाई मात्रा का तापमान 1°से० बढ़ाने के लिए जितनी ऊर्जा चाहिए, उससे ढाई गुनी ऊर्जा की आवश्यकता जल की उतनी ही मात्रा का तापमान 1°से० बढ़ाने के लिए होती है। इसलिए दिन के समय जल जल्दी गर्म नहीं हो पाता है, जबकि इसके विपरीत जल के निकटवर्ती स्थल भाग जल्दी गर्म हो जाते हैं। रात के समय जल बहुत धीरे-धीरे ठंडा होता है।

ऐसी ही विषमताएँ ग्रीष्म ऋतु और शीत ऋतु में होती हैं। ग्रीष्म ऋतु में स्थल, जल की अपेक्षा अधिक गर्म हो जाता है, जबकि शीत ऋतु में स्थल, जल की तुलना में ठंडा रहता है। इसका अर्थ यह हुआ कि दिन और रात में तथा ग्रीष्म ऋतु और शीत ऋतु में स्थल पर जल की तुलना में तापमान की विषमताएँ अधिक होती हैं। क्योंकि तटीय प्रदेशों पर निकटवर्ती महासागरों का प्रभाव पड़ता है, इसलिए स्थल के आंतरिक भागों की तुलना में वहाँ तापमान की विषमताएँ काफी कम होती हैं। लंदन और मास्को के तापमान में ऐसी विषमताओं की तुलना कीजिए। लेकिन ऐसी विषमताएँ उच्च अक्षांशों में नगण्य हैं, क्योंकि वहाँ स्थल और जल दोनों ही बर्फ से ढके रहते हैं।

प्रचलित पवनें

किसी स्थान का तापमान पवनों के द्वारा भी परिवर्तित हो जाता है। शीत ऋतु में स्थल से आने वाली पवनें तापमान को घटा देती है, जबकि समुद्र से चलनेवाली पवनें तापमान को बढ़ा देती हैं। इसके विपरीत ग्रीष्म-ऋतु में स्थलीय पवनें तापमान को बढ़ा देती हैं जबकि समुद्रों से आने वाली पवनें तापमान को घटा देती हैं। निम्न अक्षांशों से चलनेवाली पवनें अधिक गर्म होती हैं जबकि मध्य और उच्च अक्षांशों से चलने वाली पवनें अधिक ठंडी होती हैं। इस प्रकार की पवनों का प्रभाव कुछ दिनों तक ही रहता है, क्योंकि फिर पवनों की दिशा बदल जाती है।

महासागरीय धाराएँ

महासागरीय धाराएँ जल की बहुत बड़ी मात्रा बहाकर हजारों किलोमीटर दूर तक ले जाती हैं। गर्म धाराएँ, जैसे अटलांटिक महासागर की गल्फस्ट्रीम, पश्चिमी यूरोप के तटीय प्रदेशों के तापमान को बढ़ा देती हैं। ठंडी धाराएँ जैसे कैलीफोर्निया की धारा, तटीय प्रदेशों के तापमान को कम कर देती हैं। यह प्रभाव तब और भी ज्यादा होता है, जब पवनें इन ठंडी धाराओं के ऊपर से होकर तट की ओर चलती हैं।

ऊँचाई

वायुमंडल नीचे से गर्म होता है, इसलिए

भूपृष्ठ के संपर्क में आने वाली वायुमंडल की सबसे निचली परत सबसे ज्यादा गर्म होती है। हम जैसे-जैसे ऊपर जाते हैं, तापमान क्रमशः घटता जाता है। समुद्रतल से ऊपर प्रति 165 मीटर की ऊँचाई पर 1°से० की दर से तापमान घटता जाता है। वायुमंडल की ऊपरी परतों में जलवाष्प और कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा कम होती है। अतः ऊष्मा-ऊर्जा को अवशोषित करने की उनकी क्षमता, निचली परतों की तुलना में बहुत कम रहती है। इसलिए नैनीताल जैसे पर्वतीय नगर, दिल्ली जैसे मैदानी नगरों की तुलना में ठंडे रहते हैं। उच्च पर्वत श्रेणियाँ पवनों के मार्ग में अवरोध बन जाती हैं। अतः पवनविमुख प्रदेश का तापमान प्रभावित होता है। उदाहरण के लिए, हिमालय गंगा के मैदानी भागों को, मध्य एशिया से आनेवाली ठंडी पवनों से बचाता है। इसीलिए शीत ऋतु में दक्षिण चीन में स्थित कैंटन की अपेक्षा कलकत्ता अधिक गर्म रहता है, यद्यपि दोनों लगभग एक ही अक्षांश पर स्थित हैं।

दैनिक चक्र और ऋतु चक्र

किसी निश्चित समय में किसी स्थान पर वायुमंडल का तापमान, सूर्यातप तथा पार्थिव विकिरण के संतुलन पर निर्भर करता है। तापमान के दैनिक चक्र से स्पष्ट है कि सूर्योदय के पश्चात् तापमान धीरे-धीरे बढ़ता है और दोपहर बाद लगभग तीन बजे सबसे अधिक हो जाता है। सूर्योदय से तीन बजे शाम तक सूर्यातप की मात्रा पार्थिव विकिरण की मात्रा की अपेक्षा अधिक रहती है। शाम को और रात में तापमान घटता है तथा सूर्योदय से कुछ पहले सबसे कम हो जाता है। यद्यपि दोपहर 12 बजे के लगभग सूर्य की किरणों का आपतन कोण अधिकतम होता है, लेकिन अधिकतम तापमान दोपहर बाद लगभग 3 बजे ही होता है। तापमान के अधिकतम बिन्दु तक पहुँचने में लगभग 3 घंटे की देरी का कारण यह है कि वायुमंडल सूर्यातप से सीधे गर्म न होकर पार्थिव विकिरण से गर्म होता है। पहले पृथ्वी गर्म होती है और फिर उससे वायुमंडल गर्म होता है। एक दिन के अधिकतम तापमान तथा न्यूनतम तापमान के अंतर को दैनिक तापांतर या दैनिक ताप परिसर कहते हैं। समुद्र तटीय प्रदेशों की तुलना में महाद्वीपों के आंतरिक भागों में दैनिक तापांतर अधिक होता है।

विभिन्न ऋतुओं के तापमान में अंतर होने का मुख्य कारण, सूर्य की किरणों के आपतन कोण तथा सूर्य के प्रकाश की अवधि में होने वाला अंतर है। (देखिए परिशिष्ट 1) उत्तरी गोलार्द्ध में यद्यपि 21 जून के आसपास अधिकतम सूर्यातप मिलता है, लेकिन अधिकतम तापमान सामान्यतः जुलाई के महीने में रिकार्ड किए जाता है। इस प्रकार तापमान को अधिकतम बिन्दु तक पहुँचने में 30 से 40 दिन की देरी हो जाती है। उसी प्रकार न्यूनतम सूर्यातप 21 दिसम्बर के आस-पास प्राप्त होता है परन्तु न्यूनतम तापमान सामान्यतः जनवरी के महीने में रिकार्ड किये जाते हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध में ऋतुओं का निर्धारित समय उत्तरी गोलार्द्ध की ऋतुओं के विपरीत होता है। विषुवतीय प्रदेश में वार्षिक तापांतर सबसे कम होता है, क्योंकि इस प्रदेश में ग्रीष्म ऋतु तथा शीत ऋतु में प्राप्त होने वाले सूर्यातप में बहुत कम भिन्नता रहती है। मध्य अक्षांशों में महाद्वीपों के आंतरिक भागों में वार्षिक तापांतर अधिक होता है। उदाहरण के लिए चेन्नई की अपेक्षा दिल्ली का वार्षिक तापांतर ज्यादा है। इसका अर्थ यह हुआ कि चेन्नई की तुलना में दिल्ली

में शीत ऋतु में ज्यादा ठंड तथा ग्रीष्म ऋतु में ज्यादा गर्मी पड़ती है।

वायुदाब तथा पवन

सूर्य द्वारा पृथ्वी और वायुमंडल के असमान रूप से गर्म होने तथा पृथ्वी के घूर्णन के कारण वायुमंडलीय दाब में अंतर आ जाता है। पृथ्वी पर तीन प्रमुख निम्न वायुदाब कटिबंध हैं तथा चार उच्च वायुदाब कटिबंध हैं (देखिए चित्र 4.5)।

4.5 प्रमुख वायुदाब तथा पवन कटिबंध

संसार की दाब पेटियों तथा भूमंडलीय पवनों पर ध्यान दीजिए। पवनों तथा उनके बहने की दिशाओं के नाम बताइए।

विषुवतीय निम्न वायुदाब कटिबंध के दोनों ओर प्रत्येक गोलार्द्ध में उपोष्ण कटिबंधों में एक-एक उच्च वायुदाब कटिबंध है। इन्हें उपोष्ण उच्च वायुदाब कटिबंध कहते हैं। ध्रुवीय प्रदेश उच्च वायुदाब के क्षेत्र हैं। प्रत्येक गोलार्द्ध में ध्रुवीय उच्च वायुदाब के क्षेत्रों तथा उपोष्ण उच्च वायुदाब कटिबंधों के बीच में एक-एक निम्न वायुदाब कटिबंध है। इन्हें उप-ध्रुवीय निम्न वायुदाब कटिबंध कहते हैं।

पवनें उच्च वायुदाब कटिबंधों से निम्न वायुदाब कटिबंधों की ओर चलती हैं। पृथ्वी के घूर्णन के कारण पवनों की दिशा बदल जाती है। प्रमुख भूमंडलीय पवनें हैं—संमार्गी पवनें, पछुआ पवनें और ध्रुवीय पवनें। संमार्गी पवनें प्रत्येक गोलार्द्ध में उपोष्ण उच्च वायुदाब कटिबंधों से विषुवतीय निम्न वायुदाब कटिबंध की ओर चलती हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में इन पवनों की दिशा उत्तर पूर्वी तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिण-पूर्वी होती है। पछुआ पवनें प्रत्येक गोलार्द्ध में उपोष्ण उच्च वायुदाब कटिबंधों से उपध्रुवीय निम्न वायुदाब कटिबंधों की ओर चलती हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में इन पवनों की सामान्य दिशा दक्षिण-पश्चिमी तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में उत्तर-पश्चिमी होती है। ध्रुवीय पवनें प्रत्येक गोलार्द्ध में ध्रुवीय उच्च वायुदाब के क्षेत्रों से, उप ध्रुवीय निम्न वायु दाब कटिबंधों की ओर चलती हैं। संमार्गी पवनों तथा पछुआ पवनों की अपेक्षा ध्रुवीय पवनों की दिशा तथा वेग परिवर्तनशील हैं।

वायुदाब कटिबंधों का खिसकना

कर्क वृत्त तथा मकर वृत्त के बीच सूर्य के आभासी संचरण के कारण ताप कटिबंध खिसक जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप प्रमुख वायुदाब कटिबंध भी ग्रीष्म ऋतु में ध्रुवों की ओर तथा शीत ऋतु में विषुवत वृत्त की ओर खिसक जाते हैं। इससे भूमंडलीय पवनों के प्रभाव क्षेत्र भी बदल जाते हैं। वायुदाब कटिबंधों के खिसकने से मध्य अक्षांशों में असाधारण ऋतुनिष्ठ विषमताएँ उत्पन्न हो जाती हैं। विषुवतीय तथा ध्रुवीय प्रदेशों में ऋतुनिष्ठ विषमताएँ सबसे कम होती हैं।

उच्च वायुदाब तथा निम्न वायुदाब केंद्रों के द्वारा भूमंडलीय पवनों का ढाँचा बदल जाता है।

उत्तरी गोलार्द्ध में निम्न वायुदाब केन्द्र के चारों ओर पवनें घड़ी की सुइयों के अनुसार चलती हैं। दक्षिण गोलार्द्ध में पवनों की दिशाएँ उल्टी हो जाती हैं।

अन्य पवनें

प्रमुख वायुदाब तथा पवन कटिबंधों के अतिरिक्त कुछ अन्य वायुदाब केंद्र तथा पवनें हैं। इन पवनों का महत्व स्थानीय तथा थोड़े समय के लिए होता है। इन पवनों में मानसून पवनें सबसे महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनका प्रभाव एशिया के बहुत बड़े क्षेत्र पर पड़ता है। ऋतुओं के अनुसार मानसून पवनों की दिशा बिल्कुल उलट जाती है। एशिया महाद्वीप में मानसूनी पवनों के लिए उपयुक्त दशाएँ हैं। एशिया महाद्वीप का आकार बहुत बड़ा है तथा यहाँ की ऋतुओं में असाधारण विषमताएँ हैं। ग्रीष्म ऋतु में पवनें हिंद महासागर तथा प्रशान्त महासागर से एशिया के मध्य भाग में स्थित, निम्न वायुदाब केंद्र की ओर चलती हैं। इसके विपरीत शीत ऋतु में एशिया महाद्वीप के मध्य भाग में, उच्च वायु दाब केन्द्र बन जाता है और वहाँ से ठंडी और शुष्क पवनें महासागरों की ओर चलती हैं।

चक्रवातों और प्रतिचक्रवातों का केवल स्थानीय महत्व होता है। चक्रवात निम्न वायुदाब केंद्र हैं, जिसमें वायुधाराएँ ऊपर की ओर चलती हैं। चक्रवात में पवन एक निम्न वायुदाब केन्द्र की ओर बहती हैं। जिस मार्ग से चक्रवात गुजरते हैं, वहाँ आँधियाँ आती हैं तथा भारी वर्षा होती हैं। प्रतिचक्रवात उच्च वायुदाब केन्द्र हैं, जहाँ से सभी दिशाओं में पवनें चलती हैं। प्रतिचक्रवातों का संबंध स्वच्छ आकाश तथा साफ मौसम से है।

स्थल-समीर तथा समुद्र-समीर

तटीय प्रदेश में चलने वाली स्थल तथा समुद्र-समीर, स्थानीय पवनों के उदाहरण हैं। दिन के समय स्थल शीघ्र गर्म हो जाता है और गर्म वायु के ऊपर उठने के कारण वहाँ निम्न वायु दाब क्षेत्र बन जाता है। दोपहर के बाद समुद्र-समीर इस निम्न वायुदाब क्षेत्र की ओर चलने लगती है। रात के समय, समुद्र के ऊपर की वायु, स्थल के ऊपर की वायु की अपेक्षा गर्म होती है। अतः समुद्र की अपेक्षा स्थल पर वायुदाब अधिक होता है। इसी के परिणामस्वरूप रात के समय स्थल-समीर समुद्र की ओर चलती है।

वर्षण का वितरण

हम वायुमंडल में मौजूद जलवाष्प तथा वाष्पीकरण, संघनन और वर्षण की प्रक्रियाओं के महत्व से भलीभाँति परिचित हैं। पवनों की दिशा तथा महाद्वीपों और महासागरों का वितरण, वर्षण, के वितरण को प्रभावित करता है। महासागरों से स्थलखंडों की ओर चलने वाली **अभितट पवनें** वर्षा करती हैं, क्योंकि महासागरों के ऊपर से गुजरते समय ये भारी मात्रा में जलवाष्प ग्रहण कर लेती हैं। **अपतट पवनें** स्थल से महासागरों की ओर चलती हैं। अतः इनमें नमी की मात्रा बहुत कम होती है। इसलिए ये पवनें बहुत कम वर्षा कर पाती हैं। वायुमंडल में ऊपर की ओर उठती हुई वायुधाराओं से भारी वर्षा होती है, क्योंकि ऊपर उठने से वायु ठंडी होती जाती है। वायु के ठंडे होने से बादल बनते हैं और वर्षण होता है। वायु या तो संवहनीय धाराओं के कारण ऊपर उठती है या पवनों के मार्ग में पर्वतों का अवरोध आने से मध्य अक्षांशों के चक्रवातों में उपोष्ण कटिबंध से आने वाली अपेक्षाकृत गर्म और आर्द्र वायु ध्रुवीय ठंडी

वायु के ऊपर चढ़ जाती है। इस प्रक्रिया में उपोष्ण कटिबंधीय गर्म और आर्द्र वायु के ऊपर उठने और ठंडी होने से वर्षण होता है। नीचे उतरते समय वायु गर्म और शुष्क हो जाती है। अत: जिन प्रदेशों में वायु नीचे उतरती है, वे शुष्क रहते हैं।

भारी वर्षा के प्रदेश (औसत वार्षिक वर्षा 200 सेंटीमीटर से अधिक)

वर्षा का वितरण दिखाने वाले संसार के मानचित्र का अध्ययन करने से पता चलता है कि संसार में भारी वर्षा के तीन प्रमुख प्रदेश हैं – (1) अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया के विषुवतीय प्रदेश, (2) मध्य अक्षांशों में पश्चिमी तटीय प्रदेश, (3) एशिया में मानसूनों से प्रभावित तटीय प्रदेश। विषुवतीय प्रदेशों में सारे साल उच्च तापमान बना रहता है। इस कारण यहाँ वायु संवहनीय धाराओं के रूप में ऊपर उठती है, जिसके फलस्वरूप सारे साल भारी वर्षा होती है। इस प्रकार होने वाली वर्षा को संवहनीय वर्षा कहते हैं।

संवहनीय धाराओं में दोपहर के बाद बहुत तेजी आ जाती है, जिससे अचानक मूसलाधार वर्षा होने लगती है। विषुवतीय प्रदेशों की संवहनीय वर्षा बिजली की चमक और बादलों की गड़गड़ाहट के साथ होती है। विषुवतीय प्रदेशों के अतिरिक्त संवहनीय वर्षा ग्रीष्म ऋतु में महाद्वीपों के आंतरिक भागों में भी होती है।

मध्य और उच्च अक्षांशों में महाद्वीपों के पश्चिम तटीय प्रदेशों में भारी वर्षा होती है, क्योंकि यहाँ पछुआ पवनें समुद्र से स्थल की ओर

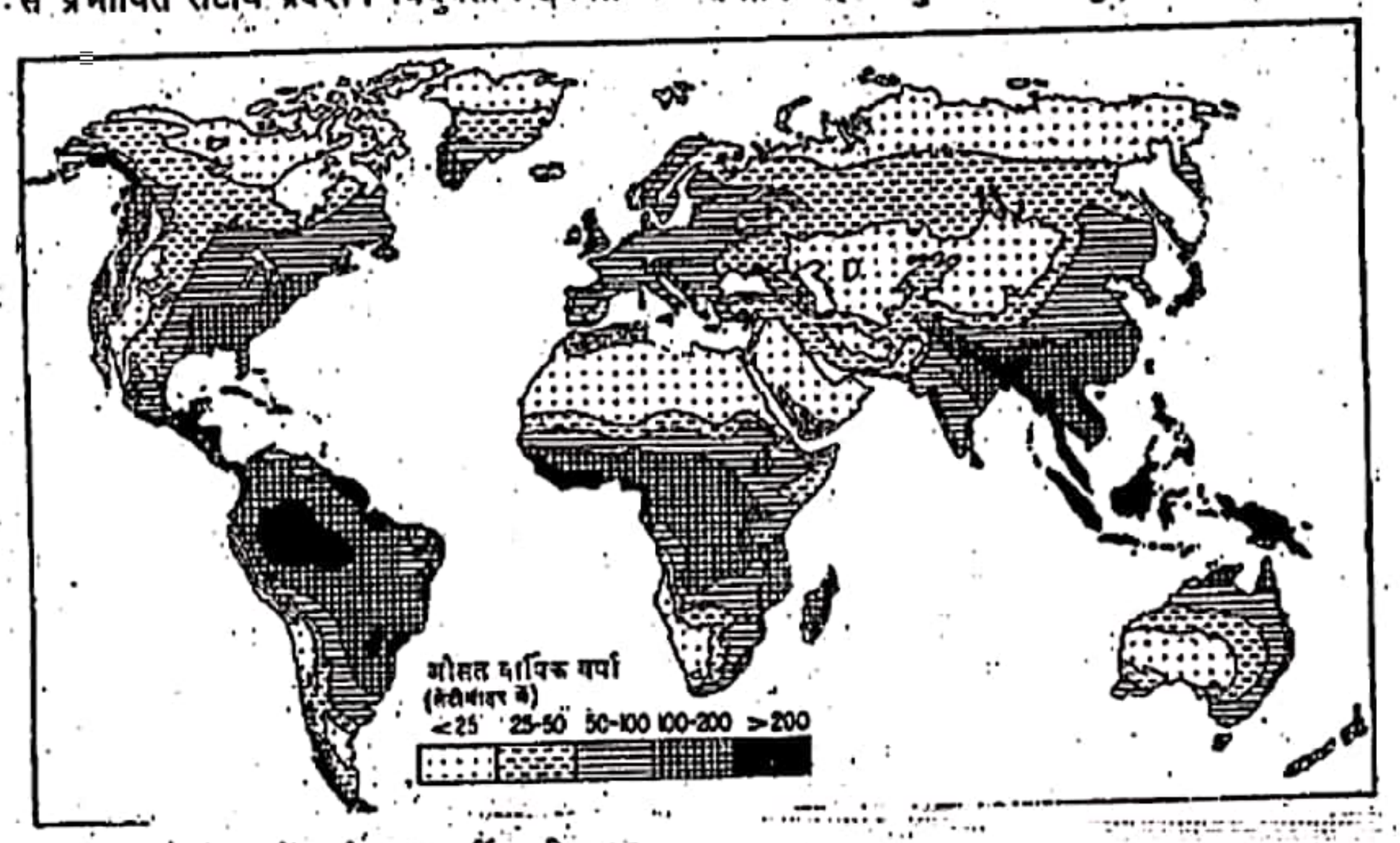

4.6 संसार में वर्षण का वार्षिक वितरण

पृथ्वी पर वर्षण की प्रादेशिक भिन्नताओं पर ध्यान दीजिए। बहुत भारी तथा बहुत कम वर्षणवाले तीन देशों के नाम बताइए।

चलती हैं। इन प्रदेशों में वर्षा वहाँ होती है, जहाँ से मध्य अक्षांशीय चक्रवात गुजरते हैं। इस प्रकार की वर्षा को चक्रवाती वर्षा कहते हैं। उत्तर अमेरिका के ब्रिटिश कोलंबिया में तथा दक्षिणी अमेरिका के दक्षिण चिली में पश्चिमी तट के साथ साथ फैले पर्वतीय प्रदेशों में बहुत वर्षा होती है।

दक्षिण एशिया के मानसूनी प्रदेशों में भारी वर्षा होती है। यह वर्षा ग्रीष्म ऋतु में, हिन्दमहासागर से एशिया के आंतरिक भाग में विकसित निम्न वायुदाब केन्द्र की ओर चलनेवाली पवनों के द्वारा होती है। जो पर्वतीय ढाल इन पवनों के सामने पड़ते हैं, वहाँ विशेष रूप से भारी वर्षा होती है। इस प्रकार की वर्षा को पर्वतकृत वर्षा कहते हैं, क्योंकि पर्वतों के कारण वायु ऊपर उठने को बाध्य हो जाती है। इस प्रकार ऊपर उठकर वायु ठंडी हो जाती है और वर्षा करती है। ग्रीष्म ऋतु में भारत के पश्चिमी तट पर तथा हिमालय के पूर्वी प्रदेशों में, दक्षिण-पश्चिम मानसून से बहुत वर्षा होती है।

साधारण वर्षा वाले प्रदेश (औसत वार्षिक वर्षा 100 से 200 सें.मी.)

उपोष्ण कटिबंधों में उत्तरी गोलार्द्ध में संमार्गी पवनें उत्तर-पूर्व से चलती हैं तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में दक्षिण पूर्व से चलती हैं। अतः उपोष्ण कटिबंधों में महाद्वीपों के पूर्वी भागों में अच्छी वर्षा होती है, क्योंकि यहाँ पूर्वी पवनें महासागरों की ओर से चलती हैं। महाद्वीपों के आंतरिक भागों में निम्न वायुदाब होने के कारण ग्रीष्म ऋतु में ये पवनें बहुत तेज होती हैं। अतः वर्षा अधिकतर गर्मी के महीनों में ही होती है। आंतरिक भागों की ओर पूर्व से पश्चिम की तरफ बढ़ने पर वर्षा घटती जाती है। पूर्वी ब्राजील, पूर्वी चीन तथा दक्षिण-पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका, साधारण वर्षा वाले प्रदेश हैं। भारी वर्षा वाले विषुवतीय प्रदेश के दोनों ओर भी साधारण वर्षा वाले प्रदेश मिलते हैं।

कम वर्षा वाले प्रदेश (औसत वार्षिक वर्षा 25 से.मी. से कम)

बहुत ही कम वर्षा वाले प्रदेश मरुस्थल के नाम से जाने जाते हैं। इन्हें तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(क) उष्ण कटिबंधीय मरुस्थल

संमार्गी पवनों के कटिबंध में महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में फैले हैं। ये प्रदेश स्थल की ओर से आने वाली शुष्क पवनों के प्रभाव क्षेत्र में रहते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका का कैलिफोर्निया का मरुस्थल, सहारा, अरब, पश्चिमी-आस्ट्रेलिया, दक्षिण-पश्चिम अफ्रीका में कालाहारी तथा दक्षिण अमेरिका में अटाकामा गर्म मरुस्थलों के उदाहरण हैं।

(ख) विशाल महाद्वीपों के आंतरिक प्रदेशों में भी वर्षा कम होती है। इसका कारण यह है कि ये प्रदेश महासागरों की ओर से आने वाली आर्द्र पवनों के प्रभाव से दूर हैं। कुछ प्रदेश जैसे तिब्बत और ईरान ऊँचे पर्वतों से घिरी वृष्टि छाया द्रोणियाँ हैं। इन मरुस्थलों को मध्य-अक्षांशीय मरुस्थल कहते हैं।

(ग) ठंडे मरुस्थल ध्रुवीय प्रदेशों में फैले हैं। ये प्रदेश उच्च वायुदाब के केन्द्र है। यहाँ से ठंडी और शुष्क पवनें सभी दिशाओं में चलती हैं। अतः ये प्रदेश बहुत ही शुष्क है। अंटार्कीटका तथा ग्रीनलैंड ठंडे मरुस्थलों के उदाहरण हैं।

ऋतुओं के अनुसार वर्षा का वितरण

विषुवतीय प्रदेशों में ऋतुओं के अनुसार तापमान तथा वायुदाब में कोई विशेष अंतर नहीं

पड़ता। संवहनीय वर्षा सारे साल होती है। इन प्रदेशों में कुछ स्थानों पर 23 सितम्बर तथा 21 मार्च के आसपास दो बार अधिकतम वर्षा होती है। इन तिथियों में सूर्य विषुवत वृत्त के ठीक ऊपर होता है। इसी प्रकार मध्य अक्षांशों में महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में सारे साल पछुआ पवनें चलती हैं। ये पवनें कोष्ण महासागरों से महाद्वीपों की ओर चलती हैं। इन प्रदेशों में भी साल भर वर्षा होती है।

संसार के अधिकांश दूसरे भागों में वर्षा केवल ग्रीष्म ऋतु तक ही सीमित है। इसका मुख्य कारण यह है कि ग्रीष्म ऋतु में महाद्वीपों के आंतरिक भागों में निम्न वायुदाब केन्द्र बन जाते हैं। इन्हीं निम्न वायुदाब केन्द्रों की ओर महासागरों से पवनें चलती हैं। शीत ऋतु में महाद्वीपों पर उच्च वायुदाब केंद्र विकसित हो जाते हैं तथा वहाँ से ठंडी और शुष्क पवनें सभी दिशाओं में चलती हैं। परिणामस्वरूप शीतऋतु शुष्क

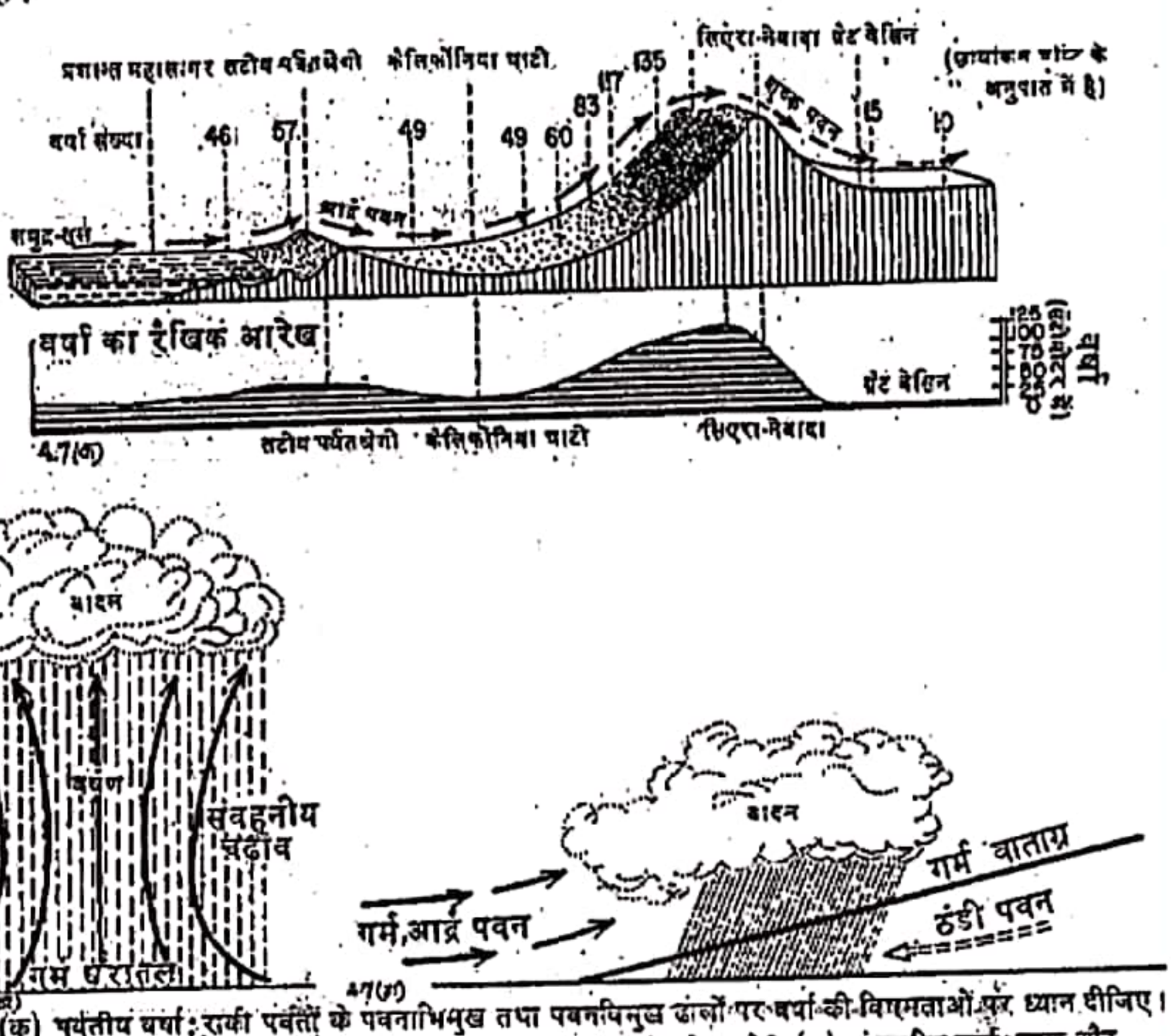

4.7 (क) पर्वतीय वर्षा: रॉकी पर्वतों के पवनाभिमुख तथा पवनविमुख ढालों पर वर्षा की विषमताओं पर ध्यान दीजिए। रॉकी पर्वतों के पूर्व में वृष्टि छाया प्रदेश बन गया है। यह क्यों होता है? (ख) संवहनीय वर्षा: उष्ण और आर्द्रवायु के आरोहण तथा इसके परिणामस्वरूप बने बादलों को देखिए। इस प्रकार की वर्षा में बादलों की गड़गड़ाहट तथा बिजली की चमक के साथ मूसलाधार पानी गिरता है। संसार के किन भागों में ऐसी वर्षा सामान्य है? (ग) चक्रवातीय वर्षा: चक्रवात में निम्न दाब केंद्र की ओर चारों तरफ से पवनों के चलने के फलस्वरूप कोष्ण और आर्द्र वायु ऊपर उठ जाती है।

रहती है। विषुवत वृत्त के दोनों ओर उपोष्ण कटिबंधों में संवहनीय वर्षा केवल ग्रीष्म ऋतु में ही होती हैं।

भूमध्यसागरीय प्रदेश ही ऐसा है जहाँ ग्रीष्म ऋतु शुष्क होती है तथा वर्षा शीत ऋतु में होती है। यह प्रदेश क्योंकि महाद्वीपों के पश्चिमी भाग में फैला है इसलिए यहाँ शीत ऋतु में पछुआ पवनों के कटिबंध में चलनेवाले चक्रवातों तथा "अवदाबों" से वर्षा होती है। ग्रीष्म ऋतु में यह प्रदेश स्थल से चलनेवाली संमार्गी पवनों के प्रभाव क्षेत्र में आ जाता है। अतः यहाँ ग्रीष्म ऋतु में बिल्कुल वर्षा नहीं होती।

वर्षा के वितरण में ऋतुओं के अनुसार परिवर्तन के अलावा वार्षिक परिवर्तन भी होता है अर्थात् किसी साल कम वर्षा होती है तो किसी साल ज्यादा। एशिया के मानसूनी प्रदेशों तथा साधारण वर्षा वाले प्रदेशों की वर्षा में वार्षिक परिवर्तनशीलता बहुत अधिक होती है। इन प्रदेशों में वर्षा की कमी से सूखा पड़ जाता है तथा वर्षा की अधिकता से बाढ़ आ जाती है। वर्षा के वार्षिक परिवर्तनों का संबंध वायुमंडल के परिसंचरण में होने वाले परिवर्तनों से है, जिनके परिणामस्वरूप स्थल पर चलनेवाली पवनों की दिशा तथा तीव्रता में परिवर्तन आ जाता है। वायुमंडल के परिसंचरण तथा वर्षण संबंधी प्रक्रियाओं की अच्छी जानकारी प्राप्त करके, सूखे तथा बाढ़ का सही-सही पूर्वानुमान लगाया जा सकता है।

मौसम और जलवायु

अब तक हम तापमान, वायुदाब, पवनों तथा वर्षा के वितरण के बारे में अच्छी तरह जान चुके हैं। किसी स्थान पर किसी विशेष समय में इन तत्वों के संदर्भ में, वायुमंडलीय दशाओं के योग को मौसम कहते हैं। एक ही स्थान में ऋतुओं के अनुसार विभिन्न प्रकार की मौसमी दशाओं का अनुभव हो सकता है। मौसमी दशाएँ कुछ घंटों या कुछ दिनों की अवधि में बदल सकती हैं, उदाहरण के लिए बदली तथा वर्षा वाला मौसम कुछ दिनों तक रह सकता है।

जलवायु मौसम से भिन्न है। जलवायु उन सामान्य लक्षणों को महत्व देती है, जो मौसम के अनेक तत्वों के औसत "मान" पर आधारित रहते हैं। किसी स्थान की जलवायु उस स्थान के एक लंबे समय जैसे एक ऋतु या एक वर्ष के मौसम की दशाओं का संयुक्त चित्र है। मौसम का संबंध किसी एक स्थान से हो सकता है, लेकिन जलवायु का संबंध किसी विशाल क्षेत्र की वायुमंडलीय दशाओं से होता है।

मौसम और जलवायु के तत्व

किसी स्थान की वायुमंडलीय दशा, तापमान, वायुदाब, पवन, आर्द्रता, वर्षा, धूप और बदली जैसे तत्वों का संयुक्त रूप है। इन तत्वों को मौसम विज्ञान केंद्रों में विभिन्न उपकरणों द्वारा नापा जाता है तथा प्राप्त आँकड़ों को एक केन्द्रीय कार्यालय में भेज देते हैं। वहाँ उन आँकडों के आधार पर मौसम मानचित्र तैयार किए जाते हैं। किसी विशाल क्षेत्र की मौसम की दशाओं के अध्ययन में ऐसे मौसम मानचित्रों से बड़ी सहायता मिलती है। मौसम मानचित्र मौसम की दशाओं का पूर्वानुमान लगाने में भी सहायक होते हैं।

तापमान, वर्षा और अन्य तत्वों के मासिक औसत के आधार पर किसी स्थान की जलवायु के बारे में जाना जा सकता है। यह मौसम संबंधी औसत सामान्यतः एक बहुत लंबे समय (35 वर्ष)

से संबंधित अभिलेखों से प्राप्त किए जाते हैं। इस प्रकार छोटी अवधि के मौसम संबंधी परिवर्तनों को अलग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, जुलाई महीने की औसत वर्षा विगत 35 वर्षों के जुलाई महीनों की औसत वर्षा है। इस प्रकार जलवायु संबंधी आँकड़े विभिन्न तत्वों के औसत पर आधारित हैं। लेकिन मौसम संबंधी आँकड़े किसी विशेष समय पर वास्तविक प्रेक्षणों द्वारा ज्ञात किए जाते हैं। जलवायु के मानचित्र एक महीने या ऋतु अथवा पूरे वर्ष की औसत दशाओं को प्रदर्शित करते हैं। इसके विपरीत मौसम मानचित्र किसी विशेष समय के मौसम की दशाओं को दर्शाते हैं।

जलवायु को प्रभावित करनेवाले कारक

किसी स्थान की जलवायु अनेक कारकों पर निर्भर है। ये कारक जलवायु के विभिन्न तत्वों को प्रभावित करते हैं। हम अब तक तापमान, वायुदाब और पवन तथा वर्षा को प्रभावित करने वाले कारकों की विवेचना कर चुके हैं। जलवायु को प्रभावित करनेवाले ये कारक एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदलते रहते हैं। परिणामस्वरूप संसार के विभिन्न भागों में जलवायु की दशाएँ भी भिन्न-भिन्न हैं। जलवायु में प्रादेशिक विभिन्नताओं के साथ-साथ ऋतु संबंधी भिन्नताएँ भी होती हैं।

अक्षांश

अक्षांश जलवायु को प्रभावित करनेवाला सबसे महत्वपूर्ण कारक है। अक्षांश किसी स्थान पर प्राप्त होने वाले सूर्यातप की मात्रा का तथा ऋतुओं के अनुसार इसमें होने वाले परिवर्तनों के अंतर को नियंत्रित करता है। विषुवत वृत्त पर सूर्यातप की सबसे अधिक मात्रा प्राप्त होती है। ध्रुवों की ओर सूर्यातप की मात्रा क्रमशः घटती जाती है तथा ध्रुवों पर सबसे कम हो जाती है।

पृथ्वी के घूर्णन के प्रभाव से वायुमंडलीय परिसंचरण तथा महासागरीय धाराओं में परिवर्तन आ जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि प्रमुख ताप कटिबंधों और मुख्य वायुदाब तथा पवन कटिबंधों का संबंध अक्षांश से है।

वायुमंडल में आर्द्रता की मात्रा का संबंध भी अक्षांशों से है, क्योंकि जलवाष्प के रूप में आर्द्रता को धारण करने की क्षमता का संबंध तापमान से है। निम्न अक्षांशों में उच्च तापमान के कारण महासागरों तथा अन्य जलाशयों में वाष्पीकरण सबसे ज्यादा होता है। सबसे कम वाष्पीकरण ध्रुवों पर होता है। वायुमंडल में आर्द्रता की मात्रा विषुवत वृत्त से ध्रुवों की ओर घटती जाती है। वर्षा का वितरण भी सामान्यतः विषुवत वृत्त से ध्रुवों की ओर घटता जाता है। इस प्रकार वर्षा और तापमान के वितरण की सामान्य प्रवृत्ति अक्षांशीय कटिबंधों से संबंधित है।

स्थल और जल की विषमता

यदि भूपृष्ठ में एकरूपता होती तो ऊर्जा और आर्द्रता का अक्षांशीय प्रारूप जैसे का तैसा बना रहता। लेकिन भूपृष्ठ पर स्थल और जल का न केवल असमान वितरण है, अपितु दोनों के भौतिक गुणों में भी असाधारण विषमताएँ हैं। इन्हीं के परिणामस्वरूप ऊर्जा और आर्द्रता के अक्षांशीय प्रारूप में परिवर्तन आ जाते हैं। हमें ज्ञात है कि महासागरों की तुलना में स्थलखंड, ग्रीष्म ऋतु में अधिक गर्म तथा शीत ऋतु में अधिक ठंडे रहते हैं। महासागरों की अपेक्षा स्थलखंडों पर तापमान की दैनिक तथा ऋतुनिष्ठ विषमताएँ अधिक होती हैं। तापमान में परिवर्तनों के कारण स्थलखंडों पर

ग्रीष्म ऋतु में निम्न वायुदाब केंद्र तथा शीत ऋतु में उच्च वायुदाब केन्द्र बन जाते हैं। वायुदाब की इन दशाओं के कारण ग्रीष्म ऋतु में तेज अभितट पवन तथा शीत ऋतु में अपतट पवनें चलती हैं। पवनों की दिशाओं का ऋतु के अनुसार उलट जाना, एशिया के मानसूनी प्रदेशों में बहुत सामान्य बात है क्योंकि यहाँ महाद्वीपों के आकार की विशालता के कारण स्थल और जल की विषमताएँ स्पष्ट हैं।

स्थल और जल का वितरण संसार में वर्षा के वितरण को भी प्रभावित करता है। उपोष्ण कटिबंधों में महाद्वीपों के पूर्वी भागों में 100 सें.मी. से अधिक वार्षिक वर्षा होती है। इसके विपरीत इन्हीं कटिबंधों में महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में गर्म मरुस्थल हैं। वर्षा के वितरण का यह प्रारूप पूर्वी भागों में अभितट पवनों तथा पश्चिमी भागों में अपतट पवनों से संबंधित है। मध्य अक्षांशों में महाद्वीपों के पश्चिमी भागों में महासागरों की ओर से चलने वाली पछुआ पवनों से भारी वर्षा होती है। वर्षा पूर्व की ओर महाद्वीपों के भीतरी भागों में घटती जाती है।

उच्चावच

वायुमंडल की निचली परतों में चलनेवाली पवनों के मार्ग में उच्च पर्वत श्रेणियाँ तथा ऊँचे अवरोध बन जाते हैं। हम पढ़ चुके हैं कि हिमालय की पर्वत-श्रेणियाँ, मध्य एशिया से आनेवाली ठंडी पवनों को रोक लेती हैं। पर्वत श्रेणियों के कारण पवनों को ढाल के ऊपर चढ़ना पड़ता है। इस प्रक्रिया में पवनाभिमुख पर्वतीय ढालों पर काफी वर्षा हो जाती है। इसके विपरीत पर्वत श्रेणियों के उस पार पवन विमुख ढालों पर वायु नीचे उतरती है और गर्म हो जाती है। यह प्रदेश अपेक्षाकृत सूखा रहता है तथा वृष्टि-छाया-प्रदेश के नाम से जाना जाता है। पश्चिमी घाट पर्वतों के वृष्टि-छाया-प्रदेश में स्थित, पुणे में मुंबई की अपेक्षा कम वर्षा होती है। पर्वतीय प्रदेशों में निकटवर्ती मैदानी भागों की अपेक्षा काफी कम तापमान रहता है। शिमला, दार्जिलिंग और कोडैकनाल पर्वतीय स्थान हैं। ग्रीष्म ऋतु में लोग मैदानी भागों की गर्मी से बचने के लिए इन पर्वतीय स्थानों में आते हैं।

महासागरीय धाराएँ

महासागरीय धाराएँ जल की विशाल मात्रा को बहुत दूर तक बहाकर ले जाती हैं। समुद्र तट के निकटवर्ती स्थलखंडों के तापमान पर महासागरीय धाराओं के प्रभाव की विवेचना हम कर चुके हैं। महासागरीय धाराओं का प्रभाव तब स्पष्ट होता है जब अभितट पवनें समुद्र से स्थल की ओर चलती हैं। महासागरीय गर्म धाराएँ वायुमंडल में आर्द्रता की मात्रा बढ़ा देती हैं। इससे तटवर्ती प्रदेशों में वर्षा होती है।

जलवायु और मनुष्य

किसी प्रदेश की जलवायु मनुष्य को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों ही प्रकार से प्रभावित करती है। मनुष्य पर तापमान का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। इसीलिए वह ऋतुओं के अनुसार उपयुक्त वस्त्र पहनकर अपने आपको सर्दी, गर्मी और बरसात से बचाता है। हम शीत ऋतु में ठंड से बचने के लिए ऊनी वस्त्र पहनते हैं। ग्रीष्म ऋतु में, जब खूब गर्मी पड़ती है, तब सूती वस्त्र अच्छे लगते हैं, क्योंकि वे पसीना सोख लेते हैं और उनमें वायु का परिसंचरण होता रहता है। ठंडे प्रदेशों में लोग चुस्त कपड़े पहनते हैं। इसके विपरीत गर्म प्रदेशों में रहनेवाले ढीले-ढाले कपड़े पहनते हैं। ऐसे कपड़ों मे हवा अंदर-बाहर आती-जाती रहती है,

जिससे शरीर को ठंडक मिलती है। गर्म लहर (लू) और शीत लहर से कुछ लोग मर भी जाते हैं, क्योंकि ऐसे लोगों के पास अत्यधिक गर्मी और कड़कड़ाती सर्दी से बचने के लिए उपयुक्त और पर्याप्त कपड़े नहीं होते। कभी-कभी तो मकान न होने से लोगों को खुले स्थानों में, गर्मी-सर्दी का सामना करना पड़ता है। जलवायु में परिवर्तन होने से कभी सूखा पड़ता है तो कभी बाढ़ आती है। मनुष्य इन दोनों से प्रत्यक्ष रूप में प्रभावित होता है।

मनुष्य जलवायु की दशाओं के अनुसार ही अपने मकान बनाता है। भारी वर्षा वाले प्रदेशों जैसे केरल में ढालू छतों वाले मकान बनाए जाते हैं, ताकि वर्षा का पानी तुरंत बह जाए। मरुस्थलों में चपटी छत वाले मकान बनाए जाते हैं। ठंडे प्रदेशों के मकानों के दरवाजों और खिड़कियों में शीशे लगाए जाते हैं, जिनसे अधिक से अधिक धूप आये और वे शीत ऋतु मे गर्म बने रहें। गर्म प्रदेशों के मकानों में चौड़े बरामदे होते हैं। ये मकानों को सीधा धूप से बचाते हैं। इन मकानों में बड़े-बड़े दरवाजे और खिड़कियाँ लगाई जाती हैं ताकि खूब हवा अंदर बाहर आ-जा सके और मकान का भीतरी भाग, बाहर की अपेक्षा ठंडा बना रहे। हिमालय के पर्वतीय प्रदेशों में मकान बनाने के लिए दक्षिणाभिमुख ढाल पसंद किए जाते हैं, क्योंकि ऐसे मकानों में धूप खूब आती है। आजकल मनुष्य जलवायु की दशाओं पर नियंत्रण करके, आराम से रहने के लिए अनेक प्रकार के यंत्रों का उपयोग करता है। इन यंत्रों में बिजली के पंखे, वातानुकूलक, हीटर और आर्द्रकर मुख्य हैं लेकिन इन यंत्रों में ऊर्जा का भारी खर्चा होता है।

जलवायु न केवल मनुष्य के कपड़ों और मकानों को प्रभावित करती है, अपितु यह उस पर अप्रत्यक्ष प्रभाव भी डालती है। किसी प्रदेश की प्राकृतिक वनस्पति और वहाँ की फसलें सीधे जलवायु से संबंधित हैं। प्रत्येक पौधे के लिए एक विशेष प्रकार के वर्धन काल की आवश्यकता होती है, जिसमें पौधे के लिए उपयुक्त तापमान और आर्द्रता हो। किस प्रदेश में कौन सी फसल पैदा की जाए, यह उस प्रदेश की जलवायु द्वारा ही निर्धारित होता है। उदाहरण के लिए गन्ना, कपास और चावल उष्ण कटिबंध के लिए उपयुक्त फसलें हैं। मध्य या उच्च अक्षांशों में, जहाँ तापमान कम रहता है, ये फसलें नहीं उगाई जा सकतीं। यही नहीं, यदि किसी क्षेत्र में वर्षा या सिंचाई द्वारा पर्याप्त जल उपलब्ध न हो तो वहाँ चावल और गन्ना नहीं पैदा किए जा सकते। बड़े पैमाने पर पशु और भेड़ पालन भी जलवायु की दशाओं से संबंधित है। ठीक इसी तरह किसी प्रदेश के वनों के प्रकार तथा उनका व्यापारिक उपयोग भी जलवायु की दशाओं से संबंधित है। इस प्रकार कृषि, पशुपालन और लकड़ी काटने जैसे प्राथमिक व्यवसाय जलवायु की दशाओं से प्रभावित होते हैं। यह सही है कि मनुष्य ने अपने तकनीकी ज्ञान से कुछ हद तक, जलवायु की विषमताओं पर काबू पा लिया है। वह ठंडे प्रदेशों में ग्लास हाउसों में गर्म प्रदेशों की फल-सब्जियाँ उगा सकता है। विशेष रूप से बने मकानों में पशुओं को पाल सकता है। लेकिन इन सब में खर्च बहुत होता है और लाभ कम।

जलवायु की दशाओं में अंतर आने से उत्पादित फसलों में भी फर्क पड़ जाता है। इसी से फसलों के विनिमय की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए मध्य अक्षांशों के औद्योगिक देशों को उष्ण कटिबंधीय देशों से कपास तथा जूट

का आयात करना पड़ता है। यूरोपीय देशों की माँग के आधार पर ही आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड का पशुपालन का धंधा फल-फूल रहा है। इस प्रकार कृषि, पशु चारण तथा वन उत्पादों में अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का आधार, जलवायु में अंतर का होना ही है।

जनजाति के लोगों का रहन-सहन तो आज भी जलवायु की दशाओं के द्वारा नियंत्रित होता है। उष्ण कटिबंधीय वर्षा-वनों तथा टुण्ड्रा प्रदेश में रहनेवाली जनजतियाँ भोजन संग्रह, शिकार तथा मछली पकड़कर अपना जीवन निर्वाह करती हैं। भोजन की खोज में उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान में घूमना पड़ता है। पशु और भेड़ें मुख्यतः घास के मैदानों में पाली जाती हैं। मरुस्थलीय तथा अर्ध-मरुस्थलीय प्रदेशों की चलवासी जनजातियाँ चरागाहों और पानी की तलाश में अपने पशुओं के साथ इधर-उधर घूमती रहती हैं। ऐसी घुमक्कड़ जनजातियाँ ध्रुवीय टुण्ड्रा प्रदेश में भी रहती हैं।

मनुष्य अपनी विकसित तकनीकी के बल पर, किसी भी प्रकार की जलवायु में आराम से रह सकता है। वह ध्रुवीय प्रदेशों में "ग्लास हाउस" बनाकर सब्जियाँ और फूल उगाने में समर्थ है। मनुष्य भोजन, वस्त्र तथा आवश्यकता की अन्य वस्तुएँ दूसरे देशों से आयात कर लेता है। रबड़ जैसे प्राकृतिक उत्पादों की कमी को उसने कृत्रिम उत्पादों द्वारा पूरा कर लिया है। मनुष्य ने जलवायु की दशाओं तथा उसकी परिवर्तनशीलता के अनुसार जीना सीख लिया है। इस प्रक्रिया में मनुष्य ने जलवायु की दशाओं में भी परिवर्तन कर दिए हैं।

स्वाध्याय

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए—
   (1) "ग्रीन हाउस" प्रभाव की व्याख्या कीजिए।
   (2) "ऊष्मा संतुलन" से क्या अभिप्राय है?
   (3) विभिन्न ऋतुओं में सूर्य के आपतन कोण में परिवर्तन आने का क्या कारण है?
   (4) प्रमुख वायुदाब कटिबंधों के नाम लिखिए।
   (5) विभिन्न प्रकार के मरुस्थलों का वर्णन कीजिए।
   (6) तापमान पर ऊँचाई के प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।
2. अंतर स्पष्ट करिए—
   (1) सूर्यातप और पार्थिव विकिरण।
   (2) दैनिक तापांतर तथा वार्षिक तापांतर।

(3) संवहनीय वर्षा और पर्वतकृत वर्षा।
(4) मौसम तथा जलवायु।

3. जलवायु को प्रभावित करनेवाले कारकों का विवरण दीजिए।
4. पृथ्वी पर वर्षा के वितरण का वर्णन कीजिए।
5. अक्षांशीय परिवर्तनों का संकेत करते हुए ऊष्मा संतुलन की विवेचना कीजिए।

स्वयं करें और खोजें

1. अपने निकटतम मौसम विज्ञान केंद्र में जाकर तापमापी, वायुदाब मापी आदि यंत्रों के विषय में जानकारी प्राप्त कीजिए।
2. एक नोट बुक में अपने क्षेत्र के मौसम की दशाओं का दैनिक रिकार्ड रखिए और ऋतुनिष्ठ विषमताओं का वर्णन कीजिए।
3. समाचार पत्रों में प्रकाशित भारत के मौसम मानचित्रों को इकट्ठा कीजिए और उनके द्वारा ऋतुनिष्ठ विषमताओं का वर्णन कीजिए।

पठनीय पुस्तकें

1. ग्लेन ट्रिवार्था : इंट्रोडक्शन टु क्लाइमेट, मैग्राहिल, न्यूयार्क।
2. प्रीस डी०एम० एण्ड वुड एच०आर०बी० : फाउंडेशन ऑफ ज्याग्रफी, यूनिवर्सिटी ट्यूटोरियल प्रेस, लंदन।
3. इ०ओ० राबिंसन : आउटलाइंस ऑफ जनरल ज्याग्रफी मैकमिलन, न्यूयार्क।

5

जैवमंडल

हम जानते हैं कि अपने जैवमंडल के कारण पृथ्वी एक अनोखा ग्रह है। जैवमंडल में अनेक प्रकार के जीव हैं। उन्हें मुख्य रूप से तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। 1. जन्तु, 2. पौधे, और 3. रोगाणु। इस पृथ्वी पर 10 लाख से भी अधिक जाति के जंतु तथा 3 लाख से भी अधिक जाति के पौधे हैं। जीव वहीं रहते हैं, जहाँ वायुमंडल, जलमंडल और स्थलमंडल मिलते हैं। पर्यावरण के इन तीनों अंगों और जैवमंडल के जीवों के बीच पदार्थ और ऊर्जा का आदान-प्रदान होता रहता है। जंतु तो ऋतु-परिवर्तनों के अनुसार एक स्थान से दूसरे स्थान में रहने के लिए चले जाते हैं। लेकिन पौधों की जड़ें तो मृदा में होती हैं, अतः वे चल-फिर नहीं सकते। इसीलिए वे अपने आपको ऋतु-परिवर्तनों के अनुसार ढाल लेते हैं। जंतु और पौधे एक दूसरे पर निर्भर करते हैं।

यद्यपि जैवमंडल पृथ्वी की एक पतली परत है, लेकिन यह हमारे जीवन के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। हमें भाँति-भाँति के भोजन पदार्थ जैवमंडल के जीवों से मिलते हैं। यही नहीं कपड़ों, मकानों और अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति का स्रोत भी जैवमंडल है। पृथ्वी पर हमारे जीवन के अस्तित्व का आधार जैवमंडल है। अतः जैवमंडल के विभिन्न जीवों के अंतर्संबंधों को तथा भौतिक पर्यावरण और जैवमंडल के संबंधों को समझना, हमारे लिए बहुत आवश्यक है।

पारिस्थितिक तंत्र

पौधे, जंतु तथा अन्य जीव और भौतिक पर्यावरण एक साथ मिलकर पारिस्थितिक तंत्र या परितंत्र बनाते हैं। पारिस्थितिकी वह विज्ञान है, जो किसी क्षेत्र में रहनेवाले विभिन्न जीवों के परस्पर संबंधों तथा भौतिक पर्यावरण से उनके संबंधों का अध्ययन करता है। किसी क्षेत्र में रहने वाले जीव एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, क्योंकि उनमें आपस में तथा भौतिक पर्यावरण के साथ पदार्थ और ऊर्जा का आदान-प्रदान होता रहता है। निरन्तर पारस्परिक क्रिया के कारण पारितंत्र भी उतना ही गतिशील है, जितना कि भौतिक पर्यावरण। विभिन्न जीव भौतिक पर्यावरण के किसी भी परिवर्तन के अनुसार अपने आपको ढाल लेते हैं।

परितंत्र के घटक

पारितंत्र के, जैव और अजैव दो घटक हैं। भौतिक पर्यावरण के अजैव घटक, किसी क्षेत्र में रहनेवाले जीवों की विभिन्न प्रजातियों को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए स्थल खंडों पर रहने वाले जीव, सागर जल में रहनेवाले जीवों से भिन्न हैं। विभिन्न स्थल खंडों पर पाए जाने वाले पौधों और जंतुओं की प्रजातियों में भी जलवायु की दशाओं के कारण भिन्नताएँ आ जाती हैं।

मृदा, जल और वायुमंडल में विद्यमान रासायनिक पदार्थ, पारितंत्र के अजैव घटक हैं।

इन रासायनिक द्रव्यों में जल, आक्सीजन, कार्बन डाइआक्साइड और खनिज (फासफेट, नाइट्रेट आदि) जैसे अजैव पदार्थ हैं और कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन और विटामिन आदि जैव पदार्थ हैं। पारितंत्र के अन्य अजैव तत्वों में जलवायु के तत्व जैसे तापमान, वर्षा, धूप की अवधि, पवन, मृदा, स्थल खंडों का ढाल, किसी प्रदेश के जलाशयों की बनावट, शामिल हो सकते हैं।

जैव घटकों के दो प्रमुख वर्ग हैं—उत्पादक और उपभोक्ता। उत्पादक वे जीव हैं, जो भौतिक पर्यावरण से अपना भोजन स्वयं बना लेते हैं। इन्हें स्वपोषित जीव भी कहते हैं। हरे पौधे प्राथमिक उत्पादक हैं, क्योंकि वे सूर्य की ऊर्जा की सहायता से अजैव पदार्थों को जैव पदार्थों में बदलते हैं। इस प्रक्रिया को **प्रकाश संश्लेषण** कहते हैं। प्रकाश संश्लेषण में पौधे वायुमंडल से कार्बन डाइ-आक्साइड और मृदा से खनिज तथा जल लेकर, सूर्य की ऊर्जा के द्वारा, जैव पदार्थों का संश्लेषण करते हैं। पेड़-पौधों की पत्तियों में मौजूद पर्णहरित (क्लोरोफिल) नामक हरे वर्णक के द्वारा प्रकाश संश्लेषण संभव होता है। महासागरीय जल में पादपप्लवक प्राथमिक उत्पादक हैं, क्योंकि वे सौर ऊर्जा का उपयोग करके अपना भोजन स्वयं बनाते हैं।

अन्य सभी जीव उपभोक्ता या **परपोषित** कहलाते हैं, क्योंकि वे अपने भोजन के लिए दूसरे जीवों पर आश्रित हैं। केवल पौधों से भोजन प्राप्त करने वाले जीव **शाकाहारी** या **प्राथमिक उपभोक्ता** कहलाते हैं। खरगोश प्राथमिक उपभोक्ता या शाकाहारी जीव है, जो उपभोक्ता दूसरे जंतुओं को अपना भोजन बनाते हैं, उन्हें

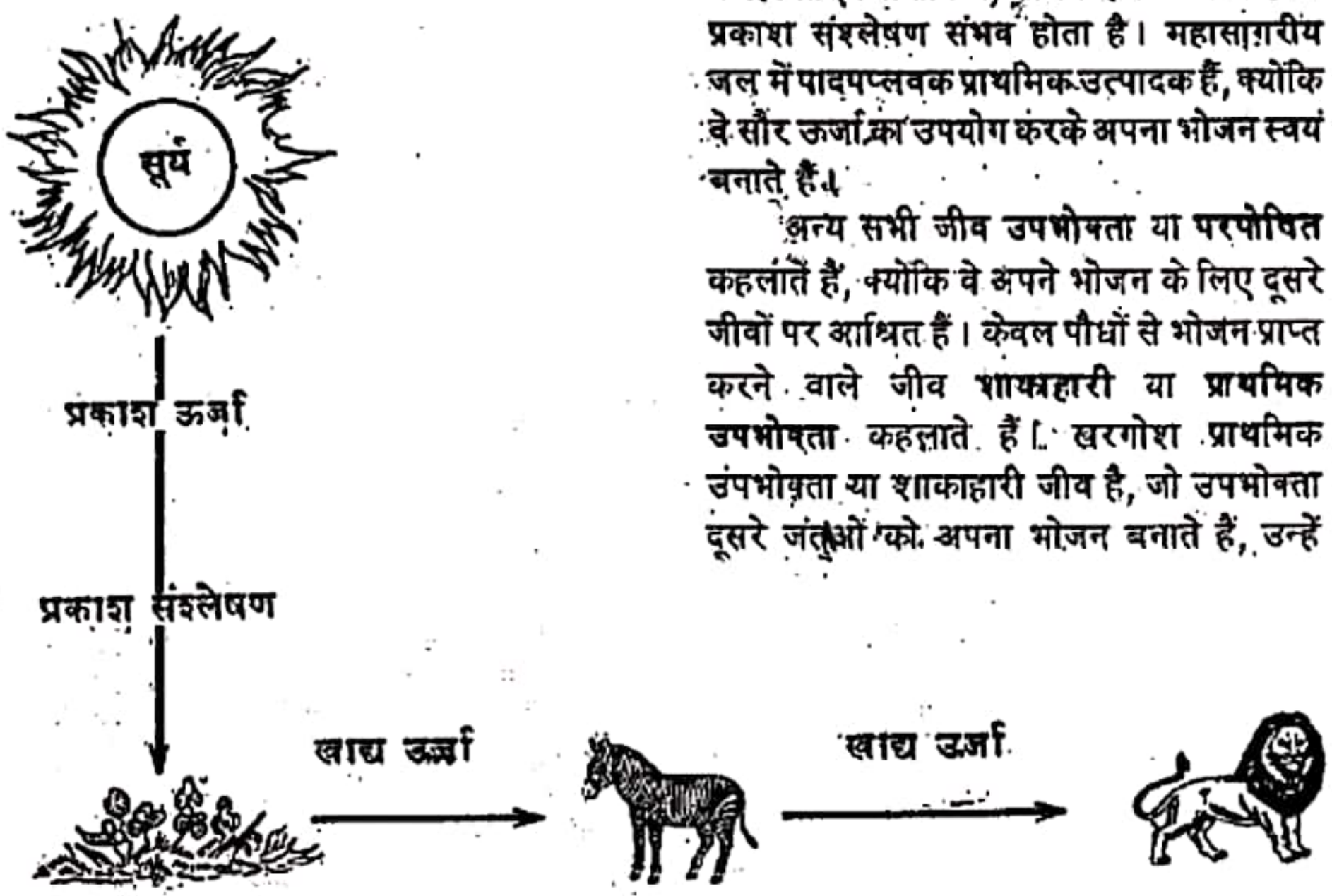

5.1 खाद्य शृंखला

ध्यान दीजिए कि सूर्य से प्राप्त ऊर्जा एक जीव से दूसरे जीव में किस प्रकार स्थानांतरित होती है। इसे पारिस्थितिक तंत्र या पारितंत्र कहते हैं।

मांसाहारी या गौण उपभोक्ता कहते हैं। शेर, मांसाहारी जीव या गौण उपभोक्ता है। मनुष्य सर्वाहारी है, क्योंकि वह पौधों और जंतुओं दोनों से ही अपना भोजन प्राप्त करता है। उपभोक्ता का एक चौथा वर्ग भी है, जो पौधों और जंतुओं के मृत या अपघटित ऊतकों को अपना भोजन बनाते हैं। इन्हें **विघटक** या **अपरदभोजी** कहते हैं। जीवाणु और फफूँदी, दीमक और मैगट विघटक जीव हैं। विघटक जीव पौधों और जंतुओं के अपरद (सड़ा गला अंश) से ऊर्जा और पोषक तत्व प्राप्त करते हैं। अपने भोजन की प्रक्रिया में विघटक जीव, जैव पदार्थों को अजैव पदार्थों में बदल देते हैं, जिन्हें हरे पौधे ग्रहण कर लेते हैं और इस तरह चक्र पूरा हो जाता है।

खाद्य शृंखला तथा खाद्य जाल

मनुष्य समेत सभी जीवों को भोजन की आवश्यकता होती है। भोजन से ही उन्हें विकास, पोषण तथा प्रजनन के लिए ऊर्जा मिलती है। भोजन से प्राप्त ऊर्जा का कुछ अंश जैव प्रक्रियाओं में लग जाता है। ऊर्जा का शेष भाग श्वसन प्रक्रिया द्वारा ऊष्मा-ऊर्जा के रूप में पर्यावरण में विलीन हो जाता है। बिना पचा भोजन बाहर निकल जाता है और गल सड़ जाता है। घास भूमि में खरगोश घास खाते हैं और लोमड़ी खरगोशों को खाती है। यह एक साधारण खाद्य शृंखला है। कुछ जीव दूसरे विभिन्न प्रकार के जीवों को खाते हैं। जैसे शेर खरगोश, हिरन, भेड़, बकरी और लोमड़ी को खाता है। इस प्रकार प्रकृति में खाद्य

---► ऊर्जा के बहाव की दिशा—अचक्राकार

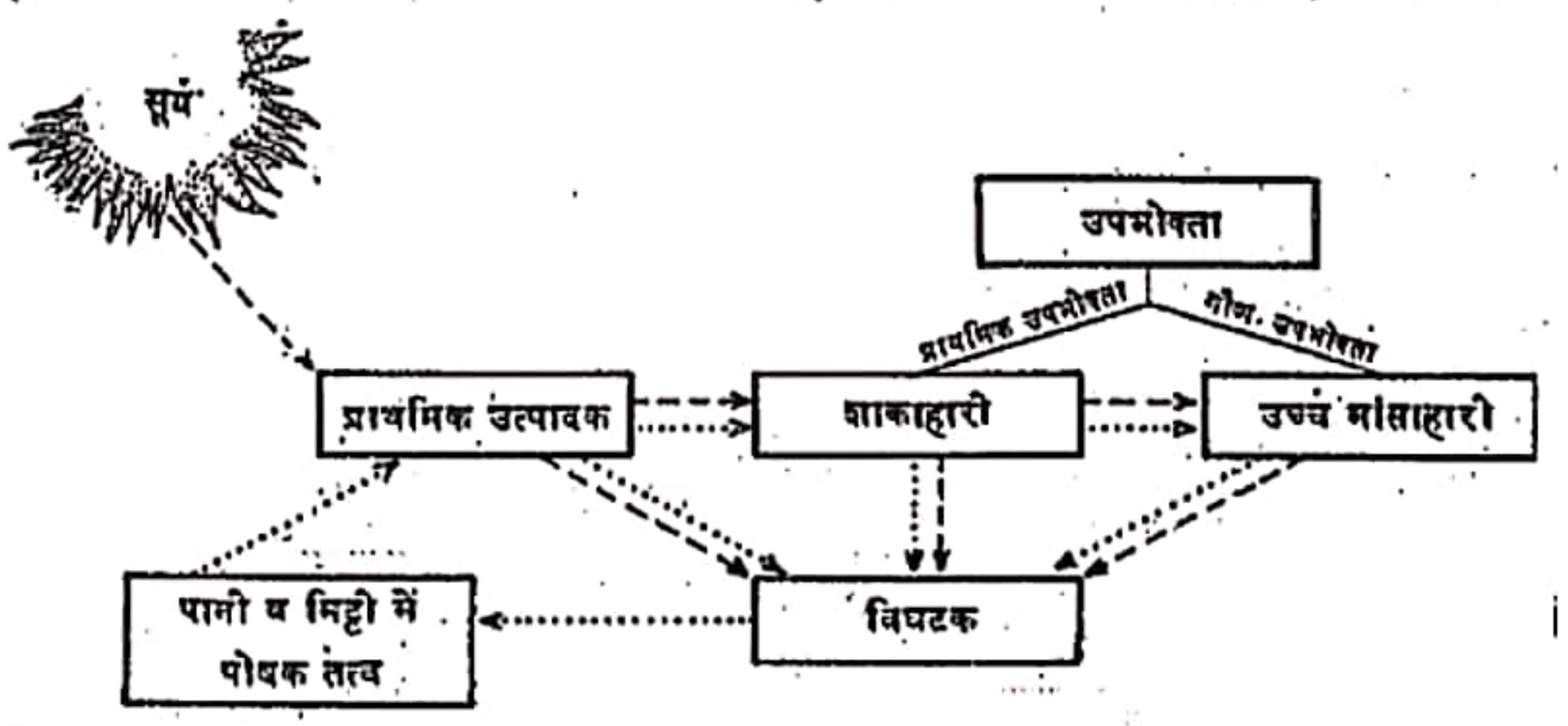

......► पोषक तत्वों के बहाव की दिशा—चक्राकार

5.2 पारितंत्र में ऊर्जा और पोषकों का प्रवाह चक्र

आरेख में प्रदर्शित किया गया ऊर्जा का अचक्रीय प्रवाह किस प्रकार सूर्य से प्राथमिक उत्पादकों में तथा उनसे विभिन्न उपभोक्ता जीवों में होता है। इसका कुछ भाग अपशिष्टों के रूप में बच जाता है, जिसे बाद में विघटक जीवाणु अजैव पोषकों में बदल देते हैं। ध्यान दीजिए कि पोषकों के प्रवाह की प्रकृति चक्रीय है।

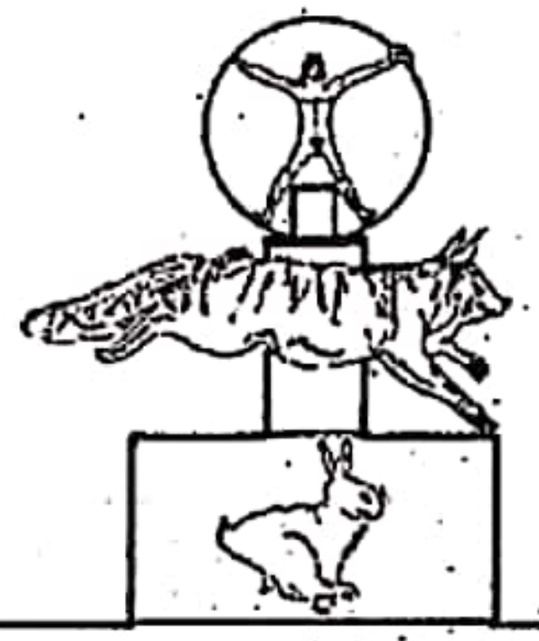

5.3 खाद्य पिरामिड (संख्यिक पिरामिड)

पिरामिड का आधार विस्तृत है जो प्राथमिक उत्पादकों को प्रदर्शित करता है। ध्यान दीजिए कि उपभोक्ता मनुष्य पिरामिड के शीर्ष पर हैं।

जब आधार पर जैव पदार्थों के रूप में प्राथमिक उत्पादन 10,000 किलो कैलोरी होता है, तब मनुष्य को केवल एक किलो कैलोरी मिलती है।

जनसंख्या में अधिक वृद्धि के कारण खाद्य आपूर्ति अनिश्चित हो जाती है क्योंकि खाद्य पदार्थों का उत्पादन क्षेत्र वही रहता है।

शृंखलाएँ जटिल बन जाती हैं अर्थात् प्रकृति में खाद्य शृंखलाओं का एक जाल सा बन जाता है। खाद्य शृंखलाओं के ऐसे जटिल जालों को खाद्य-जाल कहते हैं। एक पारितंत्र में विभिन्न प्रकार के जंतु रहते हैं और उनमें भोजन के लिए कड़ी प्रतियोगिता होती है। इस प्रकार खाद्य-जाल बहुत जटिल होते हैं।

जीवों के प्रत्येक समूह का एक पोषी स्तर होता है। पारितंत्र में सभी हरे पौधे और अन्य उत्पादक प्रथम पोषी स्तर में होते हैं। शाकाहारी जो पौधों का आहार करते हैं, द्वितीय पोषी स्तर में होते हैं। मांसाहारी जो शाकाहारी जीवों को खाते हैं, तृतीय पोषी स्तर में होते हैं। मांसाहारी जो अन्य मांसाहारी जीवों को खाते हैं, चौथे पोषी स्तर में होते हैं। उपलब्ध ऊर्जा के संदर्भ में विभिन्न पोषी स्तर समान नहीं हैं, क्योंकि निम्नस्तर से उच्चस्तर पर ऊर्जा का एक अंश ही स्थानान्तरित होता है। पोषी स्तरों को एक पिरामिड के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है, जिसे **पारिस्थितिक पिरामिड** कहा जाता है।

एक पोषी स्तर से दूसरे पोषी स्तर में स्थानान्तरित ऊर्जा के प्रतिशत को **पारिस्थितिक क्षमता** कहा जाता है। एक पोषी स्तर से दूसरे पोषी स्तर में ऊर्जा स्थानान्तरण की क्षमता भिन्न होती है। जीवों की जाति और पर्यावरणीय दशाओं के अनुसार यह क्षमता 5% से लेकर 20% के बीच हो सकती है। स्थलीय-पारितंत्र में शाकाहारी जीवों द्वारा पादप पदार्थ का केवल 10% भाग ही खाया जाता है। औसतन केवल 10% ऊर्जा का स्थानान्तरण एक पोषी स्तर से दूसरे पोषी स्तर में

होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि जीवों को 10 किलोग्राम मांस पैदा करने के लिए 100 किलो अनाज की आवश्यकता होती है। इतनी कम क्षमता का कारण यह है कि उच्च स्तर के उपभोक्ताओं को एक स्तर पर विद्यमान सभी जीव भोजन के लिए आसानी से उपलब्ध नहीं होते। परभक्षी, सभी उपलब्ध शिकार को नहीं पकड़ पाता। जो जीव, परभक्षियों से बच जाते हैं, वे अन्ततोगत्वा मर जाते हैं तथा इन मरे हुए जीवों को विघटक खाते हैं। क्योंकि पारिस्थितिक क्षमता कम है, अतः पारितंत्र की, उच्चपोषी स्तर के जीवों का निर्वाह करने की क्षमता भी सीमित है।

ऊर्जा और खनिजों का प्रवाह

पारितंत्र में ऊर्जा और पोषकों के प्रवाह के मॉडल की विवेचना उपयोगी होगी। उत्पादकों को अपना भोजन बनाने के लिए सूर्य से विकिरण ऊर्जा मिलती है। ऊर्जा, उत्पादकों से शाकाहारियों में और शाकाहारियों से मांसाहारियों में स्थानान्तरित हो जाती है। उत्पादकों, शाकाहारियों तथा मांसाहारियों के निर्जीव या विघटित अवशेष, विघटकों को ऊर्जा प्रदान करते हैं। जीव, भोजन से प्राप्त ऊर्जा का कुछ भाग तो पचा लेते हैं तथा शेष भाग श्वसन द्वारा ऊष्मा के रूप में निकल जाता है। सूर्य से प्राप्त ऊर्जा का एक ही दिशा में प्रवाह होता रहता है, जब तक कि यह ऊष्मा के रूप में विलीन नहीं हो जाती।

मृदा से खनिज पोषकों का पौधों में प्रवाह उनकी वृद्धि में सहायक होता है। उपभोक्ता अपने विकास के लिए इन पोषकों का उपभोग करते हैं। जब पौधे और जंतु मर जाते हैं, तब जीवाणु और कवक जैसे विघटक उन्हें खा लेते हैं तथा उन्हें विघटित करके अजैव पोषकों में बदल देते हैं। ये अजैव पोषक मृदा में मिल जाते हैं तथा पौधे पुनः इनका उपभोग करते हैं। पारितंत्र में खनिज पोषकों का चक्रीय प्रवाह है।

पारितंत्र को सूर्य से निरन्तर ऊर्जा मिलती रहती है और इसमें पोषकों का चक्रीय प्रवाह चलता रहता है। परिणामस्वरूप पारितंत्र में स्थिरता बनी रहती है। विघटक खनिज पोषकों की आपूर्ति निरंतर बनाए रखते हैं। यह उनका बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है।

पृथ्वी के प्रमुख पारितंत्र

पृथ्वी के पारितंत्रों को दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—जलीय पारितंत्र तथा स्थलीय पारितंत्र। जलीय पारितंत्र का उपविभाजन, मीठे पानी, ज्वार नदमुख तथा समुद्री पारितंत्रों के रूप में किया जा सकता है। स्थलीय पारितंत्र का वर्गीकरण जलवायु की दशाओं के आधार पर किया जाता है।

जलीय पारितंत्र

जल में घुली हुई आक्सीजन का संकेंद्रण तथा जल में सूर्य के प्रकाश का प्रवेश और पोषकों की उपलब्धि, जलीय जीवों को सीमित करने वाले कारक हैं। प्रकाश संश्लेषण उसी क्षेत्र तक सीमित है, जहाँ तक सूर्य का प्रकाश प्रवेश कर पाता है। सूर्य का प्रकाश लगभग 30 मीटर की गहराई तक प्रवेश करता है।

मीठे पानी की गहरी झीलों में दो भिन्न क्षेत्र हैं झीलों की सतही परत कोष्ण होती है तथा इसमें सूर्य का प्रकाश प्रवेश कर जाता है, नीचे की परत ठंडी और अंधकारपूर्ण होती है। झील के पानी की ऊपर की परत आक्सीजन से भरपूर होती है, जबकि नीचे की परत में पोषकों की बहुतायत होती

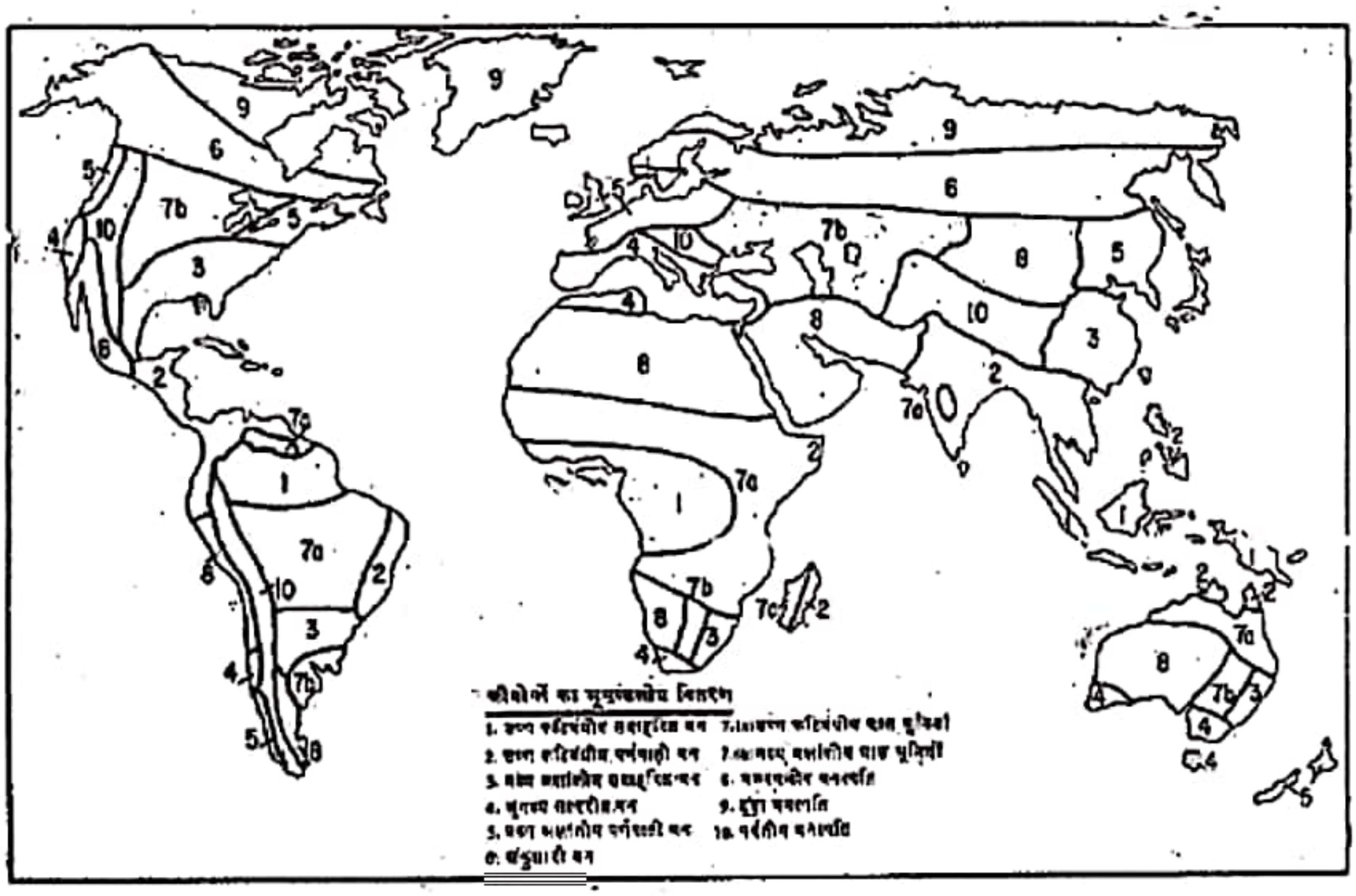

5.4 संसार के प्रमुख जीवोम

जीवोम, पृथ्वी के किसी भाग पर पाया जाने वाला विशाल पारितंत्र है। टुण्ड्रा, घासभूमियाँ, उष्ण कटिबंधीय वन तथा मरुस्थल आदि जीयोम के उदाहरण हैं। प्रत्येक जीवोम में विशेष प्रकार की वनस्पति तथा जन्तु पाए जाते हैं। जीवोम का निर्धारण मृदा तथा जलवायु के प्रकार से होता है।

है। ऋतुओं के अनुसार दोनों परतों के जल का मिश्रण होता रहता है, जिसके कारण जीव जिंदा रहते हैं तथा उनका विकास होता है। जब झीलें धीरे-धीरे अवसादों से भर जाती हैं, तो वे दलदल और अनूप में बदल जाती हैं। इनमें पोषकों की मात्रा काफी होती है। अतः इनकी उत्पादकता भी अधिक है। इनमें बहुत से पौधे, जल पक्षी तथा मछलियाँ पाई जाती हैं।

नदियों में विभिन्न प्रकार के जीव मिलते हैं। नदी मार्ग के ऊपरी भागों में नदी का बहाव बहुत तेज होता है। अतः नदी के इस भाग में पाए जाने वाले जलीय पौधों और जंतुओं में शैलों से चिपकने वाला गुण होता है, जो उन्हें बहने से बचाता है। नदी के निचले भागों में जलोढ अवसादों की परत होती है। इस परत में बिल बनाकर रहनेवाले (बिलकारी) प्राणियों का आवास होता है। नदियों में रहनेवाले अधिकतर जीव, सड़े गले जैव पदार्थों के मलवे पर निर्भर करते हैं। नदी में ये पदार्थ आसपास के स्थल खंडों या झीलों से आ जाते हैं।

ज्वारनदमुख

जलीय पारितंत्रों में सबसे अधिक उत्पादकता ज्वारनदमुख में होती है। इस क्षेत्र में खारे पानी और मीठे पानी का मिश्रण होता रहता है।

यह क्षेत्र उथला होता है, इसलिए सूर्य का प्रकाश अधस्तल तक पहुँच जाता है। ज्वार-भाटे के समय पानी के उतार चढ़ाव में पोषकों का भी मिश्रण हो जाता है। यहाँ पौधे तेजी से बढ़ते हैं, जिनसे जीवों को भोजन मिलता है। इस क्षेत्र में केकड़े, सीपियाँ, झींगा, मछलियाँ और पक्षी रहते हैं। कुछ विशेष प्रकार की मछलियों के लिए ये ज्वारनदमुख सुरक्षित प्रजनन क्षेत्र हैं, क्योंकि यहाँ के जल की कम लवणता महासागरीय परभक्षियों के लिए रुकावट का काम करती है।

समुद्री पारितंत्र

यह पृथ्वी पर सबसे बड़ा है। स्थल के विपरीत, महासागरीय आवास में आश्चर्यजनक समानता है। इसमें तीन भिन्न आवासीय क्षेत्र हैं –

अंतर्ज्वारीय क्षेत्र में ज्वार-भाटे के कारण जल निरन्तर गतिशील रहता है। ज्वार और भाटे के बीच की अवधि में समुद्र के रेतीले तट पर बिलकारी जीव जैसे सीपी, केकड़े, घोंघे आदि पाए जाते हैं। चट्टानी तट पर शैवाल, स्पंजवर और सीपियाँ चट्टानों से चिपकी रहती हैं।

नेरिटांचल का विस्तार तट रेखा से लेकर महाद्वीपीय निमग्न तट की सीमा तक होता है। महाद्वीपीय निमग्नतट के उथले जल में सूर्य के प्रकाश की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध होती है। स्थल से बहकर आए पोषक भी प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। ज्वारनदमुख सहित इस क्षेत्र में समुद्र की 50% उत्पादकता है। इसलिए संसार के सबसे समृद्ध मत्स्य क्षेत्र-महाद्वीपीय निमग्नतटों पर स्थित हैं।

महाद्वीपीय निमग्नतट की सीमा के बाद खुला, विस्तृत महासागर का भाग **महासागरीय** कहा जाता है। यहाँ जल की ऊपरी सतह में सूर्य का प्रकाश तो होता है, लेकिन प्रकाश संश्लेषण के लिए आवश्यक पर्याप्त पोषक नहीं होते। उत्पादकता के काफी कम होने के कारण ये क्षेत्र, **जैव मरुस्थल** हैं। यद्यपि विभिन्न प्रकार के जीव, पादप-प्लवक से लेकर विशालकाय शार्क और ह्वेल तक यहाँ मिलते हैं, लेकिन इनकी संख्या अपेक्षाकृत कम है और वे बड़े क्षेत्र में बिखरे हुए हैं। यहाँ भोजन के स्रोत दूर-दूर तक पाए जाते हैं, अतः बड़ी मछलियों में तैरने की विलक्षण क्षमता विकसित हो गई है, जिससे ये महासागरों में भोजन की तलाश में दूर-दूर तक जाने में समर्थ हैं।

स्थलीय पारितंत्र

हम स्थल पर रहते हैं, अतः स्थलीय पारितंत्रों से हमारा गहरा संबंध है, क्योंकि हमारी भोजन तथा अन्य वस्तुओं की आवश्कताएँ इन्हीं से पूरी होती हैं। भूपृष्ठ पर, जलवायु की दशाओं के अनुरूप विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों के आवरण हैं। एक जैसी जलवायु की दशाओं वाले क्षेत्रों में पौधों के समुदायों के पृथक पृथक समूह मिलते हैं। इन्हें जीवोम कहते हैं।

आर्द्रता

आर्द्रता और तापमान स्थलीय पारितंत्र को सीमित करनेवाले दो महत्वपूर्ण कारक हैं। पौधों की वृद्धि के लिए जल अतिआवश्यक है, क्योंकि पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्व घुली हुई अवस्था में जड़ों से पत्तियों तक पहुँचते हैं। इस प्रकार जल पोषकों के प्रवाह का माध्यम है। हम पढ़ चुके हैं कि प्रकाश संश्लेषण के साथ-साथ पौधों के अंकुरण, वृद्धि तथा पुनरुत्पादन में भी जल महत्वपूर्ण कार्य करता है।

विशालकाय वृक्ष, भारी वर्षा वाले प्रदेशों में पनपते हैं। जल की आपूर्ति घटने पर पौधों का आकार भी घट जाता है और उनकी सघनता भी कम हो जाती है। कम वर्षा वाले प्रदेशों में बौने

वृक्ष, घास और झाडियाँ ही पाई जाती हैं। ऐसा क्षेत्र जहाँ एक ऋतु शुष्क होती है, वहाँ पाए जाने वाले शुष्क पौधे शुष्क ऋतु में अपनी पत्तियाँ गिरा देते हैं। इस प्रकार पौधे वाष्पोत्सर्जन द्वारा होने वाले जल की हानि को कम कर लेते हैं। बहुत गहराई से पानी खींचने के लिए पौधों की जड़ें भी गहराई तक विकसित होती हैं। पौधों की छाल उनके तनों और शाखाओं को सूखने से बचाती है। पेड़ों की पत्तियों में काँटे विकसित हो जाते हैं और सतह मोम जैसी चिकनी तथा आकृति सुइयों जैसी हो जाती हैं। इन विशिष्ट गुणों के द्वारा शुष्क प्रदेशों में पेड़ वाष्पोत्सर्जन द्वारा होने वाली जल की हानि को कम कर लेते हैं तथा पेड़ों के काँटे चरनेवाले जंतुओं से बचाव करते हैं। जिन प्रदेशों में शीत ऋतु अत्यंत ठंडी होती है, वहाँ पेड़ अपनी पत्तियाँ गिरा देते हैं तथा प्रसुप्त हो जाते हैं।

तापमान

प्रत्येक पौधे को अपने अंकुरण, वृद्धि तथा पुनरुत्पादन के लिए विशेष तापमान की आवश्यकता होती है। साथ ही विशेष ताप परिसर भी चाहिए, जिससे ज़्यादा या कम होने पर पौधा सूख जाता है। उष्ण कटिबंध में विभिन्न प्रकार के अनेक पौधों के पनपने के लिए तापमान सदैव अनुकूल रहता है।

मध्य अक्षांशों में, जहाँ ग्रीष्म ऋतु और शीत ऋतु के बीच तापमान की चरम सीमाएँ होती हैं, पौधों की कुछ जातियाँ ही पाई जाती हैं। 6° सेल्सियस से कम तापमान होने पर पौधों की वृद्धि रुक जाती है। ध्रुवीय प्रदेशों तथा ऊँचे पर्वतीय प्रदेशों में वर्धन काल छोटा होता है। अतः पौधों का जीवन काल भी छोटा ही होता है। उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में पौधों की वृद्धि पूरे वर्ष होती रहती है, क्योंकि वहाँ तापमान सदैव 6° सैल्सियस से ऊँचा रहता है। वनस्पति के प्रमुख प्रकारों जैसे वन, घास भूमि, झाड़ियाँ आदि का भूमंडलीय प्रारूप आर्द्रता की उपलब्धि द्वारा नियंत्रित होता है। लेकिन तापमान, वनस्पति के प्रमुख प्रकारों में जातियों के भेद उत्पन्न कर देता है। इस प्रकार वन विषुवत् वृत्त से लेकर 60° उत्तरी तथा दक्षिणी अक्षांशों तक पाए जाते हैं। लेकिन पेड़ों की जातियाँ तापांतर के अनुसार भिन्न-भिन्न होती हैं।

अन्य कारक

अन्य कारकों में मृदा सबसे महत्वपूर्ण है। मृदा पौधों की वृद्धि का माध्यम है। मृदा की निर्माण प्रक्रिया बहुत धीमी है तथा इस प्रक्रिया में भौतिक, रासायनिक और जैव परिवर्तन होते हैं। मृदा के निर्माण में जलवायु सबसे महत्वपूर्ण कारक हैं। मृदा के प्रमुख प्रकारों के वितरण का संबंध प्रमुख जलवायु प्रदेशों से है। वनस्पति के प्रकारों को प्रभावित करनेवाले अन्य कारक उच्चावच तथा अपवाह हैं। पर्वतीय प्रदेशों में ऊँचाई बढ़ने के साथ तापमान घटता है। अतः ऊँचाई के अनुसार वनस्पति का प्रकार भी बदलता है।

जीवोमों का भूमंडलीय वितरण

वन, घास भूमियाँ, काँटेदार झाड़ियाँ और टुंड्रा पौधों के प्रमुख समावास हैं। प्रचुर जल आपूर्ति वाले आर्द्र प्रदेशों में वन पाए जाते हैं। साधारण वर्षा वाले प्रदेशों में घास भूमियाँ हैं। काँटेदार झाड़ियाँ, शुष्क प्रदेशों की विशेषताएँ हैं तथा टुंड्रा वनस्पति अत्यंत ठंडे ध्रुवीय प्रदेशों में पाई जाती है।

वनों के प्रकार

वनों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है – सदाहरित वन तथा पर्णपाती वन। सदाहरित वनों में वर्ष की किसी भी ऋतु में पेड़ों से

संपूर्ण पत्तियाँ एक साथ कभी नहीं झड़तीं। पर्णपाती वन वे हैं जिनमें किसी विशेष ऋतु में पेड़ों की पत्तियाँ झड़ जाती हैं। इस प्रक्रिया से पेड़, वाष्पोत्सर्जन द्वारा होने वाली आर्द्रता की हानि को कम कर लेते हैं।

सदाहरित वन

उष्ण कटिबंधीय सदाहरित वन

ये वन विषुवतीय प्रदेशों तथा उष्ण कटिबंध के तटीय प्रदेशों में पाए जाते हैं। इन प्रदेशों में भारी वर्षा होती है। गर्म और आर्द्र दशाओं में विभिन्न प्रकार की वनस्पति में तेजी से वृद्धि होती है। पेड़ों की पत्तियाँ चौड़ी होती हैं, जिनसे अतिरिक्त आर्द्रता वाष्पोत्सर्जन द्वारा बाहर निकल जाती है। यहाँ शुष्क ऋतु नहीं होती, अतः पौधे पूरे वर्ष बढ़ते रहते हैं। पूरे वर्ष पेड़ों की पुरानी पत्तियाँ झड़ती रहती हैं तथा उनके स्थान पर नई कोपलें फूटती रहती हैं। कठोर लकड़ी वाले पेड़ों जैसे महोगनी, आबनूस और रोजवुड का व्यापारिक महत्व है। तटीय अनूपों तथा डेल्टा प्रदेशों में मैंग्रोव वन पाए जाते हैं।

मध्य अक्षांशीय सदाहरित वन

ये वन उपोष्ण कटिबंध में महाद्वीपों के पूर्वी सीमांतों में पाए जाते हैं। इन वनों में चौड़ी पत्ती वाले तथा कठोर लकड़ी वाले पेड़ होते हैं। दक्षिण चीन, दक्षिण-पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिण ब्राजील, दक्षिण अफ्रीका का पूर्वी तट तथा दक्षिण-पूर्वी आस्ट्रेलिया इन वनों के प्रमुख क्षेत्र हैं। सदा हरे रहनेवाले ओक, यूकिलप्टस और वाटल, कुछ ऐसे पेड़ हैं, जिनका आर्थिक मूल्य है।

भूमध्य सागरीय वन

ये वन मध्य अक्षांशों में महाद्वीपों के पश्चिमी सीमांतों में पाए जाते हैं। इन प्रदेशों में शीत ऋतु में साधारण वर्षा होती है तथा ग्रीष्म ऋतु शुष्क रहती है। इस क्षेत्र में बिना पत्तियाँ गिराए, पेड़ों ने शुष्क ग्रीष्म ऋतु का मुकाबला करने के लिए स्वयं को अनुकूलित कर लिया है। पौधों की पत्तियाँ या तो कँटीली या मोम जैसी चिकनी अथवा छोटी होती हैं, जिनसे वाष्पोत्सर्जन कम होता है। पेड़ों की जड़ें लंबी होती हैं ताकि वे अधिक गहराई से भी जल खींच सकें। मोटी छाल भी आर्द्रता की हानि को रोकती हैं। पेड़ों के बीच के खाली स्थानों पर झाड़ियाँ उगी होती हैं। कार्क, ओक, जैतून और चेस्टनट सामान्य पेड़ हैं।

शंकुधारी वन

ये सदाहरित वन हैं। ये वन उत्तर ध्रुवीय प्रदेश के चारों ओर यूरोप, एशिया और उत्तर अमेरिका के महाद्वीपों में पाए जाते हैं। ये ऊँचे पर्वतों पर भी मिलते हैं। यहाँ वर्धन काल, छोटी ग्रीष्म ऋतु तक ही सीमित है। पेड़ ऊँचे, शंक्वाकार तथा सदाहरित होते हैं। इनकी पत्तियाँ मोटी तथा सुइयों के आकार की होती हैं। इनसे वाष्पोत्सर्जन कम होता है तथा शीत ऋतु की भयंकर ठंड से बचाव भी होता है। यहाँ मुलायम लकड़ी वाले पेड़ जैसे चीड़, देवदार, फर, हेम्लाक तथा स्प्रूस, पाए जाते हैं।

पर्णपाती वन

उष्ण कटिबंधीय पर्णपाती वन

उपोष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में, जहाँ सुस्पष्ट सूखी ऋतु होती है, ये वन पाए जाते हैं। ये एशिया के मानसूनी प्रदेशों, मध्य अमेरिका के भागों, ब्राजील और उत्तरी आस्ट्रेलिया में फैले हैं। यहाँ ग्रीष्म ऋतु में पेड़ों की पत्तियाँ झड़ जाती हैं। इन

वनों में पेड़ों की जातियाँ कम होती हैं। उष्ण कटिबंधीय सदाहरित वनों की अपेक्षा ये कम घने होते हैं। कठोर लकडी वाले सागौन के मूल्यवान पेड़ इन वनों की विशेषता है।

मध्य-अक्षांशीय पर्णपाती वन

ये वन शीतल जलवायु के तटीय प्रदेशों में पाए जाते हैं। इनके मुख्य प्रदेश हैं—पश्चिमी यूरोप, उत्तर-पूर्वी चीन, जापान, उत्तर पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिण चिली तथा न्यूजीलैंड। यहां शीत ऋतु में पेड़ों की पत्तियाँ झड़ जाती हैं, क्योंकि तब तापमान 6° सैल्सियस से कम होता है। वसन्त में नई-नई कोपलें फूटती हैं तथा ग्रीष्म ऋतु में पौधे तेजी से बढ़ते हैं।

घास भूमियाँ

घास छोटी जड़ वाले पौधे हैं। घास विभिन्न जलवायु दशाओं में पनपती है। वनों में घास पेड़ों के नीचे तथा मरुस्थलीय और टुंड्रा प्रदेशों में गुच्छों के रूप में उगती है। साधारण वर्षा वाले प्रदेशों के वनों तथा मरुस्थलों के बीच विस्तृत घास भूमियाँ हैं। घास भूमियों के दो वर्ग हैं—उष्ण कटिबंधीय घास भूमियाँ तथा मध्य अक्षांशीय घास भूमियाँ।

उष्ण कटिबंधीय घास भूमियाँ

ये घास भूमियाँ उष्ण कटिबंध में महाद्वीपों के भीतरी भागों में पाई जाती है। इनके प्रमुख प्रदेश, विषुवतीय प्रदेश के दोनों ओर अफ्रीका और ब्राजील के पठार के भागों, भारत के दक्षिण के पठार तथा उत्तरी आस्ट्रेलिया में हैं। यहाँ घासें ओर लगभग दो मीटर ऊँची घास दिखाई पड़ती हैं। ये घास भूमियाँ अफ्रीका में सवाना तथा ब्राज़ील में कैम्पोस के नाम से जानी जाती हैं।

मध्य अक्षांशीय घास भूमियाँ

ये घास भूमियाँ मध्य अक्षांशों में महाद्वीपों के साधारण वर्षा वाले भीतरी भागों में फैली हैं। रूस, सयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा के भीतरी भागों, दक्षिण अफ्रीकी पठार, दक्षिण अमेरिका में अर्जेंटाइना तथा उरुग्वे के तटीय मैदानों एवं आस्ट्रेलिया के मरे-डार्लिंग बेसिन में इन घास भूमियों का विस्तार है। यहाँ पर घास छोटी होती है और पेड़ नहीं होते हैं। इन घास भूमियों को यूरेशिया में स्टेप्स, उत्तरी अमेरिका में प्रेरीज तथा दक्षिण अमेरिका में पम्पास कहते हैं।

मरुस्थलीय वनस्पति

कम वर्षा के कारण मरुस्थलों में सब जगह वनस्पति का आवरण नहीं होता है। छोटी छोटी झाड़ियाँ, झुरमुटों में उगती हैं। मोटे तने कँटीली या मोम जैसी चिकनी पत्तियाँ वाष्पोत्सर्जन को कम कर देती हैं। नागफनी, कँटीली झाड़ियाँ तथा मोटी घास यहाँ सामान्य रूप से पाई जाती हैं। उष्ण कटिबंधीय मरुस्थलों के सीमांतों में बबूल के पेड़ मिलते हैं।

टुण्ड्रा

उत्तर ध्रुव के चारों ओर यूरेशिया और उत्तर अमेरिका में टुण्ड्रा प्रकार की वनस्पति मिलती है। ग्रीष्म ऋतु में यहाँ तीन महीने से भी कम अवधि का वर्धनकाल होता है। काई और लाइकेन तथा जंगली फूलों वाली झाड़ियाँ, यहाँ की विशेषता है। लंबी शीत ऋतु में टुण्ड्रा प्रदेश हिम से ढक जाता है। इस समय यहाँ सूर्य दिन में कुछ घंटों के लिए ही दिखाई पड़ता है

जंतु

किसी प्रदेश के जंतुओं तथा वनस्पति में

गहरे संबंध होते हैं। वनस्पति से जंतुओं को न केवल भोजन मिलता है, अपितु सुरक्षित प्राकृतिक आवास भी मिलता है। यद्यपि जंतु एक स्थान से दूसरे स्थान में घूमते रहते हैं, लेकिन जंतुओं की प्रत्येक जाति जलवायु की दशाओं में सीमित परिवर्तनों को ही सहन कर सकती है। उनकी शारीरिक रचना, रंग-रूप, भोजन की आदतें आदि सब कुछ उनके पर्यावरण के अनुकूल होता हैं। पर्यावरणीय दशाओं में परिवर्तन आने से, जंतु उनके अनुसार स्वयं को ढाल लेते हैं या वहाँ से प्रवास कर जाते हैं या वहाँ नई जातियों का विकास हो जाता है।

उष्ण कटिबंधीय वनों में जंतुओं ने पेड़ों पर रहना सीख लिया है। कपि मानव तथा बंदरों के हाथ-पैर और अँगुलियाँ लंबी होती हैं तथा अँगूठों की विशेष रचना होती है। इन अंगों की मदद से ये आसानी से पेड़ों पर चढ़ जाते हैं तथा झूलकर एक डाली से दूसरी डाली पर चले जाते हैं। छोटे-छोटे हिरन पेड़ों के बीच बिना कठिनाई और बिना रुकावट के घूम सकते हैं और हाथियों में झाड़ियों और पेड़ों के बीच से रास्ता बनाने की क्षमता होती है। अतः ये ज़मीन पर रहते हैं। विभिन्न प्रकार के पक्षी पेड़ों पर रहते हैं। मध्य अक्षांशीय वनों में भी जंतु जीवन लगभग ऐसा ही है; लेकिन प्रजातियों में विभिन्नता कम है और यहाँ के जंतुओं के जीवन के क्रियाकलाप ऋतु निष्ठ विषमताओं से बहुत प्रभावित होते हैं।

घास भूमियाँ अधिक खुली होती हैं। अतः यहाँ जंतु जमीन पर तेजी से दौड़ सकते हैं। घास भूमियों में जेब्रा, हिरण और बारहसिंगे रहते हैं। अपने लंबे पैरों तथा मजबूत खुरों की मदद से ये खूब तेज दौड़ सकते हैं। बाघ और सिंह जैसे मांसाहारी तथा लोमड़ी और खरगोश जैसे बिलकारी जंतु यहाँ सामान्य रूप से पाए जाते हैं।

ठंडे बर्फीले टुण्ड्रा प्रदेश के जन्तुओं की खाल मोटी या समूर वाली होती है, जो उन्हें ठंड से बचाती है। शीत ऋतु में जन्तु निष्क्रिय हो जाते हैं या लंबी नींद में सो जाते हैं। रैंडियर, मस्क आक्स, भालू, भेड़िए तथा लोमड़ी यहाँ के प्रमुख जंतु हैं। शीत ऋतु में कुछ जंतु और पक्षी भोजन की खोज में अपेक्षाकृत गर्म प्रदेशों में चले जाते हैं।

जैव मंडल में पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने के लिए, पारितंत्र में पाए जाने वाले जंतुओं और पौधों की विभिन्न जातियों के अंतर्संबंधों को समझना बहुत आवश्यक है। कृषि, वानिकी, व्यापारिक पशुचारण, मछली पकड़ना तथा आखेट जैसे मानवीय क्रियाकलापों की गलत योजनाओं के कारण यह संतुलन गड़बड़ा गया है। परिणामस्वरूप जंतुओं की अनेक जातियाँ विनाश के कगार पर खड़ी हैं। खनन के लिए वनों की कटाई, सिंचाई के लिए नदियों पर बांध के निर्माण तथा शहरी विकास के लिए दलदलों के सुखाने जैसी मानव गतिविधियाँ, पारितंत्र को लंबे समय तक प्रभावित करती हैं। इसी प्रकार, वायुमंडल तथा जलमंडल के परिसंचरण में आए परिवर्तनों से पारितंत्र की गतिविधियों पर प्रभाव पड़ता है, जिससे जैव मंडल के जीवों में ऊर्जा तथा पोषकों के प्रवाह में परिवर्तन हो जाता है।

स्वाध्याय

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए—
   (1) जैव मंडल के वितरण का वर्णन कीजिए।
   (2) पारितंत्र से क्या तात्पर्य है?
   (3) प्रकाश संश्लेषण के महत्व की विवेचना कीजिए।
   (4) पारिस्थितिक क्षमता का वर्णन कीजिए।
   (5) ज्वारनदमुखों में पारितंत्र का विवरण लिखिए।
2. अन्तर स्पष्ट कीजिए–
   (1) उत्पादक तथा उपभोक्ता।
   (2) खाद्य शृंखला तथा खाद्य जाल।
   (3) सदाहरित तथा पर्णपाती वन।
3. निम्नलिखित में से प्रत्येक के लिए एक-एक पारिभाषिक शब्द दीजिए–
   (1) जीव, जो अपना भोजन स्वयं बनाते हैं।
   (2) जीव, जो अपना भोजन पौधों और जंतुओं से प्राप्त करते हैं।
   (3) जीव, जो पौधों और जंतुओं के सड़े, गले अंश को खाते हैं।
4. पारितंत्र के घटकों का वर्णन कीजिए।
5. स्थलीय पारितंत्र को प्रभावित करनेवाले कारकों का विवरण लिखिए।
6. किसी पारितंत्र में ऊर्जा और खनिज पदार्थ के प्रवाह की विवेचना कीजिए।

स्वयं करें और खोजें

1. विभिन्न प्रकार के पारितंत्रों के चित्र एकत्र करके उनके नाम लिखिए।
2. अपने पास-पड़ौस में बहुतायत से पाए जाने वाले पेड़ों के नाम लिखिए। उनके उपयोगों की जानकारी भी प्राप्त कीजिए।
3. वन्य जीवों के चित्र इकट्ठे करिए और उनके नाम लिखिए।
4. स्थलीय पारितंत्रों के प्रदर्शन के लिए संसार का एक मानचित्र तैयार कीजिए।

पठनीय पुस्तकें

1. जोसेफ एम० मोरान तथां अन्य : *इंट्रोडक्शन ट्* इनवायरनमेंटल साइंस*, डब्ल्यू०एच० फ्रीमैन एण्ड कंपनी, सेन फ्रांसिस्को।
2. जान पी० कोलार्स एण्ड जान पी० निश्चुएंन : *फिजीकल ज्याग्रफी.* — इनवायरनमेंट एण्ड मैन, मैग्राहिल, न्यूयार्क।
3. डी०एच० डेविस : *दि अर्थ* एण्ड मैन, दि मैकमिलन एण्ड कंपनी, न्यूयार्क।
4. एच० राबिंसन : *बायो ज्याग्रफी,* मैकडोनाल्ड एण्ड इवांस लिमिटेड, लंदन।

खंड-दो

मानचित्र—पर्यावरण बोध में सहायक

हम पृथ्वी के संपूर्ण पर्यावरण के साथ-साथ उसके विविध अंगों को भी समझना चाहते हैं। हमारी पृथ्वी इतनी बड़ी है कि उसे एक साथ देख पाना असंभव है। उपग्रहों द्वारा लिए गए पृथ्वी के छायाचित्र भी उसके आधे भाग को ही दिखा पाते हैं। पृथ्वी की गोल आकृति होने के कारण इसका आधा भाग दृष्टि से ओझल रहता है। संपूर्ण पृथ्वी को प्रदर्शित करने का सबसे उपयुक्त माध्यम 'ग्लोब' है। ग्लोब, महाद्वीपों और महासागरों के आकारों तथा आकृतियों को सही-सही निरूपित करता है।

मानचित्र, उपयुक्त पैमाने के अनुसार, पृथ्वी को प्रदर्शित करते हैं। संपूर्ण पृथ्वी या किसी महाद्वीप या किसी देश को प्रदर्शित करने के लिए मानचित्र बनाए जा सकते हैं। मानचित्र, उपयुक्त चिन्हों और प्रतीकों के द्वारा पर्यावरण के विभिन्न तत्वों के वितरण को स्पष्ट रूप से समझने में हमारी सहायता करते हैं। मानचित्र विभिन्न प्रकार के होते हैं। स्थलाकृतिक मानचित्र विविध लक्षणों जैसे उच्चावच, अपवाह, भूमि उपयोग, मानव बस्तियों और संचार के साधनों को प्रदर्शित करते हैं। कुछ मानचित्र जैसे मौसम-मानचित्र और सड़क-मानचित्र किसी एक लक्षण का ही निरूपण करते हैं। किसी क्षेत्र के विभिन्न तत्वों के अंतर्संबंधों को समझने के लिए मानचित्र बहुत उपयोगी होते हैं।

विविध प्रकार के आरेख भी पर्यावरण को समझने में सहायक होते हैं। इन आरेखों को, क्षेत्र कार्य के दौरान एकत्रित आँकड़ों या अन्य स्रोतों से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर बनाया जा सकता है। ये आरेख किसी समयावधि में हुए परिवर्तनों को प्रकट करने में समर्थ हैं। इनसे विभिन्न देशों या प्रदेशों में विद्यमान परिस्थितियों की तुलना करने में मदद मिलती है। ये मानचित्र और आरेख पर्यावरण तथा मानवीय क्रिया-कलापों के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव को समझने के साधन हैं।

6

मानचित्र – पर्यावरण बोध के साधन

हमारी पृथ्वी इतनी बड़ी है कि उसे एक साथ देख पाना बहुत कठिन है। यदि कोई पृथ्वी को अंतरिक्ष से भी देखे, तब भी वह उसके सभी लक्षणों को साफ-साफ नहीं देख सकता। ग्लोब पृथ्वी का प्रतिरूप है, उससे पृथ्वी के स्वरूप का ज्ञान होता है। महाद्वीपों और महासागरों की आकृति और आकार ग्लोब पर बिल्कुल सही-सही दिखाए जा सकते हैं। एक तो, बड़े आकार के ग्लोबों को संभालना कठिन होता है और दूसरे इन पर भी केवल कुछ ही लक्षणों को प्रदर्शित किया जा सकता है, क्योंकि उन पर उपलब्ध जगह सीमित होती है। संपूर्ण पृथ्वी को प्रदर्शित करने के लिए ग्लोब सबसे उपयुक्त है, लेकिन पृथ्वी के किसी भाग जैसे महाद्वीप या देश के प्रदर्शन के लिए ग्लोब का प्रयोग नहीं हो सकता। ऐसे प्रयोजनों के लिए मानचित्र सबसे उपयुक्त है।

मानचित्र, पृथ्वी के संपूर्ण धरातल या उसके किसी भाग के चुने हुए लक्षणों का प्रदर्शन है। पृथ्वी के बड़े-बड़े क्षेत्रों को एक ही दृष्टि में देखने के लिए मानचित्र अत्यावश्यक हैं। इनके द्वारा पर्यावरण के विभिन्न तत्वों के अंतर्संबंधों को प्रकट किया जा सकता है। यद्यपि वायु में ऊँचाई से लिए गए फोटोग्राफ भी ऐसे प्रदर्शन में सहायक हो सकते हैं लेकिन वे मानचित्रों का स्थान नहीं ले सकते। वायु-फोटोग्राफों में तो किसी क्षेत्र के सभी लक्षण एक साथ अंकित हो जाते हैं। वे एक दूसरे में ऐसे घुले मिले होते हैं कि उन्हें अलग कर पाना कठिन होता है। लेकिन मानचित्र केवल चुने हुए लक्षणों का ही प्रदर्शन करते हैं अतः उन्हें भली-भांति समझा जा सकता है।

मानचित्र विभिन्न प्रकार के होते हैं। एटलस तथा दीवार-मानचित्र, एक बड़े क्षेत्र का सामान्य चित्र प्रस्तुत करते हैं जैसे एक महाद्वीप या कुछ देशों का एक समूह। स्थलाकृतिक मानचित्र, सामान्य प्रयोजनों वाले मानचित्र होते हैं, जो छोटे से क्षेत्र के बारे में अधिक विवरण देते हैं। नगर और ग्राम मानचित्रों में प्रदर्शित क्षेत्र की सड़कें, भूखंड और खेत दिखाए जाते हैं। ऐसे मानचित्रों को **भूकर मानचित्र** कहते हैं।

जो मानचित्र केवल चुने हुए लक्षणों को निरूपित करते हैं, उन्हें **विषयक मानचित्र** (थीमैटिक) कहते हैं। उदाहरण के लिए मौसम मानचित्र एक विषयक मानचित्र है, जिसमें किसी विशेष दिन के मौसम की दशाओं का निरूपण होता है। जनसंख्या मानचित्र, सड़क मानचित्र, वनस्पति मानचित्र, 'विषयक मानचित्रों' के कुछ अन्य उदाहरण हैं। किसी प्रदेश के दो या दो से अधिक परिवर्तनशील 'तत्वों' के अंतर्संबंधों के अध्ययन में विषयक मानचित्र बहुत सहायक हो

सकते हैं। उदाहरण के लिए, किसी प्रदेश के जनसंख्या मानचित्र को, उस प्रदेश के उच्चावचन मानचित्र के ऊपर रखकर, उच्चावचन के लक्षणों तथा जनसंख्या के वितरण के अंतर्संबंधों को अच्छी तरह प्रकट किया जा सकता है। पर्यावरणीय संबंधों के अध्ययन में सामान्य मानचित्रों की तुलना में, विषयक मानचित्र अधिक उपयोगी होते हैं।

एटलस

एटलस संसार, महाद्वीपों और कुछ चुने हुए देशों के मानचित्रों का संग्रह है। सामान्यतः एटलसों में कई प्रकार के मानचित्र होते हैं। राजनीतिक मानचित्रों में राजनीतिक सीमाएँ, कस्बे और नगर, सड़क और रेल मार्ग दिखाए जाते हैं। एटलस के प्राकृतिक मानचित्रों में भौतिक लक्षण तथा अपवाह का प्रदर्शन होता है। एटलसों में कुछ ऐसे मानचित्र भी होते हैं, जिनमें जलवायु की दशाएँ भूमि-उपयोग, आर्थिक तथा जन-सांख्यिक आंकड़ों का निरूपण होता है। एटलसों से हमें एक मानचित्र की दूसरे मानचित्र की तुलना करने में सहायता मिलती है।

एटलस के मानचित्र सामान्यतः रंगीन होते हैं। स्थल की ऊँचाई तथा महासागरों की गहराई स्तर-रंजन से दिखाई जाती है। निश्चित रूढ़ चिन्हों तथा प्रतीकों के द्वारा मानचित्र में विविध प्रकार के लक्षणों को दिखाया जाता है। क्या तुम्हें एटलस में अक्षरों के आकार तथा उनके लिखने के ढंग में कोई अंतर दृष्टिगोचर होता है? वे किस बात का संकेत करते है? अपनी एटलस के मानचित्रों को ध्यानपूर्वक देखिए और उनमें प्रयुक्त रूढ़ चिन्हों तथा प्रतीकों की सूची बनाइए तथा प्रत्येक चिन्ह का अर्थ भी लिखिए।

एटलस के अंत में स्थानों के नामों की सूची भी होती है। सूची में नाम वर्ण क्रम से लिखे होते हैं। प्रत्येक स्थान के मानचित्र की संख्या या उसकी पृष्ठ संख्या, अक्षांश और देशांतर दिये होते हैं। मानचित्रों में स्थानों को ढूंढ़ने में सूची बड़ी उपयोगी होती है। अपनी एटलस में दिये गए मानचित्रों में सूची की मदद से कुछ स्थानों को ढूंढ़िए।

मापनी (पैमाना)

मानचित्र में भूपृष्ठ के किसी भाग को आनुपातिक घटे हुए आकार में दिखाया जाता है। इसके लिए पैमाने की मदद ली जाती है। पैमाना उस अनुपात को कहते हैं, जो मानचित्र के किन्हीं दो बिन्दुओं के बीच की दूरी और पृथ्वी पर उन्हीं बिन्दुओं के बीच की असली दूरी में होता है। उदाहरण के लिए, एक मानचित्र इस प्रकार बनाया जा सकता है, जिसमें धरातल की 1 किलोमीटर की दूरी मानचित्र पर 1 सेंटीमीटर द्वारा दिखाई जाए। इस प्रकार के मानचित्र का पैमाना 1 सेंटीमीटर बराबर 1 किलोमीटर हुआ। किसी मानचित्र के पैमाने को भिन्न द्वारा भी निर्देशित किया जा सकता है। जिसे **निरूपक भिन्न** या **प्रदर्शक भिन्न** कहते हैं, जिसमें अंश 1 होता है।

$$\text{निरूपक भिन्न} = \frac{\text{मानचित्र की दूरी}}{\text{धरातल की दूरी}}$$

मानचित्र की निरूपक भिन्न को 1/1,00,000 या 1:1,00,000 के द्वारा भी निर्देशित कर सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि मानचित्र की 1 इकाई की दूरी धरातल की 1,00,000 इकाइयों के बराबर है। दूरी की इकाई

किसी भी नाप की हो सकती है। इस प्रकार निरूपक भिन्न में नाप की किसी विशेष इकाई को नहीं अपनाया जाता है। यदि किसी मानचित्र की निरूपक भिन्न 1:1,00,000 है, तो हमारी परिचित नाप में, इसका अर्थ है कि मानचित्र का पैमाना 1 सेंटीमीटर बराबर 1,00,000 सेंटीमीटर या 1 किलोमीटर है।

को ध्यान से देखिए और ज्ञात कीजिए कि मानचित्र का पैमाना किस प्रकार निर्देशित किया गया है। ऐसे मानचित्रों पर दो स्थानों के बीच की दूरी, नदियों की लंबाई आदि नापिए।

पैमानों के आधार पर मानचित्रों को बड़े पैमाने के अथवा छोटे पैमाने के मानचित्रों में बांटा जाता है। 1:50,000 के पैमाने पर बना

6.1 **मुख्य तथा उपविभागों में विभाजित रेखीय पैमाना**
शून्य चिह्न (0) से दाहिनी ओर मुख्य तथा बाईं ओर उपविभाग दिखाए गए हैं। इस पैमाने पर 2200 मीटर की दूरी आप कैसे नापेंगे?

मानचित्र के पैमाने को प्रदर्शित करने की दूसरी विधि को **रेखीय पैमाना** कहते हैं। इसमें एक सीधी रेखा होती है, जिसे पृथ्वी की दूरियों के संदर्भ में अंशांकित किया जाता है। मानचित्र पर दो स्थानों के बीच की वास्तविक दूरी को नापने के लिए रेखीय पैमाने का उपयोग किया जा सकता है। रेखीय पैमाने, मानचित्र के पैमाने तथा दूसरी नापने की इकाइयों के आधार पर बनाए जाते हैं। स्थलाकृतिक मानचित्रों पर कभी-कभी दो रेखीय पैमाने बने होते हैं। एक किलोमीटर दिखाता है तथा दूसरा मीलों का निर्देशन करता है। मानचित्र की दूरियों को परकार या धागे के टुकड़े से नाप कर, फिर संगत दूरियों को रेखीय पैमाने से नापा जा सकता है। दूरियों की सही नाप के लिए रेखीय पैमाने के मुख्य भागों में से एक भाग को उपविभाजित किया जाता है। एटलस के मानचित्रों, दीवार मानचित्रों या रेखामानचित्रों

स्थलाकृतिक मानचित्र बड़े पैमाने का मानचित्र होता है। दीवार मानचित्र छोटे पैमाने का मानचित्र होता है। बड़े पैमाने के मानचित्रों में, छोटे क्षेत्रों को बड़े आकार के मानचित्र में प्रदर्शित किया जाता है। इसके विपरीत छोटे पैमाने के मानचित्रों में, बड़े क्षेत्र को छोटे आकार के मानचित्र में निरूपित किया जाता है। एटलस में महाद्वीपों के मानचित्र किस पैमाने पर बने हैं?

दिशाएँ

मानचित्र में दिशाएँ तीर के निशान द्वारा दिखाई जाती हैं। तीर की नोक उत्तर दिशा की ओर संकेत करती है। यदि किसी मानचित्र में तीर का निशान बना होता है, तो मानचित्र के शीर्ष को उत्तर दिशा माना जाता है। दिशाओं को उत्तर से नापा जाता है। उत्तर-पूर्व (उ०पू०),

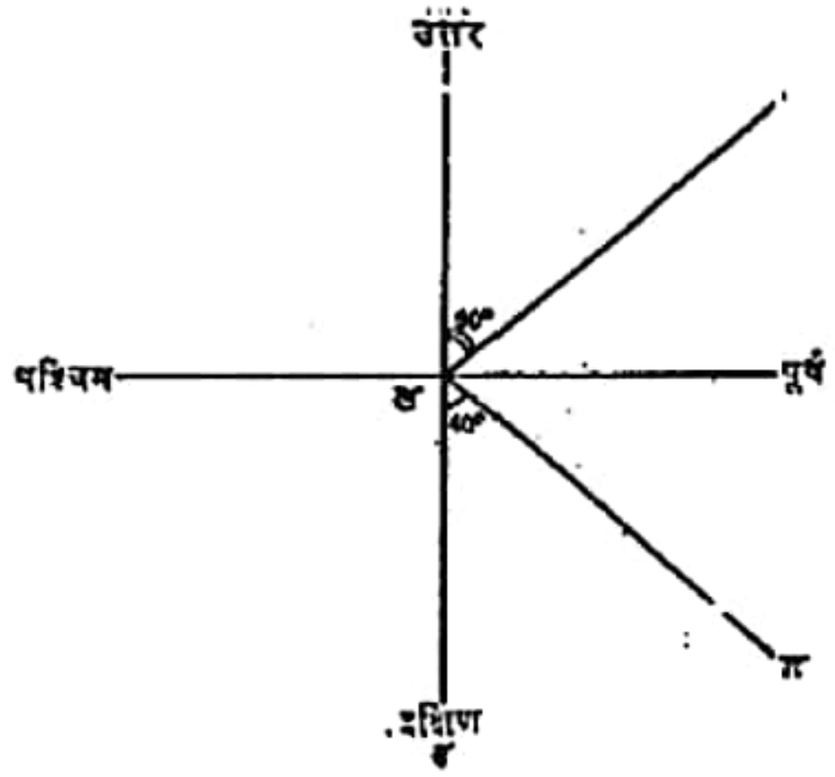

6.2 मानचित्र पर दिशाएँ

चार प्रधान दिशाओं तथा उनके मध्य की अन्य दिशाओं को ध्यान से देखिए। "ख" बिंदु से "क" बिंदु की दिशा को उ० 50° पू० क्यों कहा गया है?

दक्षिण-पूर्व (द.पू.), दक्षिण-पश्चिम (द.प.) और उत्तर-पश्चिम (उ.प.), चार मुख्य दिशाओं के बीच की दिशाएँ है। उदाहरण के लिए 'क', 'ख' के उत्तर-पूर्व में स्थित है? तथा 'ग', 'ख' के दक्षिण-पूर्व में स्थित है। (देखिए चित्र 6.2) दिशाओं की बिल्कुल सही नाप के लिए, उत्तर-दक्षिण रेखा को आधार मानकर, 'ख' से 'क' और 'ग' की कोणीय दूरी को नापना होता है। 'ख' और 'क' को एक सीधी रेखा से मिला दीजिए और 'उ०' 'ख' तथा 'ख' 'क' के बीच के कोण को नाप लीजिए। यदि यह कोण 50° का है, तो 'क' की 'ख' से दिशा को उ० 50° पू० के रूप में व्यक्त किया जाता है। इसी प्रकार 'ख' से 'ग' की दिशा जानने के लिए 'ख' 'ग' को मिला दीजिए तथा 'ख' 'द०' और 'ख' 'ग' के बीच के कोण को नाप लीजिए और यदि यह कोण 40° का है, तो 'ग' की दिशा द० 40° पू. है। पैमाने और दिशा के अतिरिक्त मानचित्रों पर शीर्षक तथा निर्देश भी दिये होते हैं। निर्देश के द्वारा मानचित्र में प्रयुक्त चिन्हों, रंगों तथा रंगों की आभाओं के अर्थ का ज्ञान होता है।

उच्चावच के लक्षणों का प्रदर्शन

उच्चावच के लक्षणों जैसे, पहाड़ियों, घाटियों, मैदानों आदि का मानचित्र पर प्रदर्शन अधिक कठिन है, क्योंकि तीसरे आयाम अर्थात् ऊँचाई को दो आयामी (लंबाई-चौड़ाई वाले) कागज पर प्रदाशत करना पड़ता है। उच्चावच के लक्षणों के प्रदर्शन की विधि मानचित्र के पैमाने के अनुसार बदल जाती है। छोटे पैमाने के मानचित्रों जैसे दीवार मानचित्र और एटलस मानचित्रों पर उच्चावच के लक्षणों को विभिन्न रंगों की अलग-अलग आभाओं के द्वारा निरूपित किया जाता है। इस विधि को स्तर रंजन कहते हैं। प्रत्येक ऊँचाई वाला क्षेत्र किसी विशेष रंग द्वारा प्रकट किया जाता है। सामान्यतः निम्न भूमियाँ हरे रंग की आभाओं के द्वारा प्रदर्शित की जाती हैं। ऊँचे भागों को पीले, बादामी और लाल रंग की आभाओं से दिखाया जाता है। हिम मंडित शिखरों को सफेद रंग से दिखाया जाता है। शिखर चिन्हित होते हैं तथा उनकी ऊँचाई मीटरों या फुटों में लिखी होती है। समुद्र की गहराई नीले रंग की विभिन्न आभाओं के द्वारा दिखाई जाती है। गहरा नीला रंग अधिक गहराई को प्रकट करता है। प्रदर्शन की इस विधि के द्वारा उच्चावच के प्रमुख लक्षणों जैसे पर्वतों पठारों और मैदानों के विषय में सामान्य जानकारी हो जाती है। अपनी एटलस के मानचित्र का अध्ययन करके स्तर रंजन में प्रयुक्त विभिन्न रंगों के अर्थों की जानकारी प्राप्त कीजिए। इसमें आप मानचित्र में दिए निर्देश की सहायता ले सकते हैं।

क्या सभी मानचित्रों में एक जैसी ऊँचाई को दिखाने के लिए एक जैसे रंगों की आभाओं का प्रयोग होता है?

समोच्च रेखाएँ

बड़े पैमाने के मानचित्रों जैसे स्थलाकृतिक मानचित्रों पर उच्चावच के लक्षणों को समोच्च रेखाओं के द्वारा दिखाया जाता है। ये मानचित्र पर खींची गई काल्पनिक रेखाएँ हैं, जो समुद्र तल से समान ऊँचाई वाले स्थानों को मिलाती हैं। किसी क्षेत्र के अनेक स्थानों की ऊँचाइयों के विस्तृत सर्वेक्षण के आधार पर ही समोच्च रेखाएँ खींची जाती हैं। प्रत्येक स्थान की ऊँचाई को सबसे पहले मानचित्र पर अंकित कर लिया जाता है और फिर अंतर्वेशन द्वारा समोच्च रेखाएँ खींची जाती हैं। समोच्च रेखाएँ निश्चित अंतरालों जैसे– 20, 50 या 100 मीटर पर खींची जाती हैं। समोच्च रेखाओं के बीच की दूरी से ढाल का सामान्य ज्ञान हो जाता है। यदि समोच्च रेखाएँ पास-पास खिंची होती हैं, तो उनसे तेज ढाल का संकेत मिलता है। दूर-दूर खिंची समोच्च रेखाओं से धीमा ढाल प्रकट होता है। कुछ सामान्य स्थलाकृतियों के समोच्च रेखा-आरेख चित्र 6.3 में दिये गए हैं। भूमि के ढाल का अनुमान लगाने के लिए समोच्च रेखा आरेखों में बने पार्श्व चित्रों का अध्ययन कीजिए।

रूढ़ चिन्ह और प्रतीक

विभिन्न रंगों के चिन्हों और प्रतीकों का प्रयोग करके मानचित्रों पर बहुत सी जानकारी दी जाती है। नदियों और जलाशयों को नीले रंग से दिखाया जाता है। मानव-बस्तियों और सड़कों के लिए लाल रंग निश्चित है। समोच्च रेखाएँ बादामी रंग से खींची जाती हैं। रेल मार्गों तथा स्थानों के नामों को काले रंग से दिखाया जाता है। मानचित्र को समझने के लिए सामान्य रूप से प्रयुक्त चिन्हों और प्रतीकों का ज्ञान होना अति आवश्यक है। (देखिए चित्र 6.4)

वितरण मानचित्र

वितरण मानचित्रों में किसी क्षेत्र के विशेष लक्षणों का वितरण दिखाया जाता है। ऐसे मानचित्र दो प्रकार के होते हैं– पहला, गुणात्मक मानचित्र जैसे किसी प्रदेश के वनस्पति या मृदा-मानचित्र, दूसरा, मात्रात्मक मानचित्र जैसे जनसंख्या को प्रदर्शित करने वाला मानचित्र।

जनसंख्या का वितरण **बिंदु मानचित्र** द्वारा दिखाया जा सकता है, जिसमें प्रत्येक बिंदु व्यक्तियों की निश्चित संख्या को प्रकट करता है। भारत का एक ऐसा जनसंख्या मानचित्र बनाया जा सकता है, जिसमें एक बिंदु 10 लाख व्यक्तियों को प्रदर्शित करता है। इसी तरह, आर्थिक आँकड़े जैसे फसलों का उत्पादन, खनिज उत्पादन आदि, वितरण मानचित्रों के द्वारा निरूपित किए जा सकते हैं।

तापमान, वायुदाब, वर्षा आदि को सामान्यतः एक जैसे 'मान' वाली रेखाओं के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। **समताप रेखाएँ** मानचित्र में तापमान का वितरण दिखाती हैं। **समदाब रेखाएँ**, वायुदाब तथा **समवर्षा रेखाएँ** मानचित्रों में वर्षा को दिखाने के लिये प्रयोग की जाती हैं। समाचार पत्रों में प्रकाशित मौसम मानचित्रों में मौसम के किस तत्व को सम-मान रेखाओं द्वारा दिखाया जाता है?

किसी क्षेत्र के भौतिक और जैव पर्यावरण के विभिन्न तत्वों के वितरण को समझने में, वितरण

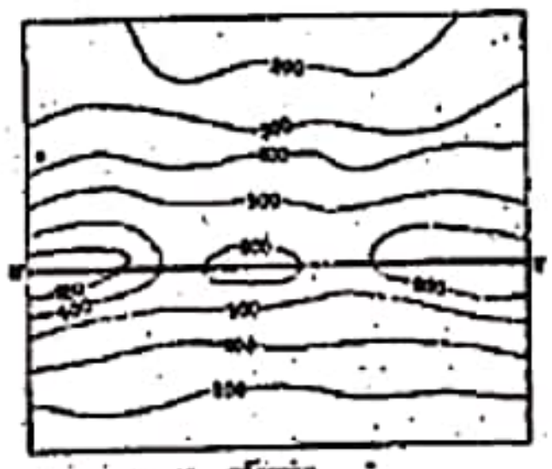

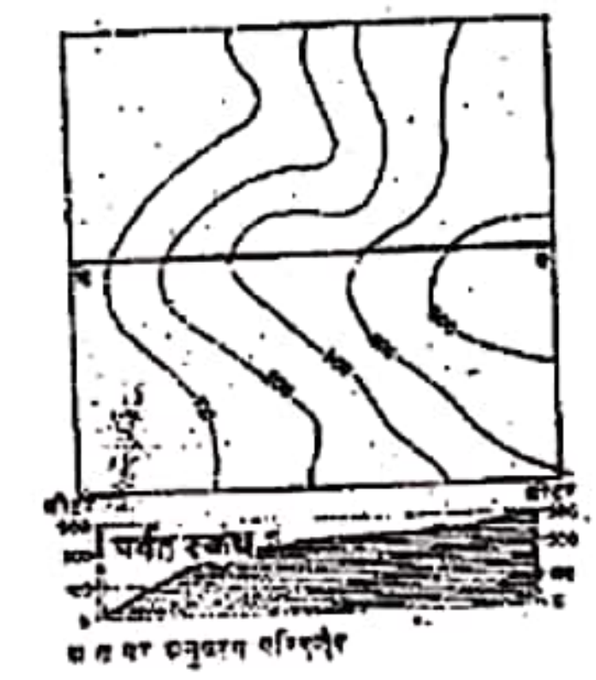

6.3 (क से च तक) उच्चावच के कुछ प्रमुख लक्षणों की समोच्च रेखाओं के प्रारूप।

विभिन्न स्थलाकृतियों को प्रदर्शित करनेवाली समोच्च रेखाओं को ध्यान से देखिए तथा प्रत्येक के नीचे खींचे गए अनुप्रस्थ परिच्छेद की मदद से उनमें पाई जाने वाली भिन्नताओं की ज्ञात कीजिए। प्रत्येक उदाहरण में भूमि की ऊँचाई तथा उसकी आकृति को दिखाया गया है।

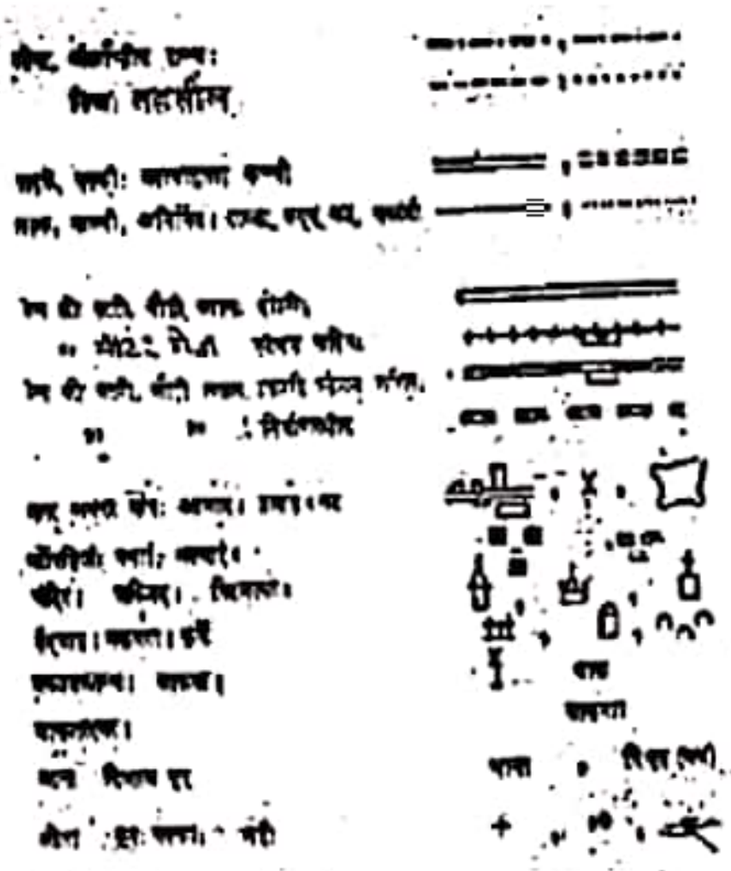

6.4 भारतीय सर्वेक्षण विभाग के स्थलाकृतिक मानचित्रों में प्रयुक्त कुछ चिह्न

कुछ ऐसे चिह्नों के प्रतीकों को ध्यान से देखिए। इन्हें मानचित्र की "वर्णमाला" कहते हैं।

मानचित्रों से सहायता मिलती है। इसी तरह किसी क्षेत्र की जलवायु की दशाओं, मृदा के प्रकारों तथा भूमि के उपयोग के परस्पर संबंधों के बारे में निष्कर्ष निकालना संभव हो सकता है। प्रत्येक जनगणना के बाद जनसंख्या वितरण मानचित्र बनाए जाते हैं। विभिन्न दशकों की जनगणनाओं के जनसंख्या वितरण मानचित्रों का अध्ययन करके वितरण प्रारूप में हुए परिवर्तन को समझा जा सकता है। इस प्रकार, विषयक मानचित्रों के सावधानीपूर्वक अध्ययन से किसी क्षेत्र के प्रादेशिक तथा सामयिक परिवर्तनों को समझना आसान होता है।

आरेख

सांख्यिक आँकड़ों को विभिन्न प्रकार के आरेखों द्वारा भी निरूपित किया जा सकता है। किसी समयावधि में हुए परिवर्तनों को समझने में इन आरेखों से बड़ी मदद मिलती है। सबसे सरल आरेख **रैखिक आरेख** है। इस आरेख में समय की अवधि जैसे महीने और वर्ष 'क' अक्ष पर तथा चरांक अर्थात् परिवर्तनशील तत्व 'ख' अक्ष पर अंकित किए जाते हैं। उदाहरण के लिए, भारत में सन् 1901 से लेकर सन् 1981 तक की जनसंख्या-वृद्धि को एक रैखिक आरेख द्वारा दिखाया जा सकता है। प्रत्येक जनगणना की जनसंख्या का 'मान' एक बिंदु के रूप में अंकित किया जाता है। तथा इन बिंदुओं को क्रमिक सरल रेखाओं से मिला दिया जाता है। ऐसे रैखिक आरेखों से किसी भी वर्ष की जनसंख्या का अनुमान लगाना संभव है। उदाहरण के लिए यदि सन् 1976 की जनसंख्या मालूम करनी है तो सबसे पहले आरेख के 'क' अक्ष पर सन् 1976 के लिए बिंदु निर्धारित करके उस बिंदु से क्रमिक सरल रेखा तक लंब डालेंगे। जहाँ यह लंब क्रमिक सरल रेखा को काटे, उस बिंदु से 'ख' अक्ष पर लंब डालेंगे। इस प्रकार जिस बिंदु पर यह लंब ख अक्ष को काटेगा, वह सन् 1976 की जनसंख्या को प्रदर्शित करेगा। फसलों के उत्पादन, प्रति हैक्टर उपज तथा समयावधि में बदलने वाले ऐसे आंकड़ों को रैखिक आरेख द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

दंड आरेख

दंड एक लंबा और समान चौड़ाई वाला आयत होता है। दंड की लंबाई प्रदर्शित किए जाने वाले आँकड़ों के अनुपात में होती है। दंड एक दूसरे के समांतर खींचे जाते हैं तथा दंडों के बीच में समान दूरी रखी जाती है। एक आधार

रेखा के संदर्भ में दंड ऊर्ध्वाधर (खड़े) या क्षैतिज (पड़े) खींचे जा सकते हैं। जिस आरेख में अनेक समांतर दंड होते हैं, उसे **दंड आरेख** या **दंड-लेखाचित्र** कहते हैं। निम्नलिखित आँकड़ों को प्रदर्शित करने के लिए अलग-अलग दंड आरेख बनाइये:

देश	तेल उत्पादन 1984	सुरक्षित भंडार 1984
	(अरब बैरल में)	
साउदी अरब	1.7	169.0
कुवैत	0.4	90.0
सोवियत संघ	4.5	63.0
संयुक्त राज्य अमेरिका	3.8	34.5
मैक्सिको	1.1	48.6

इन आँकड़ों के प्रदर्शन के लिए दो दंड आरेख खींचे जा सकते हैं — एक तेल का उत्पादन दिखाने के लिए तथा दूसरा कुल सुरक्षित भंडार के निरूपण के लिए।

आओ! सबसे पहले हम 1984 में तेल का उत्पादन दिखाने के लिए दंड आरेख खींचें। सबसे पहले पृष्ठ के बाएँ सिरे के निकट एक 'खड़ी' आधार रेखा खींचिए। इसके बाद उत्पादन की मात्रा दिखाने के लिए एक 'पड़ी' आधार रेखा खींचिए। अब दंड का पैमाना निश्चित कर लीजिए। एक अरब बैरल तेल को दिखाने के लिए 2 सेंटीमीटर लंबी दूरी ली जा सकती है। पैमाने पर दो-दो सेंटीमीटर के बाद बिंदु अंकित कर लीजिए। साउदी अरब के तेल

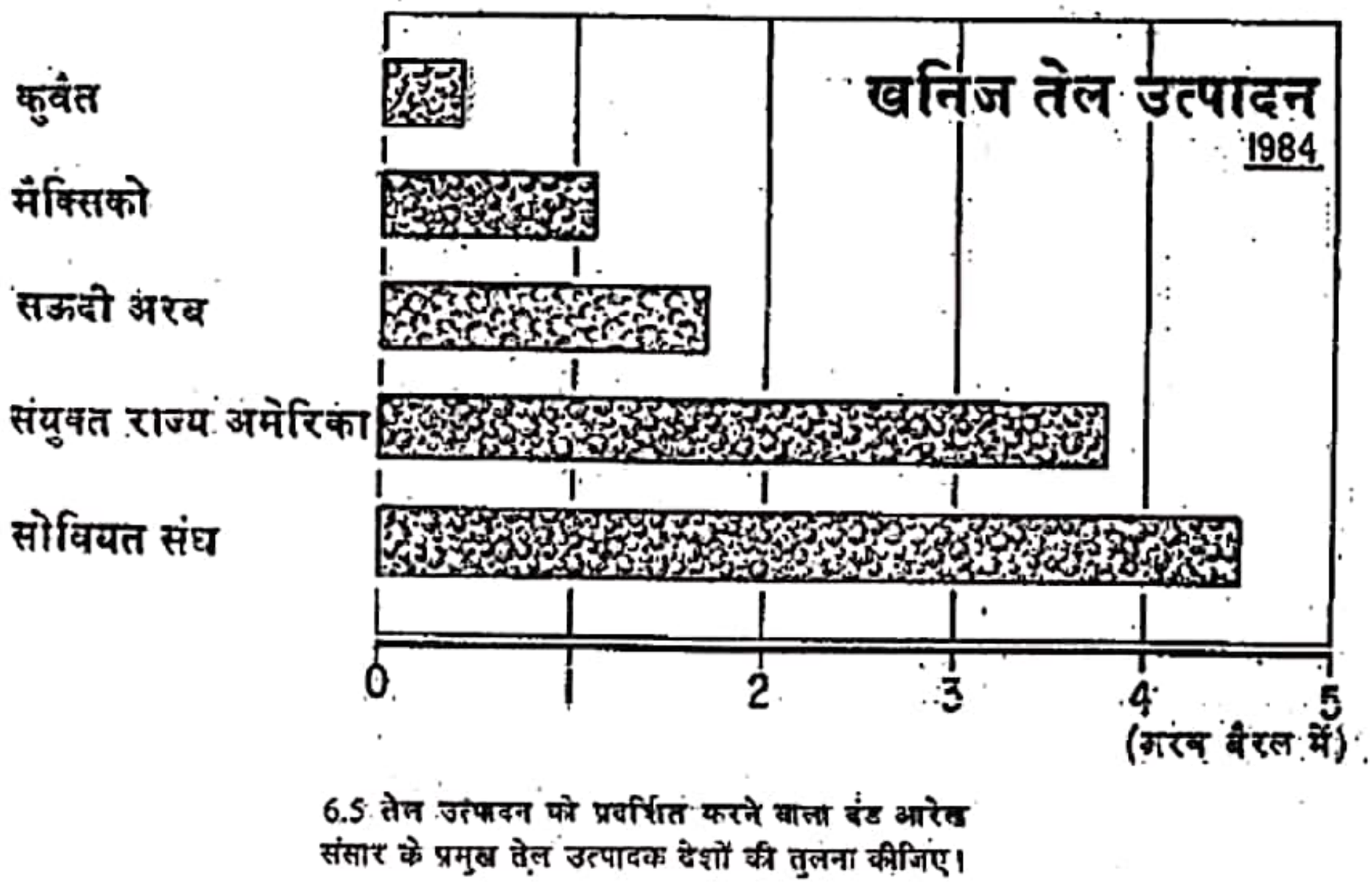

6.5 तेल उत्पादन को प्रदर्शित करने वाला दंड आरेख संसार के प्रमुख तेल उत्पादक देशों की तुलना कीजिए।

उत्पादन को दिखाने वाले दंड की लम्बाई 3.4 सेंटीमीटर होगी। इसी प्रकार प्रत्येक देश के लिए दंड की लंबाई की गणना कर लीजिए। इन्हीं के अनुसार दंड खींच दीजिए। दंड खींचते समय इस बात का ध्यान रखिए कि वे एक जैसी चौड़ाई के हों तथा एक दूसरे के समांतर हों। प्रत्येक दंड के सामने उस देश का नाम लिख दीजिए जिसे वह प्रदर्शित करता है। इसी विधि का अनुसरण करके, तेल के सुरक्षित भंडारों के प्रदर्शन के लिए दूसरा दंड आरेख बनाइए।

जलवायु आरेख

जलवायु आरेख, रैखिक आरेख तथा दंड आरेख का सम्मिलित रूप होता है। क्योंकि इसमें तापमान रेखा द्वारा तथा वर्षा दंडों द्वारा प्रदर्शित की जाती है। इस आरेख से किसी स्थान की जलवायु का अनुमान लगाया जा सकता है। यह आरेख प्रत्येक महीने के औसत तापमान तथा औसत वर्षा के आँकड़ों के आधार पर बनाया जाता है। आगे दी गई सारणी में मुंबई के पूरे वर्ष के आँकड़े दिए गए हैं:

माह	जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितंबर	अक्तूबर	नवम्बर	दिसंबर
औसत तापमान (° सेल्सियस में)	23.9	24.1	26.2	28.1	29.6	28.7	27.3	27.0	27.0	27.9	27.2	25.4
वर्षा (मिलीमीटर में)	4.1	2.0	1.5	1.5	18.3	464.5	610.4	328.9	256.0	64.2	17.5	2.3

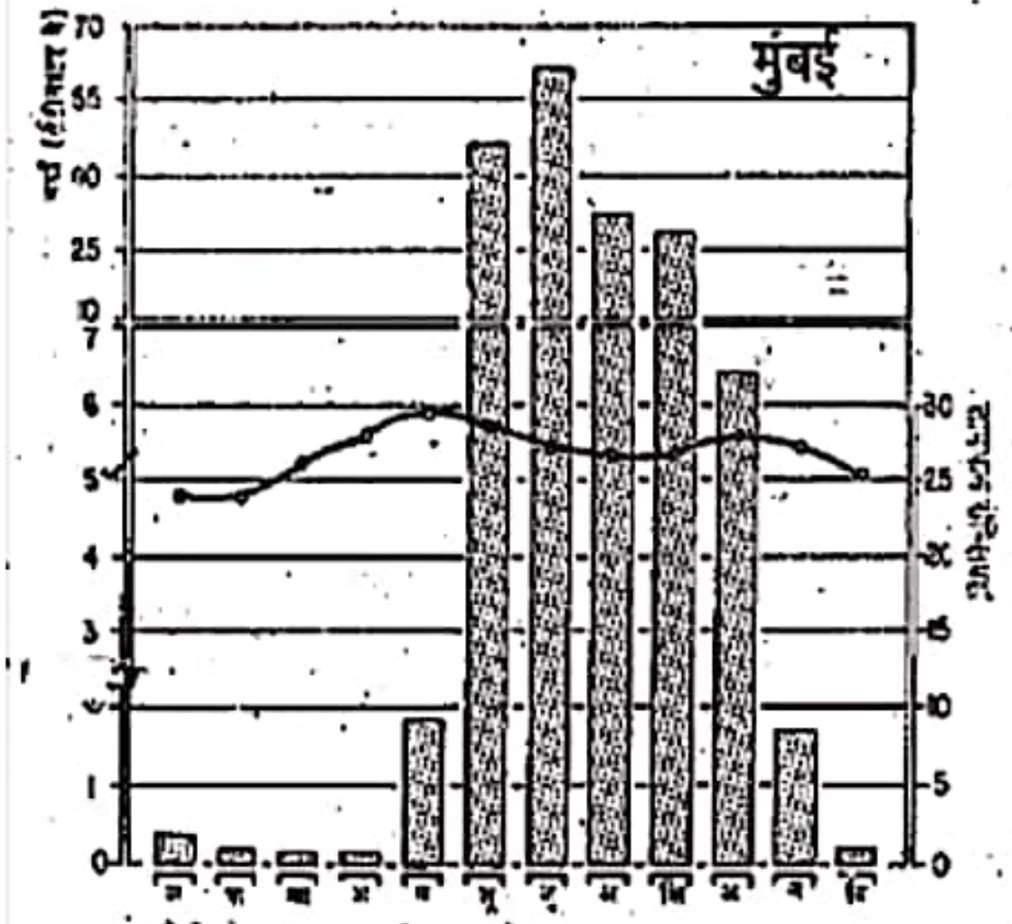

6.6 रैखिक तथा दंड आरेख

चित्र में बंबई की जलवायु के आंकड़े प्रदर्शित किए गए हैं। औसत मासिक तापमान को रैखिक आरेख एवं औसत मासिक वर्षा को दंडों के रूप में दिखाया गया है। बंबई के अधिकतम तथा न्यूनतम तापमान और शुष्क एवं आर्द्र ऋतुओं को ज्ञात कीजिए।

इस आरेख में महीने 'क' अक्ष पर अंकित हैं। प्रत्येक महीने के लिए समान दूरी ली गई है। 'ख' अक्ष पर तापमान और वर्षा के मान, उचित पैमाना चुनकर अंकित किए गए हैं। तापमान के पैमाने के अनुसार, प्रत्येक महीने के औसत तापमान को बिंदु के द्वारा अंकित किया गया है और इन्हें एक वक्र रेखा के द्वारा मिला दिया गया है। यह रैखिक आरेख वर्ष में तापमान के परिवर्तन को बतलाता है।

मुंबई के जुलाई और अगस्त के तापमान के गिर जाने के कारणों की व्याख्या भी की जा सकती है। यह भी जाना जा सकता है कि तापांतर कम क्यों हैं?

प्रत्येक महीने की वर्षा के आँकड़े खड़े तथा एक समान चौड़ाई वाले दंडों के द्वारा दिखाए गए हैं। प्रत्येक दंड की लंबाई, महीने की वर्षा की मात्रा के अनुपात में है। वर्षा के दंड अलग-अलग

दिखाए गए हैं, जिनके बीच में समान दूरी छोड़ी गई है।

स्थानीय पर्यावरण का अध्ययन

रविवार तथा अन्य अवकाश के समय क्षेत्र निरीक्षण के द्वारा विद्यालय के पास-पड़ोस के पर्यावरण का अध्ययन किया जा सकता है। स्थलाकृतियों, नदियों, जल आपूर्ति के स्रोतों, अपवाह, भूमि उपयोग, बोई जाने वाली फसलों आदि का पर्यवेक्षण किया जा सकता है। क्षेत्र निरीक्षण में प्राकृतिक पर्यावरण तथा सांस्कृतिक पक्ष दोनों को ही सम्मिलित करना चाहिए। पर्यावरण प्रदूषण के उदाहरणों की जानकारी भी एकत्र कर लेनी चाहिए।

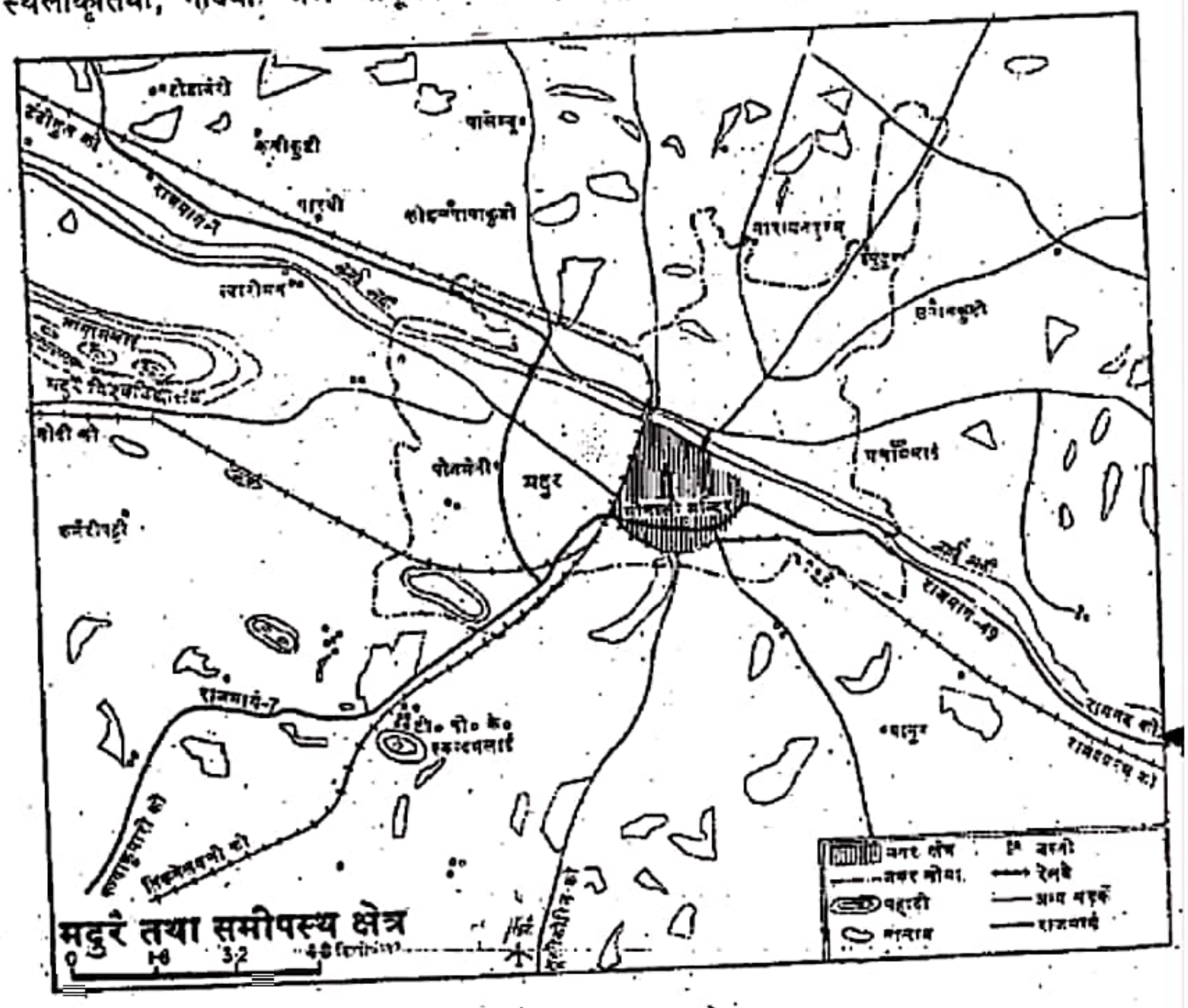

पर्यवेक्षण से संबंधित जानकारी नगरों या गाँवों के मानचित्रों पर अंकित करनी चाहिए या

6.7 मदुरै (तमिलनाडु) तथा इसके आस-पड़ोस का स्केच. इस स्केच के आधार पर अपने स्थान के प्रमुख लक्षणों को दिखानेवाला एक कामचलाऊ स्केच बनाइए।

इसके लिए अलग से रेखा-आरेख (स्कैच मैप) बनाया जा सकता है। रेखा-आरेख पैमाने के अनुसार नहीं खींचा जाता। यह केवल लक्षणों की सापेक्षिक स्थिति ही दर्शाता है। आप चाहें तो विविध लक्षणों के फोटो खींचकर फाइल में लगा सकते हैं। मृदा और शैलों के नमूने भी इकट्ठे किए जा सकते हैं। क्षेत्र में पर्यवेक्षित तथ्यों का उपयोग, विभिन्न अध्यायों में दिए गए संकल्पनाओं को अच्छी तरह समझने में किया जा सकता है।

स्वाध्याय

पुनरावृत्ति-प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए—
   (1) विषयक मानचित्रों के महत्व की विवेचना कीजिए।
   (2) ग्लोब और मानचित्र के सापेक्षिक महत्व की विवेचना कीजिए।
   (3) मानचित्र पर पैमाना किन-किन विधियों से दिखाया जाता है?
   (4) जलवायु आरेख का वर्णन कीजिए।
2. अंतर स्पष्ट कीजिए –
   (1) बड़े पैमाने के मानचित्र तथा छोटे पैमाने के मानचित्र।
   (2) समताप रेखाएँ तथा समवाब रेखाएँ।
   (3) रैखिक आरेख तथा दंड आरेख।
3. निम्नलिखित में से प्रत्येक के लिए एक-एक पारिभाषिक शब्द दीजिए–
   (1) मानचित्र, जो सड़कों, भूखंडों और खेतों का विवरण प्रदर्शित करते है।
   (2) वह अनुपात जो मानचित्र के किन्हीं दो बिंदुओं के बीच की दूरी तथा पृथ्वी पर उन्हीं बिन्दुओं
   (3) काल्पनिक रेखाएँ, जो समुद्रतल से समान ऊँचाई वाले स्थानों को मिलाती हैं।
   (4) उच्चावच के लक्षणों का विभिन्न रंगों की अलग-अलग आभाओं द्वारा निरूपण।
4. मानचित्र के पैमाने से क्या तात्पर्य है? मानचित्र पर इसका प्रदर्शन किन विधियों से किया जाता है?
5. मानचित्रों पर उच्चावच के लक्षणों को दिखाने के लिए उपयोग में आने वाली विधियों का वर्णन कीजिए।

स्वयं करें और सीखें

1. अपनी एटलस का अध्ययन करके रूढ़ चिह्नों और प्रतीकों की एक सूची बनाइए।
2. अपनी एटलस के विभिन्न मानचित्रों की सूची बनाइए तथा प्रत्येक मानचित्र का पैमाना भी लिखिए।
3. अपने स्थानीय क्षेत्र के मानचित्र का अध्ययन कीजिए तथा भूमि के विभिन्न लक्षणों को पहचानिए।
4. किसी क्षेत्र का निरीक्षण करिए तथा उसका रेखा-आरेख तैयार कीजिए।
5. परिशिष्ट में दिए गए जलवायु के आंकड़ों के आधार पर एक जलवायु आरेख बनाइए।

पाठनीय पुस्तकें

1. सिंह, आर०एल० एण्ड दत्ता, पी०के० : एलीमेंट्स ऑफ प्रैक्टिकल ज्याग्रफी, स्टूडेंट्स फ्रैंड्स, इलाहाबाद।
2. बाइगॉट, जे० : एन इंट्रोडक्शन टु मैप वर्क एण्ड प्रैक्टिकल ज्याग्रफी, यूनिवर्सिटी ट्यूटोरियल प्रेस, लंदन।
3. मॉक हाउस एण्ड विल्किंसंस : मैप्स एण्ड डायग्राम्स, मैथ्यून एण्ड कंपनी लिमिटेड, लंदन।
4. पीटर जिल्सन : सबसेस इन ज्याग्रफी, फिजीकल एण्ड मैप वर्क, जान मरे, लंदन।

खंड तीन

पर्यावरण पर मनुष्य का प्रभाव

पर्यावरण पर मनुष्य के प्रभाव में एक स्थान से दूसरे स्थान पर परिवर्तन होता रहता है। यह परिवर्तन जनसंख्या के असमान वितरण के कारण भी हो सकता है। नदी-घाटियों एवं डेल्टा प्रदेशों तथा प्रमुख औद्योगिक प्रदेशों में जनसंख्या का घनत्व अधिक है। विकासशील देशों की तुलना में विकसित देशों जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका में खाद्यान्नों, ऊर्जा तथा अन्य साधनों की प्रति व्यक्ति खपत अधिक है। परिणामस्वरूप विकासशील देशों की अपेक्षा विकसित देशों का पर्यावरण पर प्रभाव भी अधिक पड़ता है। विगत कुछ दशकों में जनसंख्या के बहुत तेजी से बढ़ने से पर्यावरण प्रदूषण तथा साधनों के ह्रास के रूप में गंभीर परिणाम निकले हैं।

मानव इतिहास के प्रारंभिक काल में अधिकतर मनुष्य खाद्य पदार्थों के संग्रह में या उनके उत्पादन में लगे रहते थे। जब कृषि से अतिरिक्त खाद्य पदार्थ मिलने लगे, तो लोगों में श्रम का विभाजन शुरू हुआ। इससे व्यवसायों में विविधता आ गई। परिवहन तथा संचार के साधनों का जाल बिछ जाने के बाद अब तो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर श्रम का विभाजन हो गया है। कुछ देशों ने निर्यात के लिए कुछ निश्चित वस्तुओं के उत्पादन में विशिष्टता प्राप्त कर ली है।

संसाधनों के विभिन्न प्रकारों तथा उनके वितरण के अध्ययन से ही यह पता चल सकेगा कि क्या वे पृथ्वी पर मनुष्यों की वर्तमान और भावी आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त हैं। ऐसे अध्ययन से यही निष्कर्ष निकलता है कि भविष्य के लिए अपने संसाधनों का संरक्षण अत्यावश्यक है। साधनों के अति उपयोग के फलस्वरूप ही पर्यावरण खराब हुआ है तथा जल और वायु प्रदूषित हो गए हैं।

प्राकृतिक पर्यावरण की समानता के आधार पर संसार को प्रमुख प्राकृतिक प्रदेशों में बाँटा जा सकता है। यद्यपि प्रत्येक प्रदेश में विशेष पर्यावरणीय दशा है, लेकिन वहाँ के मानव जीवन में भिन्नता पाई जाती है। यह भिन्नता इसलिए पाई जाती है कि प्रदेश विशेष के लोगों की आवश्यकताएँ तथा आकांक्षाएँ और उनका तकनीकी ज्ञान भिन्न होता है। संसार के विभिन्न भागों में एक जैसे प्राकृतिक पर्यावरण में अलग-अलग मानवीय क्रिया-कलाप दिखाई पड़ते हैं।

विगत कुछ वर्षों में पर्यावरण के प्रदूषण तथा संसाधनों के ह्रास से यही निष्कर्ष निकला है कि पर्यावरण का संरक्षण अत्यावश्यक है। क्षेत्र-विकास के उदाहरणों के अध्ययन यह स्पष्ट करने के लिए दिए गए हैं कि विकास के विभिन्न स्तरों पर रहने वाले लोगों के जीवन पर कृषि और उद्योगों का क्या प्रभाव पड़ता है।

7

हमारी बढ़ती जनसंख्या

मनुष्य जैव मंडल का अंग है। पृथ्वी पर उसके जीवन का अस्तित्व, भौतिक पर्यावरण तथा जैव पर्यावरण के साथ अनुकूलन पर निर्भर करता है। आज से लगभग 10 लाख वर्ष पहले विभिन्न जीवों के बीच मनुष्य का अलग व्यक्तित्व निखरकर सामने आया। उसका विकास भौतिक पर्यावरण में परिवर्तन के कारण हुआ। मनुष्य ने धीरे-धीरे विभिन्न पर्यावरणों के अनुरूप जीना सीख लिया और वह विश्व के विभिन्न भागों में फैल गया। मानव ने अपने क्रिया-कलापों से पर्यावरण को बहुत प्रभावित किया है। पर्यावरण पर यह प्रभाव, उस क्षेत्र में रहने वाले लोगों की संख्या तथा उनके आर्थिक विकास के स्तर के अनुसार कम या ज्यादा हो सकता है। विकसित देशों के लोगों की भोजन ऊर्जा तथा अन्य साधनों के उपभोग की प्रति व्यक्ति मात्रा बहुत अधिक है। परिणामस्वरूप एशिया और अफ्रीका के विकासशील देशों में रहने वाले उतने ही लोगों की तुलना में विकसित देशों का पर्यावरण पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। इसलिए, जनसंख्या के वितरण की विस्तार से विवेचना बहुत आवश्यक है।

जनसंख्या का वितरण

1992 में संसार की कुल जनसंख्या 5.5 अरब हो गयी है। जनसंख्या का वितरण हमेशा से ही बहुत असमान रहा है। 90 प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या उत्तरी गोलार्द्ध में है। पूर्व सोवियत संघ सहित अकेले एशिया महाद्वीप में संसार की दो तिहाई से, अधिक जनसंख्या रहती है। चीन, भारत, रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका, इंडोनेशिया, ब्राजील, जापान, नाइजीरिया, बंगला देश और पाकिस्तान, दस ऐसे राष्ट्र हैं जिनकी जनसंख्या 10 करोड़ से अधिक है।

कुल संख्या से इस बात का संकेत नहीं मिलता कि जनसंख्या का भूमि और उसके साधनों पर कितना प्रभाव पड़ता है। प्रति इकाई भूमि क्षेत्र में रहने वाले लोगों की संख्या से कुछ अधिक स्पष्ट चित्र उभरता है। इसे प्रतिवर्ग किलोमीटर भूमि पर जनसंख्या के घनत्व के रूप में व्यक्त किया जाता है। संपूर्ण संसार में जनसंख्या का औसत घनत्व 38 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि०मी० है (1992)। औसत घनत्व निकालते समय यह मान कर चलते हैं कि भूमि पर जनसंख्या का वितरण समान है। पर्यावरणीय दशाओं के कारण एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जनसंख्या के वास्तविक घनत्व में काफी अंतर है। मरुस्थलों में एक व्यक्ति से भी कम प्रतिवर्ग कि.मी. से लेकर संसार के विभिन्न क्षेत्रों में 1000 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी.

तक जनसंख्या का घनत्व हो सकता है। उच्च घनत्व के क्षेत्र छोटे और बिखरे हैं, जबकि अपेक्षाकृत कम घनत्व के क्षेत्र विशाल हैं। जनसंख्या के घनत्व में ऐसी असमानता, न केवल सारे संसार में ही पाई जाती है, अपितु प्रत्येक देश या प्रदेश के अंदर भी मिलती है। घनत्व में ऐसी भिन्नताएँ मनुष्य द्वारा पर्यावरण के उपयोग में भिन्नता के कारण होती हैं।

अधिक घनत्व के प्रदेश (प्रति वर्ग किलोमीटर में 100 व्यक्तियों से अधिक)

संसार में अधिक घनत्व के चार मुख्य प्रदेश हैं:

1. पूर्वी एशिया जिसमें चीन, जापान और कोरिया सम्मिलित हैं।
2. दक्षिणी एशिया – जिसमें भारत पाकिस्तान और बंगला देश शामिल हैं।
3. उत्तर-पश्चिमी यूरोप–जिसमें ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, बेल्जियम, नीदरलैंड, डेनमार्क और जर्मनी शामिल हैं।
4. उत्तर पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका – यह क्षेत्र अटलांटिक तट से लेकर ग्रेट लेक्स तक फैला है।

प्रथम दो प्रदेशों में जनसंख्या के उच्च घनत्व का कारण पर्याप्त वर्षा वाले या सिंचाई की सुविधाओं से युक्त मैदानी भागों की गहन कृषि है। यूरोपीय प्रदेशों तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में जनसंख्या का अधिक घनत्व औद्योगीकरण तथा नगरीकरण के कारण है। अफ्रीका की नील घाटी तथा इंडोनेशिया के जावा द्वीप में भी जनसंख्या का वैसा ही अधिक घनत्व पाया जाता है। इन प्रदेशों में गहन कृषि की जाती है।

साधारण घनत्व के प्रदेश : (50 से 100 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी.)

जनसंख्या के साधारण घनत्व के क्षेत्र ये हैं – दक्षिण पूर्वी एशिया, मध्य तथा दक्षिणी यूरोप, यूरोपीय रूस, दक्षिण अफ्रीका तथा दक्षिण अमेरिका के मध्य अक्षांशीय प्रदेशों के तटीय मैदान।

निम्न घनत्व के प्रदेश : (50 व्यक्तियों से कम प्रति वर्ग कि.मी.)

संसार के लगभग 80% भूमि क्षेत्र, निम्न घनत्व वाले प्रदेश हैं। ये प्रदेश या तो बहुत ऊबड़-खाबड़ हैं या बहुत गर्म या बहुत ठंडे हैं या बहुत वर्षा वाले या बहुत शुष्क हैं। अतः इन प्रदेशों में मनुष्य बहुत बड़ी संख्या में रहकर उत्पादक कार्य नहीं कर सकता। ध्रुवीय प्रदेश जैसे अंटार्कटिका तथा ग्रीनलैंड बहुत ही ठंडे और विरल जनसंख्या वाले हैं। मध्य एशिया के ऊँचे पर्वत तथा पठार बहुत ही ऊबड़-खाबड़ हैं। अतः यहाँ बस्तियाँ बसाना बहुत मुश्किल काम है। केवल कुछ सुगम्य क्षेत्रों में ही लोग रहते हैं। अमेजन और कांगो नदियों की द्रोणियों में फैले विषुवतीय वर्षा वन प्रदेश भी मनुष्य के निवास योग्य नहीं हैं। सहारा और पश्चिमी आस्ट्रेलिया के मरुस्थल, कुछ मरुद्यानों को छोड़कर, मनुष्य के आवास के योग्य नहीं हैं। आवास के अयोग्य इन वनों, मरुस्थलों या पर्वतीय प्रदेशों में बहुत ही कम संख्या में, कठोर जीवन बिताने वाले चलवासी ही रहते हैं।

जनसंख्या के वितरण को प्रभावित करने वाले कारक

जिन प्रदेशों में अनुकूल पर्यावरण है, वहाँ जनसंख्या का घनत्व संसार के औसत घनत्व से

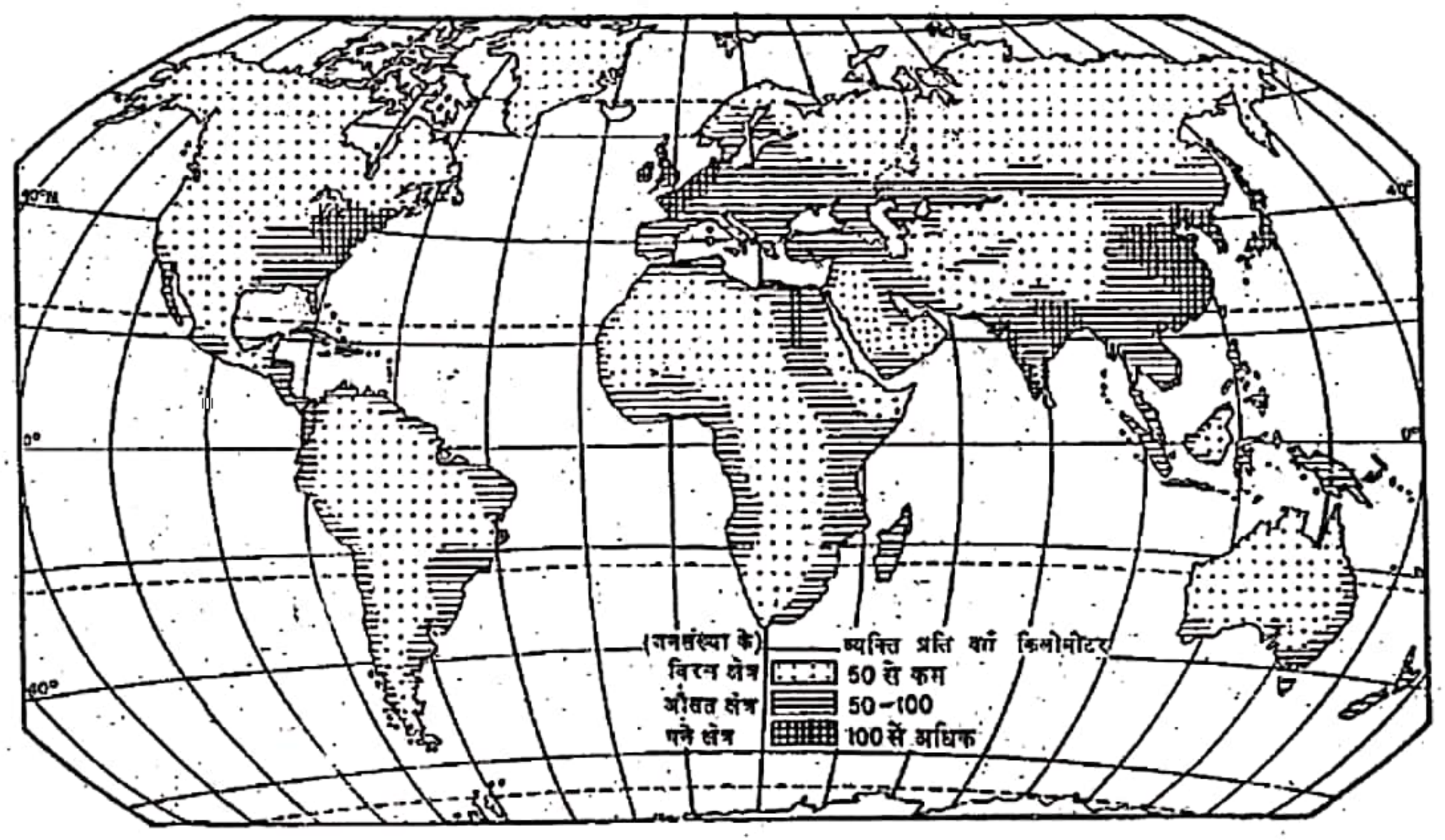

7.1 संसार में जनसंख्या का वितरण

विश्व में जनसंख्या का वितरण बहुत ही असमान है। इसे घनत्व के अन्तरों द्वारा प्रकट किया गया है। जनसंख्या के घनत्व में ऐसे बड़े अन्तर किन कारणों से होते हैं?

अधिक है। तटीय मैदानों तथा नदी घाटियों में जनसंख्या का घनत्व अधिक है, क्योंकि इन प्रदेशों में कृषि के लिए उपजाऊ मिट्टी तथा प्रचुर मात्रा में जल उपलब्ध है। पर्वतीय तथा पहाड़ी प्रदेश में अपेक्षाकृत कम घनत्व होता है। साधारण वर्षा वाले उष्ण-कटिबंधीय तथा मध्य-अक्षांशीय प्रदेशों में जनसंख्या का घनत्व वर्षा वनों या मरुस्थलों के घनत्व से कहीं अधिक है। उच्च अक्षांशों में गेहूँ और मक्का की खेती के लिए वर्धन काल छोटा होता है, फलस्वरूप यहाँ जनसंख्या का घनत्व भी कम है। महाद्वीपों के भीतरी भागों में वर्षा बहुत कम होती है। यहाँ का मुख्य व्यवसाय पशुचारण है। पशुचारण के लिए विस्तृत क्षेत्रों की आवश्यकता होती है। अतः यहाँ भी घनत्व कम है।

इस प्रकार भौतिक लक्षणों तथा जलवायु के अतिरिक्त, लोगों के रहन सहन के तरीके जैसे सांस्कृतिक कारक भी जनसंख्या के घनत्व को प्रभावित करते हैं। विषुवतीय वनों और मरुस्थलों में जनसंख्या का घनत्व कम है, क्योंकि यहाँ चलवासी जातियाँ रहती हैं, जो भोजन संग्रह, आखेट तथा मत्स्य ग्रहण द्वारा जीवन निर्वाह करती हैं। जीवन निर्वाह के इन व्यवसायों के लिए एक विस्तृत क्षेत्र की आवश्यकता होती है। पशुचारण करने वाले चलवासी क्षेत्रों में भी जनसंख्या का घनत्व कम पाया जाता है क्योंकि ये लोग अपने पशुओं के साथ चरागाहों की तलाश में इधर से उधर घूमते रहते हैं। नदी-घाटियों और डेल्टा प्रदेशों में लोग निर्वाह कृषि करते हैं। निर्वाह कृषि में खाद्यान्नों की प्रति हैक्टर उपज अधिक होती है। अतः इससे बड़ी जनसंख्या का निर्वाह हो जाता है। औद्योगिक प्रदेशों में उद्योगों और नगरों के विकास के द्वारा जनसंख्या के उच्च घनत्व का निर्वाह होता है; क्योंकि यहाँ बड़ी संख्या में लोगों को उद्योगों, परिवहन, संचार और अन्य सेवाओं में रोजगार मिल जाता है।

यद्यपि आस्ट्रेलिया, उत्तर अमेरिका और दक्षिण अमेरिका के भागों में भी अनुकूल भौतिक पर्यावरण पाया जाता है, लेकिन जनसंख्या विरल है, क्योंकि ये प्रदेश हाल ही में यूरोप से आए लोगों के द्वारा आबाद किए गए हैं। रूस में साइबेरिया, अर्जेंटाइना, ब्राजील और आस्ट्रेलिया के कुछ भागों में विरल जनसंख्या है, क्योंकि ये क्षेत्र दुर्गम हैं। राजनीतिक कारक जैसे कठोर आप्रवासन नीति भी विशाल क्षेत्रों में आबाद नहीं होने देते, भले ही, उनमें बड़ी संख्या में लोगों का निर्वाह करने की क्षमता हो।

जनसंख्या की वृद्धि

जनसंख्या के वितरण का वर्तमान प्रारूप अनेक शताब्दियों की जनसंख्या वृद्धि तथा उसके विस्तार का प्रतिफल है। मानव इतिहास के प्रारंभिक कालों में जनसंख्या की वृद्धि बहुत धीमी थी। भोजन की कमी, प्रतिकूल पर्यावरण तथा बीमारियों के कारण मृत्यु दर बहुत ऊँची थी, जिससे उच्च जन्म दर का संतुलन हो जाता था। जनसंख्या या तो स्थिर रही या महामारियों और भूखमरी के कारण घटती रही।

कृषि में विकास के द्वारा भोजन की आपूर्ति सुनिश्चित हो गयी थी। भूमि की सफाई तथा जुताई आदि कृषि कार्यों के लिए बड़ी संख्या में लोगों की आवश्यकता होती थी। सुनिश्चित भोजन आपूर्ति तथा व्यवस्थित जीवन की सुविधाओं से मृत्यु दर धीरे-धीरे घट गयी, जबकि जन्म दर ऊँची ही बनी रही। फिर भी

जनसंख्या धीमी गति से बढ़ी क्योंकि लोग नए क्षेत्रों में जाकर बसते रहे तथा और अधिक भूमि पर खेती की जाने लगी। ईसवी सन् के प्रारंभ में संसार की कुल जनसंख्या लगभग 30 करोड़ थी।

यूरोप में औद्योगिक क्रांति के समय तक संसार की जनसंख्या धीमी गति से बढ़ती रही। औद्योगिक क्रांति के बाद यूरोप के लोग उत्तर अमेरिका, दक्षिण अमेरिका, आस्ट्रेलिया और अफ्रीका में बसने लगे। इसके साथ ही चिकित्सा के क्षेत्र में हुई उन्नति से प्लेग, चेचक, मलेरिया और अन्य जानलेवा बीमारियों पर काबू पा लिया गया। अच्छी चिकित्सा सुविधाओं, स्वच्छ जल आपूर्ति, स्वास्थ्य तथा अन्य रोग निरोधक उपायों द्वारा मृत्यु दर धीरे-धीरे कम होने लगी। परिणामस्वरूप जनसंख्या की वृद्धि दर बढ़ गयी और सन् 1850 में संसार की कुल जनसंख्या बढ़कर 100 करोड़ हो गयी।

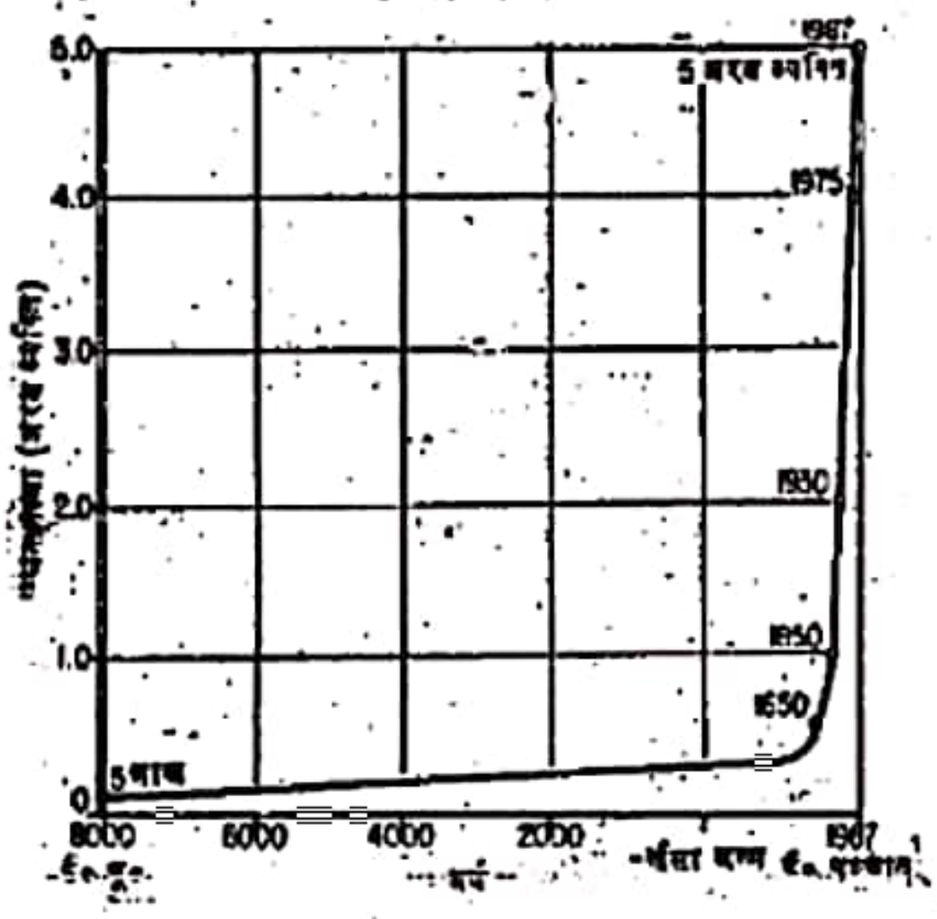

7.2 संसार में जनसंख्या की वृद्धि.
ध्यान दीजिए कि पिछले कुछ दशकों में जनसंख्या तेजी से बढ़ी है जिससे आरेख में वक्र का रूप कुछ कुछ सीधी खड़ी रेखा जैसा हो गया है।

उत्तर अमेरिका, दक्षिण अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में जाकर भी लोग बसने लगे। इस प्रकार प्रवास द्वारा भी जनसंख्या में वृद्धि हुई। चीन और भारत जैसे एशिया के देशों में चिकित्सा सुविधा मिलने से मृत्यु दर में तेजी से कमी आ गई। परिणामस्वरूप बीसवीं शताब्दी में जनसंख्या में अधिक वृद्धि हुई। सन् 1930 में संसार की जनसंख्या 2 अरब हो गई। सन् 1930 के बाद तो जनसंख्या की वृद्धि दर और भी तेज हो गई और सन् 1975 में जनसंख्या बढ़कर 4 अरब हो गई। इसके बाद तो डेढ़ अरब लोग अगले सालों में ही बढ़ गए तथा सन् 1992 में संसार की जनसंख्या बढ़कर 5.5 अरब तक पहुँच गई। ऐसा अनुमान है कि सन् 2000 तक संसार की जनसंख्या 6 अरब हो जाएगी।

किसी क्षेत्र की जनसंख्या तब बढ़ती है, जब जन्म दर मृत्यु दर से अधिक होती है। प्रति हजार जनसंख्या पर होने वाले जन्म और मृत्यु को क्रमशः जन्म दर और मृत्यु दर कहते हैं। उत्प्रवास की अपेक्षा आप्रवास के अधिक होने से भी जनसंख्या में वृद्धि होती है। किसी देश में बाहर से आकर बसने को आप्रवास और वहाँ से बाहर जाकर बसने को उत्प्रवास कहते हैं। उदाहरण के लिए इथोपिया में जन्मदर 49/1000 और मृत्यु दर 18/1000 है। इस प्रकार वार्षिक वृद्धि 31/1000 या 3.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष है। वार्षिक वृद्धि दर प्रतिशत में व्यक्त की जाती है। यदि वार्षिक वृद्धि दर 2 प्रतिशत हो तो 35 वर्षों में जनसंख्या दुगुनी हो जाती है। 0.5 प्रतिशत की वृद्धि दर से स्वीडन की जनसंख्या को दुगुनी होने में कितने वर्ष लगेंगे? संपूर्ण संसार के लिए औसत जन्म दर 26.0 प्रति हजार है तथा मृत्यु दर 9 प्रति हजार है और वार्षिक वृद्धि दर 1.4 प्रतिशत है (परिशिष्ट III)।

जनसंख्या वृद्धि में प्रादेशिक भिन्नता

जनसंख्या वृद्धि के आधार पर संसार को दो प्रमुख प्रदेशों में बाँटा जा सकता है। यूरोप और उत्तर अमेरिका के देश तथा रूस आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और जापान जैसे विकसित देशों में जनसंख्या की वार्षिक वृद्धि दर 1 प्रतिशत से कम है।इन देशों में जन्म दर और मृत्यु दर दोनों ही कम हैं। स्वीडन और स्विटजरलैंड में मृत्यु दर, जन्म दर से थोड़ी सी ज्यादा है। अतः यहाँ जनसंख्या घट रही है। विकसित देशों में मृत्यु दर के साथ-साथ जन्म दर में कमी आई है।

एशिया, लैटिन अमेरिका और अफ्रीका के विकासशील देशों में वार्षिक वृद्धि दर 2 प्रतिशत से अधिक हैं। इन देशों में जन्म दर अधिक तथा मृत्यु दर कम है। अफगानिस्तान में सबसे अधिक वार्षिक वृद्धि दर 5.3 प्रतिशत है। इन देशों में चिकित्सा की अच्छी सुविधाओं के कारण मृत्यु दर में तो कमी आ गई, लेकिन जन्म दर ऊँची ही बनी रही। विगत कुछ वर्षों में संसार के सबसे अधिक जनसंख्या वाले देश चीन (122.2 करोड़, 1994) ने अपनी जन्म दर काफी घटा ली है। परिणामस्वरूप वार्षिक वृद्धि दर केवल 1.3 प्रतिशत रह गई है। जनसंख्या की दृष्टि से संसार में भारत दूसरा बड़ा देश है। यहाँ वार्षिक वृद्धि दर लगभग 1.9 प्रतिशत है।

विकासशील देशों की जनसंख्या में तेजी से वृद्धि होने के कारण उनके पर्यावरण पर बुरा प्रभाव पड़ा है। अफ्रीका के कुछ भागों में वनों के विनाश, मृदा अपरदन तथा जल स्तर के नीचे चले जाने के कारण खाद्यान्नों की उपज कम हो गई है तथा जलाऊ लकड़ी का अभाव हो गया है। यहाँ के कुछ देशों को अभूतपूर्व भयंकर सूखे और भूखमरी का सामना करना पड़ रहा है। इन देशों को खाद्यान्नों और आर्थिक सहायता की जरूरत है क्योंकि इनके पास खाद्यान्नों को आयात करने के लिए धन ही नहीं है। विदेशी सहायता के अभाव में यहाँ बीमारियों और कुपोषण के कारण मृत्यु दर में वृद्धि की आशंका है।

एशिया, लैटिन अमेरिका और अफ्रीका के विकासशील देशों में वार्षिक वृद्धि दर 2 प्रतिशत से अधिक हैं। इन देशों में जन्म दर अधिक तथा मृत्यु दर कम है। अफगानिस्तान में सबसे अधिक वार्षिक वृद्धि दर 5.3 प्रतिशत है। इन देशों में चिकित्सा की अच्छी सुविधाओं के कारण मृत्यु दर में तो कमी आ गई, लेकिन जन्म दर ऊँची ही बनी रही। विगत कुछ वर्षों में संसार के सबसे अधिक जनसंख्या वाले देश चीन (12.5 करोड़, 1998) ने अपनी जन्म दर काफी घटा ली है। परिणामस्वरूप वार्षिक वृद्धि दर केवल .9 प्रतिशत रह गई है। जनसंख्या की दृष्टि से संसार में भारत दूसरा बड़ा देश है। यहाँ वार्षिक वृद्धि दर लगभग 1.6 प्रतिशत है।

जनसंख्या और खाद्य आपूर्ति

पारितंत्र में मनुष्यों के कार्यों की विवेचना हम पहले ही कर चुके हैं। मनुष्य पारिस्थितिक पिरामिड के शीर्ष पर है। पिछले कुछ दशकों में जनसंख्या में तेजी से वृद्धि के कारण पिरामिड के शीर्ष पर संख्या बढ़ गई है। पारिस्थितिक क्षमता सामान्यतः 10 प्रतिशत है और भूमि का क्षेत्र भी सीमित है। अतः भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता जा रहा है।

खाद्यान्नों के लिए सौर ऊर्जा के उपयोग का सबसे सीधा तरीका आज भी खेती ही है। हम पहले ही पढ़ चुके हैं कि प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया में सौर ऊर्जा तथा अजैव पोषकों का

उपयोग करके पौधे रासायनिक ऊर्जा का उत्पादन करते हैं। रासायनिक ऊर्जा की उत्पादन दर को प्राथमिक उत्पादकता कहते हैं।

किसी पारितंत्र की प्राथमिक उत्पादकता उस प्रदेश के भौतिक पर्यावरण से संबंधित है। (परिशिष्ट-V) गहरे महासागरों और मरुस्थलों में प्राथमिक उत्पादकता कम होती है। घास भूमियों की तुलना में वनों की उत्पादकता अधिक है। मध्य-अक्षांशीय तथा ध्रुवीय प्रदेशों की अपेक्षा विषुवतीय तथा उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों की उत्पादकता भी ज्यादा है। उथले सागरों, झीलों, दलदलों, ज्वारनदमुखों और तटीय मैदानों की उत्पादकता सबसे अधिक है।

गेहूँ और चावल जैसी फसलों की खेती की उत्पादकता कम है, क्योंकि इनके वर्धन काल की अवधि छोटी है। गन्ने का वर्धनकाल अपेक्षाकृत लंबा है अत: गन्ने की प्राथमिक उत्पादकता चावल से अधिक है। एक ही खेत में विभिन्न ऋतुओं में कई फसलों को उगाने तथा दो या तीन फसलों को क्रमश: विभिन्न पंक्तियों में उगाने से उसकी प्राथमिक उत्पादकता बढ़ जाएगी।

जैव दृष्टि से कृषि भूमि की तुलना में वनों में उत्पादकता अधिक है, क्योंकि वनों में बहुवर्षी वनस्पति का आवरण है। अत: बहुवर्षी वृक्षों का रोपण परंपरागत फसलों की तुलना में अधिक खाद्य उत्पादक सिद्ध हो सकता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि पौधों से नए ढंग के खाद्य पदार्थों का विकास कर लिया जाए और लोगों की भोजन की आदतों में भी परिवर्तन हो जाए। ऐसे बहुवर्षी पौधों के सुनियोजित उपयोग के द्वारा भविष्य में खाद्य आपूर्ति का अक्षय स्रोत मिल जाएगा।

भेड़ों, मुर्गी आदि जीवों से होने वाली खाद्य आपूर्ति, खाद्य शृंखला में द्वितीय स्तर को प्रदर्शित करती है। जीवों की खाद्य पदार्थों की उत्पादन क्षमता, सामान्यत: पौधों के द्वारा प्राथमिक उत्पादन की लगभग 10 प्रतिशत है। जीव जंतु अपने भोजन के रूप में पौधों का भारी मात्रा में उपभोग करते हैं लेकिन पौधों का 10 प्रतिशत भाग ही वे अपने शरीर की वृद्धि में उपभोग कर पाते हैं। उदाहरण के लिए यदि एक पशु 100 किलोग्राम घास खाता है, तो इससे उसके शरीर के भार में केवल 10 किलोग्राम की वृद्धि होती है। यह हिसाब लगाया गया है कि यदि एक पशु को एक टन घास खिलाई जाए तो उससे 120 दिन में 110 किलोग्राम मांस मिलेगा। इसके विपरीत यदि उतनी ही घास 300 खरगोशों को खिलाई जाए तो उनसे 30 दिन में 110 किलोग्राम मांस मिल सकता है। इस प्रकार खरगोश, पशुओं की तुलना में एक चौथाई समय में मांस की उतना ही मात्राकाउत्पादन कर सकते हैं। मुर्गा 6.3 किलोग्राम अनाज खाकर एक किलोग्राम मांस का उत्पादन करता है। दुधारू पशुओं द्वारा दूध के उत्पादन तथा मुर्गियों द्वारा अंडों के उत्पादन में भारी मात्रा में पेड़ पौधों से प्राप्त खाद्य-पदार्थों का उपभोग किया जाता है।

इस प्रकार, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि यदि लोग खाद्यान्नों के स्थान पर जीवों से प्राप्त खाद्य पदार्थों को उपभोग करते हैं, तो उतनी ही जनसंख्या के निर्वाह के लिए अधिक भूमि की आवश्यकता होगी। इसका अर्थ यह है कि जीव-उत्पादों के स्थान पर पौधों के उत्पादों के खाद्य रूप में लेने से अधिक जनसंख्या का भरण-पोषण हो सकेगा। जंतुओं से प्राप्त खाद्य

जैसे मांस, अंडे तथा दुग्ध उत्पादों में खाद्यान्न की तुलना में अधिक प्रोटीन होते हैं। स्वस्थ जीवन के लिए प्रोटीन आवश्यक हैं। प्रोटीन अन्य स्रोतों जैसे पौधों की पत्तियों, दालों तथा पौधों के अन्य उत्पादों से भी प्राप्त किए जा सकते हैं। आज मनुष्य की प्रोटीन की आवश्यकता का 75 प्रतिशत भाग अनाजों, सब्जियों तथा पौधों की फलियों से प्राप्त होता है। प्रोटीन का केवल 25 प्रतिशत भाग जंतु उत्पादों से मिलता है। जंतुओं से प्राप्त खाद्य पदार्थों का अधिक मात्रा में उपभोग वांछनीय भी नहीं है, क्योंकि इससे शरीर के ऊतकों में बहुत अधिक वसा इकट्ठी हो जाती है। इस तथ्य की जानकारी के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका में मांस का वार्षिक उपभोग 43 किलोग्राम प्रति व्यक्ति (1976) से घटकर अब काफी कम हो गया है। यह संभव नहीं दिखता कि मनुष्य जंतु उत्पादों का पूरी तरह परित्याग करके शुद्ध शाकाहारी बन जाएगा। यही नहीं, जंतु कुछ ऐसी भूमि से भी अपना आहार प्राप्त करते हैं, जो कृषि के योग्य नहीं है। वे पौधों के उन अवशेषों का भी उपभोग करते हैं, जिनका उपभोग मनुष्य प्रत्यक्ष रूप में नहीं कर सकता।

पारिसंत्र में ऊर्जा के प्रवाह की जानकारी से मनुष्य पौधों और जंतुओं के ऊतकों के निर्माण के लिए सौर ऊर्जा का अधिकतम उपयोग कर सकेगा। तेजी से बढ़ने वाले पौधों तथा जंतुओं से एक साल में अधिक खाद्य सामग्री मिल सकती है। चरागाहों में पशुओं को चराकर पालने की अपेक्षा उन्हें पशुशालाओं में बाँधकर खिलाना अधिक लाभकारी होता है। मांस के लिए पाले जाने वाले पशुओं के बारे में यह जानना आवश्यक है कि कितने समय में प्रत्येक पशु के शरीर का अधिकतम भार होता है। उस अवधि के पूरा होने के तुरंत बाद उन्हें मारकर मांस प्राप्त करना लाभदायक होगा। पशुओं को लंबे समय तक खिलाकर पालने से भोजन के अनुपात में उनके शरीर का भार नहीं बढ़ता है।

महासागर खाद्य पदार्थों के बहुत बड़े स्रोत हैं, लेकिन मनुष्य ने उनका पूरा उपयोग नहीं किया है। स्थल की अपेक्षा महासागरों में प्राथमिक उत्पादकता ज्यादा है। सूक्ष्म काई प्राथमिक उत्पादक हैं। इन्हें अत्यंत छोटे शाकाहारी प्राणी तथा घोंघा और मछलियाँ खाती हैं। ये महासागरों के प्राथमिक उपभोक्ता हैं। बड़ी मछलियाँ इन शाकाहारी प्राणियों को अपना आहार बनाती हैं। समुद्री-पारितंत्र के सावधानीपूर्वक अध्ययन से मनुष्य के लिए प्रचुर भोजन सामग्री के स्रोतों का पता चल सकता है। ये स्रोत महाद्वीपीय निमग्नतट के उथले सागरों तथा ज्वारनदमुखों में अधिक हो सकते हैं।

झीलों, तालाबों, नदियों तथा अन्य अंतःस्थलीय जलाशयों की उत्पादकता, उनमें पोषक तत्व मिलाने से बहुत अधिक होती है। दक्षिण चीन के भागों में मछली का उत्पादन प्रति हैक्टर 1000 किलोग्राम से अधिक है। छोटे तालाबों और धान के खेतों में भी मछलियाँ पाली जा सकती हैं।

सन् 1950 में संसार का खाद्यान्नों का उत्पादन 62.4 करोड़ मीट्रिक टन था, जो बढ़कर 1989 में 188.7 करोड़ मीट्रिक टन हो गया। संपूर्ण संसार की दृष्टि से सन् 1989 में खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति उपलब्धि लगभग 360 किलोग्राम थी। यद्यपि संसार में खाद्य-सामग्री की उपलब्धि दर ज़नसंख्या की वृद्धि दर से ज्यादा रही है, लेकिन ऐसा अनुमान है कि लगभग 50

करोड़ लोग चिंताजनक कुपोषण से पीड़ित हैं। स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरों को रोकने तथा शरीर के समुचित विकास के लिए व्यक्ति को, जितनी कैलोरी चाहिए, उनका 80 प्रतिशत से भी कम ही उन्हें मिल पाता है। अफ्रीका के देशों में खाद्य पदार्थों की कमी गंभीर रूप धारण कर रही है। अफ्रीका में अनाज का प्रति व्यक्ति उपभोग केवल 180 किलोग्राम है। इसके विपरीत संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रति व्यक्ति 800 किलोग्राम अनाज का उपभोग किया जाता है। बढ़ती हुई जनसंख्या की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए खाद्यान्नों का भी उत्पादन बढ़ाना ज़रूरी है।

ऐसा अनुमान है कि संसार के कुल भूमि क्षेत्र का लगभग 30 प्रतिशत या 400 करोड़ हैक्टर भूमि कृषि के योग्य है। शेष भूमि भाग या तो बहुत ठंडा है या बहुत सूखा है या बहुत ऊबड़-खाबड़ है या किन्हीं अन्य कारणों से खेती के अयोग्य है। खेती योग्य भूमि के लगभग आधे भाग में ही वस्तुतः खेती होती है। शेष भाग में चरागाह, घास भूमि या वन हैं। संसार की खेती के काम आने वाली भूमि का आधे से कुछ ही ज्यादा हिस्सा विकासशील देशों में है, लेकिन इस पर संसार की 75 प्रतिशत जनसंख्या आश्रित है। संसार में एक व्यक्ति के हिस्से में एक तिहाई हैक्टर से कम बोई गयी भूमि आती है। विकसित देशों में आधे हैक्टर से अधिक बोई गई भूमि प्रति व्यक्ति उपलब्ध है। विगत कुछ दशकों में, बोई गई भूमि के क्षेत्रफल में केवल 0.1 प्रतिशत की दर से विस्तार हुआ है। अतः खेती के उपयोग में आने वाली भूमि के क्षेत्रफल में विस्तार की संभावनाएँ कम ही हैं।

बोई गई भूमि की उत्पादकता बढ़ाने की संभावनाएँ बहुत हैं। सन् 1950 के बाद संसार के अनाज उत्पादन में जो वृद्धि हुई है, उसका 70 प्रतिशत भाग प्रति हैक्टर उपज के बढ़ने से मिला है। हरित क्रांति से उपज में वृद्धि हुई है। किसानों द्वारा उत्तम बीजों, उर्वरकों और कीटनाशकों, सिंचाई के साधनों तथा सुधरे हुए औजारों के उपयोग द्वारा उपज बढ़ाने को हरित क्रांति का नाम दिया गया है। विशाल जनसंख्या वाले देश चीन और भारत, खाद्यान्नों के उत्पादन में आत्मनिर्भर हो गए हैं। संसार में अनाज की औसत उपज 2.5 मीट्रिक टन प्रति हैक्टर है। जापान एक हैक्टर में 5.8 मीट्रिक टन अनाज पैदा करने में सफल हो गया है। इसके विपरीत अफ्रीका के देशों में अनाज का प्रति हैक्टर औसत उत्पादन दो टन से भी कम है। स्विटज़रलैंड तथा नीदरलैंड विभिन्न कृषि-कार्यों में, ऊर्जा का अधिकाधिक उपयोग करके, अनाज की उपज को ऊँचा बनाए हुए हैं जो 6.8 मीट्रिक टन प्रति हैक्टर है। ऊर्जा का मूल्य अधिक होने के कारण, विकासशील देशों में यह संभव नहीं है।

खनिज ईंधनों से प्राप्त ऊर्जा के उपयोग के अलावा भी उत्पादन बढ़ाने के अन्य उपाय हैं। कृषि में जैव तकनीकी में शोध कार्यों से अनाज और चारे की फसलों की उपज बढ़ सकेगी। पौधों और जंतुओं के अवशेषों को खाद के रूप में उपयोग किया जा सकता है और इससे रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता को कम किया जा सकता है। फुहारों के रूप में पानी छिड़ककर या बूँद-बूँद करके पानी को सीधे पौधों की जड़ों में पहुँचाकर की गई सिंचाई के द्वारा पानी की आवश्यकता को कम किया जा सकता है। इस प्रकार उतने ही पानी से ज्यादा बड़े क्षेत्र को सींचा जा सकता है।

लगभग 25 प्रतिशत अनाज कटाई से पहले खेतों में ही नाशक जीवों द्वारा नष्ट हो जाता है। इन जीवों को मारने वाली दवा के उपयोग से इन नुकसानों को रोका जा सकता है। फसलों की कटाई के बाद भी वितरण, भंडारण तथा व्यापार के दौरान खाद्यान्नों का 25 प्रतिशत भाग नष्ट हो जाता है। खुले भंडारण के स्थान पर, चूहों द्वारा अभेद्य भंडारघरों में, अनाज का भंडारण करके अनाज की बर्बादी को रोका जा सकता है। अनाज के संसाधन के समय भी कुछ बर्बादी होती है। उदाहरण के लिए कारखानों में धान की कुटाई के समय चावल का कुछ भाग नष्ट हो जाता है। पौधों और जंतुओं की उत्पादकता बढ़ाने के उपायों के साथ साथ, ऐसी हानियाँ भी रोकी जानी चाहिए, तभी संसार में खाद्यान्न की प्रति व्यक्ति अधिक उपलब्धि सुनिश्चित हो सकेगी।

अफ्रीका, लैटिन अमेरिका तथा एशिया के लगभग 100 देश, दूसरे देशों से खाद्यान्नों के आयात पर निर्भर हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका, अर्जेंटाइना, आस्ट्रेलिया और कनाडा, खाद्यान्नों के प्रमुख निर्यातक देश हैं। विगत कुछ वर्षों मे पूर्व सोवियत संघ में भी खाद्यान्नों की कमी हुई है। चीन, भारत और पश्चिमी यूरोप के कुछ देश सामान्य वर्षा में खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर हैं। सूखा और बाढ़ तथा नाशक जीवों और बीमारियों जैसी प्राकृतिक विपत्तियों के द्वारा हुए विनाश से इन देशों में कभी-कभी अभाव की दशाएँ पैदा हो जाती हैं।

संसार के सभी लोग एक सुखी परिवार के रूप में नहीं रहते हैं। राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक कारणों से सभी राष्ट्र एक दूसरे से अलग-थलग हैं। इन्हीं कारणों से कुछ राष्ट्रों में उपभोग से बचा हुआ प्रचुर खाद्यान्न, अभावग्रस्त राष्ट्रों तक नहीं पहुँच पाता। खाद्यान्नों की कमी वाले, कुछ संपन्न राष्ट्र जैसे साऊदी अरब सिंगापुर और लीबिया खाद्यान्नों के आयात का मूल्य चुकाने में समर्थ हैं। इसके विपरीत इथोपिया, माली, मौरीतानियाँ और चाड जैसे अफ्रीकी देश खाद्यान्नों के आयात का मूल्य चुकाने में सर्वथा असमर्थ हैं। ऐसे देशों को, दूसरे देशों से मिलने वाली, खाद्यान्नों की सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने "विश्व खाद्य बैंक" बनाने का प्रस्ताव रखा है, जिसके द्वारा इस प्रकार की सहायता दी जा सके। पर्यावरण से भोजन की आवश्यकताओं को पूरा करने का मनुष्य का संघर्ष उतना ही पुराना है जितना कि वह स्वयं है। खाद्य समस्याओं का समाधान केवल पारिस्थितिक प्रक्रियाओं के समझने पर ही नहीं, अपितु संसार के राष्ट्रों की आपसी समझ पर भी निर्भर करता है, ताकि वे उपलब्ध खाद्यान्नों को बाँट कर खा सकें। ऐसा होने पर ही संसार से भूख को मिटाया जा सकता है।

स्वाध्याय

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए—
   (1) संसार में सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश कौन सा है?
   (2) "जनसंख्या के घनत्व" से क्या तात्पर्य है?
   (3) संसार के कुछ भागों में जनसंख्या के कम घनत्व के कारणों की व्याख्या कीजिए।
   (4) सन् 1850 के बाद संसार की जनसंख्या की वृद्धि का विवरण लिखिए.
   (5) भूमि के किसी दिए गए क्षेत्र में शुद्ध शाकाहारी भोजन के द्वारा अधिक जनसंख्या का निर्वाह कैसे हो सकता है? व्याख्या कीजिए।
   (6) खाद्यान्नों की कमी वाले देशों के नाम लिखिए।
2. अंतर स्पष्ट कीजिए —
   (1) जन्म दर और वृद्धि दर।
   (2) आप्रवास और उत्प्रवास।
3. संसार में जनसंख्या के वितरण का वर्णन कीजिए।
4. सन् 1850 से पहले तथा उसके बाद हुई संसार की जनसंख्या की वृद्धि की विषमताओं का विवरण दीजिए।
5. विकासशील और विकसित राष्ट्रों की जनसंख्या वृद्धि की विषमताओं का वर्णन कीजिए।

स्वयं करें और खोजें

1. अपने गाँव या नगर के 1901 की जनगणना से लेकर 1981 की जनगणना तक के जनसंख्या के आंकड़े इकट्ठे कीजिए।
2. रैखिक-आरेख बनाकर जनसंख्या वृद्धि का वर्णन कीजिए।
3. उन विभिन्न स्रोतों को नोट कीजिए जिनसे भोजन की विभिन्न वस्तुएँ प्राप्त की जाती हैं।
4. परिशिष्ट में दिए गए, अल्जीरिया और आस्ट्रेलिया से संबंधित जनसंख्या के आंकड़ों का अध्ययन कीजिए तथा उनकी विभिन्नताओं पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिए।

पठनीय पुस्तकें

1. गोह चेंग लियोंग : *सर्टिफिकेट फिजीकल एण्ड ह्यूमन ज्याग्रफी*, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

2. जोसेफ एम. मोरान एण्ड अदर्स	: इंट्रोडक्शन टू इनवायरनमेंटल साइंस, डब्ल्यू.एच फ्रीमैन एण्ड कंपनी, सेन फ्रांसिस्को।
3. जान पी० कोलार्स एण्ड जान डी० निश्चुयेन	: फिजीकल ज्याग्रफी-इनवायरनमेंट एण्ड मैन, मैग्रा हिल, न्यूयार्क।
4. जार्ज डैमको एण्ड अदर्स	: पापुलेशन ज्याग्रफी ए रीडर, मैग्रा हिल बुक कंपनी, न्यूयार्क।

8

मानव व्यवसाय

भोजन प्राप्ति के लिए तथा पृथ्वी पर जीवित रहने के लिए मनुष्य किसी न किसी रूप में कोई न कोई काम अवश्य करता है। पौधे अपनी वृद्धि के लिए मृदा से पोषक तत्व लेते हैं। इन पोषकों को ग्रहण करने के लिए उनकी जड़ें दूर-दूर तक फैल जाती हैं। लेकिन इसके विपरीत जंतुओं को अपने भोजन के लिए स्वयं इधर-उधर घूमना पड़ता है। भोजन के लिए संघर्ष के परिणामस्वरूप उन क्षेत्रों के लिए संघर्ष शुरू हो जाता है, जहाँ से भोजन मिलने की संभावना होती है। बड़े जंतुओं को अपने भोजन की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए, एक बड़े क्षेत्र की जरूरत होती है। मनुष्य की स्थिति अन्य जन्तुओं से कुछ भिन्न है। मनुष्य ने श्रम का विभाजन किया है, ताकि सभी लोग केवल खाद्य पदार्थों के उत्पादन में ही न लगे रहें। इस व्यवस्था में कुछ लोग तो खाद्य पदार्थों के उत्पादन में लग जाते हैं और कुछ समाज की अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, कुछ अन्य काम धंधे करने लगते हैं।

मनुष्य के आर्थिक क्रिया-कलापों को मोटे तौर पर तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—प्राथमिक, गौण और तृतीयक व्यवसाय। कृषि, पशुचारण, लकड़ी काटना, मछली पकड़ना और खनन प्राथमिक व्यवसाय हैं। इन क्रिया-कलापों के द्वारा प्राकृतिक साधनों से, खाद्य पदार्थों, रेशों, इमारती लकड़ी, ईंधन और खनिजों का उत्पादन होता है। पिछले कुछ वर्षों में तकनीकी में उन्नति से प्राथमिक व्यवसायों की उत्पादकता बढ़ गई है। कृषि में ट्रैक्टर तथा अन्य मशीनों के उपयोग से सिंचाई की सुविधाओं से उर्वरकों तथा कीट नाशकों के उपयोग से उपज कई गुनी बढ़ गई है। खेती के पुराने तरीकों की तुलना में अधिक उपज देने वाले विभिन्न बीजों के उपयोग से तथा पशुओं और भेड़ों की संकर नस्लों के द्वारा भी उत्पादन बढ़ा है।

गौण व्यवसाय वे हैं, जिनमें प्राथमिक व्यवसाय के उत्पादों को संसाधित किया जाता है। निर्माण उद्योगों में, कृषि, पशुचारण तथा खनन से प्राप्त कच्चे माल को संसाधित करके, उपयोगी वस्तुएँ बनाई जाती हैं। उदाहरण के लिए, सूती वस्त्रों का निर्माण एक गौण उद्योग है, क्योंकि इसमें सूत तथा कपड़ा बनाने के लिए कपास को संसाधित किया जाता है। गौण व्यवसाय प्राथमिक उत्पादों को पहले से अधिक उपयोगी बना देते हैं।

तृतीयक व्यवसायों में लोगों को दी जाने वाली विभिन्न सेवाएँ शामिल हैं जैसे—शिक्षा, चिकित्सा, परिवहन, व्यापार प्रशासन आदि। ये गाँव और शहरों में समाज की मूल

आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आवश्यक हैं। विभिन्न व्यवसायों में लगे लोग एक दूसरे पर निर्भर हैं। प्राथमिक व्यवसायों में लगे हुए लोग, जनसंख्या की भोजन संबंधी तथा गौण व्यवसायों की कच्चे माल संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। गौण व्यवसायों में लगे हुए मनुष्य समाज के उपयोग के लिए तैयार वस्तुएँ प्रदान करते हैं। तृतीयक व्यवसायी, समाज के लिए अन्य सेवाएँ, जैसे—पीने योग्य जल की आपूर्ति, सफ़ाई और स्वास्थ्य सुविधाएँ, शिक्षा, परिवहन, व्यापार और प्रभावशाली प्रशासन प्रदान करते हैं।

प्रारंभिक काल में मनुष्य केवल प्राथमिक व्यवसायों में ही कार्यरत थे। यूरोप में औद्योगिक क्रांति के पश्चात् शक्ति के सस्ते साधनों के उपलब्ध हो जाने पर, निर्माण उद्योगों का विकास हुआ। विकसित देशों में लोग प्राथमिक व्यवसायों की तुलना में, गौण और तृतीयक व्यवसायों में ज्यादा संख्या में लगे हैं। विकासशील देशों की अधिकतर अर्जक (कमाने वाले) जनसंख्या प्राथमिक व्यवसायों से जुड़ी हैं।

प्राथमिक व्यवसाय

संग्रहण, आखेट और मत्स्य ग्रहण

कुछ प्रदेशों के लोग सादा जीवन बिताते हैं। ऐसे लोग प्रकृति पर पूरी तरह निर्भर रहते हैं। वे अपने भोजन के लिए पौधों से विभिन्न प्रकार के फल, जड़ें और पत्तियाँ इकट्ठी करते हैं। ये इन पदार्थों की खोज में इधर से उधर घूमते रहते हैं। पशु-पक्षियों के आखेट तथा झीलों और नदियों में मछली पकड़कर, ये लोग संग्रहण से प्राप्त अपने भोजन की कमी को ही पूरा नहीं करते, अपितु इन्हें इनसे अतिरिक्त पौष्टिकता भी मिल जाती है। ये लोग शिकार के लिए साधारण हथियारों जैसे—भाले, धनुष-बाण आदि का प्रयोग करते हैं। मछली पकड़ने के लिए जाल तथा अन्य सीधे सादे तरीके उपयोग में लाते हैं। वस्त्रों और मकान बनाने के लिए पास-पड़ोस में उपलब्ध पदार्थों को काम में लाते हैं। ऐसी जनजातियों को अपने प्राकृतिक आवास की पूरी जानकारी होती है और वे अपने पर्यावरण के साथ मित्र भाव से रहते हैं। इनकी सभी आवश्यकताएँ स्थानीय पर्यावरण से पूरी होती हैं, अतः प्रत्येक समुदाय को अपने जीवन निर्वाह के लिए एक बहुत बड़े क्षेत्र की जरूरत पड़ती है।

अफ्रीका के पिग्मी तथा मलेशिया के सेमांग लोग; उष्ण कटिबंधीय वनों में रहते हैं। अफ्रीका के बुशमैन और आस्ट्रेलिया के आदिम लोग उष्ण कटिबंधीय मरुस्थलों में रहते हैं। इनुइट और लैप्स उत्तर ध्रुवीय प्रदेशों में रहते हैं लेकिन आज स्थिति बदल रही है। इनमें से बहुत से समुदाय बड़ी तेज़ी से अपनी जीवन पद्धति में परिवर्तन कर रहे हैं।

पशुपालन

सभ्यता के विकास के चरणों में, पशुपालन भी एक चरण था। विभिन्न प्रकार के पर्यावरणों में रहने वाले लोगों ने, विभिन्न प्रकार के पशुओं को पालतू बनाया था। गाय-बैल, सवाना घास भूमियों में सामान्य रूप से पाले जाते हैं, जबकि ऊँट मरुस्थलों का प्राणी है। स्टेपी-घास भूमियाँ भेड़ पालन के लिए उपयुक्त हैं। रेंडियर, टुण्ड्रा प्रदेश में पाले जाते हैं। एण्डीज के पर्वतीय प्रदेशों में लामा और अल्पाका पाले जाते हैं। तिब्बत और हिमालय के भागों में याक पाले जाते हैं। पालतू पशुओं से मनुष्य को दूध, मांस, ऊन और

खालें मिलती हैं। इनसे मनुष्य की अनेक आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। जो लोग पशु पालते हैं, वे अपने पशुओं के साथ इधर-उधर घूमते रहते हैं। ऐसे लोग **चलवासी** कहलाते हैं, क्योंकि वे चरागाहों और पानी की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते रहते हैं। प्रत्येक चलवासी जाति, एक निश्चित क्षेत्र में रहती है तथा उन्हें अपने उस क्षेत्र में, चरागाहों और जल की आपूर्ति के स्रोतों में, ऋतुओं के अनुसार होने वाले परिवर्तनों की पूरी जानकारी होती है। पर्वतीय प्रदेशों में चरवाहे, ग्रीष्म ऋतु में, अपने पशुओं को चराने के लिए अधिक ऊँचे स्थानों पर ले जाते हैं और शीत ऋतु में घाटियों में उतर आते हैं। इस प्रकार अपने पशुओं के साथ लोगों के ऋतुओं के अनुसार प्रवास को **ऋतु प्रवास** कहते हैं। उदाहरण के लिए हिमालय के पर्वतीय प्रदेश के गूजर, गद्दी, बकरवाल तथा भोटिया ऋतु-प्रवास करते हैं।

पूर्वी अफ्रीका के मसाई और नाइजीरिया के फुलानी पशु पालते हैं। उनकी संपत्ति की माप उनके पशुओं की संख्या के द्वारा की जाती है। सहारा मरुस्थल में यद्दू लोग अपने ऊँटों और बकरियों के साथ चरागाहों की खोज में घूमते रहते हैं। मध्य एशिया के खिरगीज अपने पशुओं के साथ ग्रीष्म ऋतु में मैदानी भागों को छोड़कर पहाड़ी ढालों पर चले जाया करते थे, परन्तु अब वहाँ विकास हो जाने के कारण परिस्थितियाँ बदल गई हैं। सभी चलवासी जातियाँ तंबुओं में रहती हैं और कठोर जीवन बिताती हैं। भूमि की निर्वाह क्षमता कम होने के कारण, यहाँ जनसंख्या भी कम ही है। परिवहन और संचार की सुविधाओं के विकास के बाद ये चलवासी, अपने पशु-उत्पादों को कृषि उत्पादों तथा उद्योगों में बनी वस्तुओं से बदल लेते हैं। अब कुछ चलवासी जातियाँ दूसरे क्षेत्रों में जाकर स्थायी रूप से रहने लगी हैं।

आधुनिक युग में पशुपालन वैज्ञानिक तरीकों से व्यापारिक आधार पर हो रहा है। **व्यापारिक पशुचारण** उद्योग पूरी तरह से प्राकृतिक चरागाहों पर आश्रित नहीं है। विस्तृत क्षेत्रों में चारे की फसलों और पौष्टिक घासों की खेती की जाती है। पशुओं को सुख-सुविधा-संपन्न, मकानों में रखकर खिलाया-पिलाया जाता है। विशेष नस्ल के पशुओं को पाला जाता है, जिनकी दूध या मांस उत्पादन क्षमता बहुत अधिक होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा अर्जेंटाइना में पशुओं के बड़े-बड़े फार्म (रैंच) हैं। इनमें मांस के लिए पशु पाले जाते हैं। डेनमार्क तथा न्यूजीलैण्ड में बड़े पैमाने पर दुग्ध व्यवसाय होता है। आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड में भेड़ें, ऊन तथा मांस के लिए, व्यापारिक स्तर पर पाली जाती हैं। व्यापारिक पशुचारण में लोगों को प्रवास नहीं करना पड़ता। वे एक ही स्थान पर रहते हैं। चारे की फसलों की खेती तथा दूध और मांस से संसाधित पदार्थ बनाने के लिए मशीनों का खूब प्रयोग होता है। पशु-उत्पादों का व्यापार अंतर्राष्ट्रीय है।

कृषि

कृषि एक बहुप्रचलित व्यवसाय है। कृषि के लिए सबसे पहले भूमि से वनस्पति को साफ करना पड़ता है। इसके बाद जुताई करके, चुने हुए पौधों की खेती की जाती है, जिनसे मनुष्य की भोजन, रेशों या अन्य उत्पादों की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। कृषि के सबसे प्राचीन रूप को **स्थानांतरी कृषि** कहते हैं। स्थानांतरी

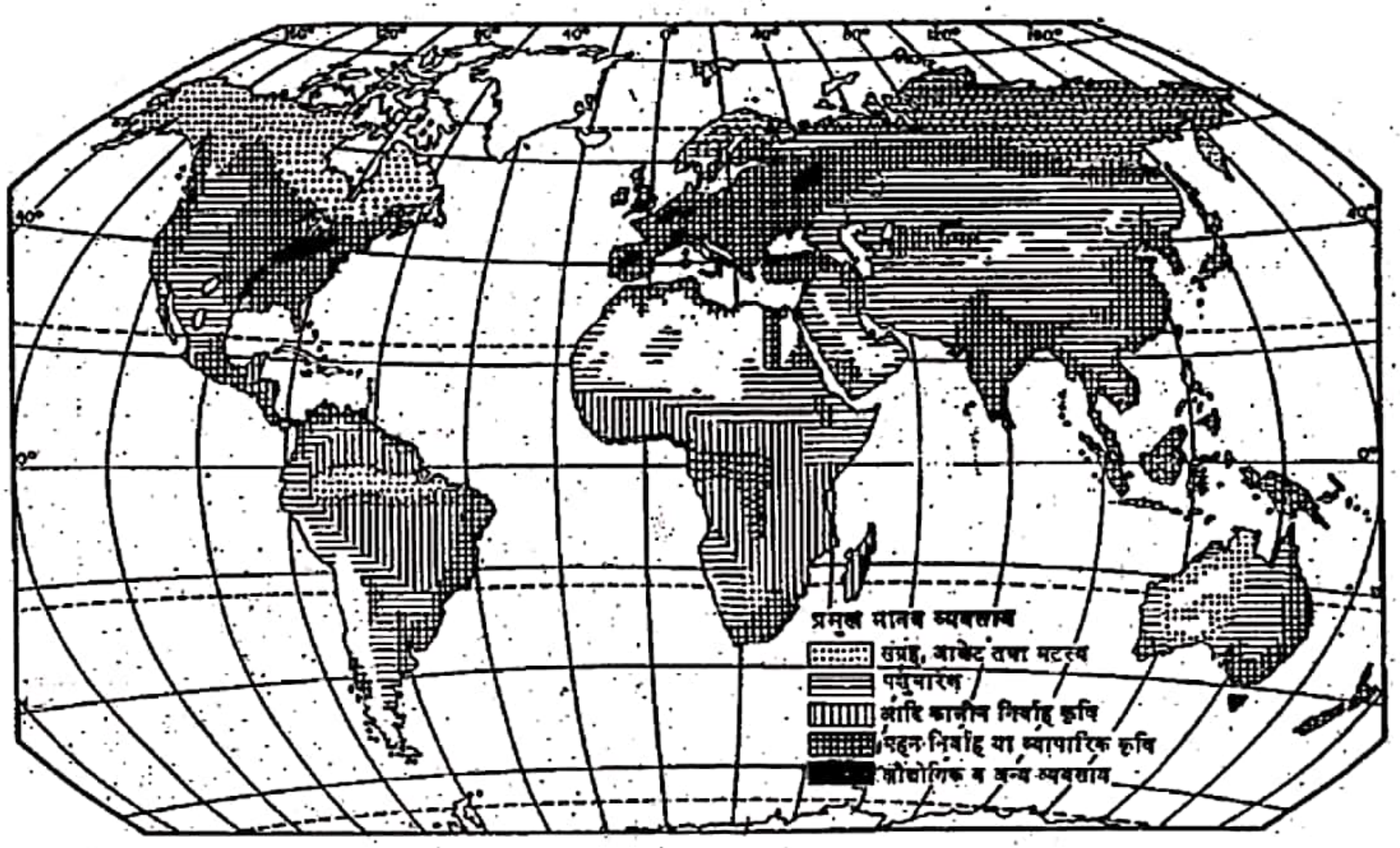

8.1 प्रमुख मानव व्यवसाय

उन देशों की सूची बनाइए जिनमें लोगों के मुख्य व्यवसाय प्राथमिक, गौण तथा तृतीयक हैं।

कृषि अधिकतर उष्ण कटिबंधीय वनों में रहने वाले लोगों द्वारा की जाती है। वे वनों में पेड़-पौधों को काटकर जला देते हैं। इस प्रकार वन भूमि साफ हो जाती है। वे कुदाल की मदद से रतालू, मैनिआक, टैपिओका आदि जड़ वाली फसलें उगाते हैं। जड़ वाली फसलों की उपज की मात्रा अधिक होती है, जिन्हें लंबी अवधि तक रखा जा सकता है और वे खराब भी नहीं होतीं। स्त्रियाँ खेती की देखभाल करती हैं और पुरुष भोजन संग्रह, आखेट तथा मछली पकड़ने में लगे रहते हैं।

वन भूमि के साफ किए गए भागों को, दो या तीन साल तक खेती करने के बाद, छोड़ना पड़ता है, क्योंकि उसमें बहुत ही जल्दी खरपतवार और अनावश्यक पेड़-पौधे फिर उग आते हैं। मृदा के अनुपजाऊ हो जाने से, खर-पतवारों के उगने से तथा मृदा अपरदन से जड़ वाली फसलों की उपज भी काफी कम हो जाती है। परिणामस्वरूप लोग उस क्षेत्र को छोड़कर चले जाते हैं और अन्यत्र वन भूमि का दूसरा टुकड़ा साफ कर लेते हैं। स्थानांतरी कृषि की इस प्रक्रिया में मूल वनों का स्थान कम घने, गौण वन ले लेते हैं। इस प्रकार की कृषि में एक छोटे से समुदाय के निर्वाह के लिए, विशाल क्षेत्रों की आवश्यकता होती है। उत्तर-पूर्वी भारत की जनजातियाँ, मलेशिया के सेमांग तथा अमेजन बेसिन की जनजातियां स्थानांतरी कृषि में लगी हैं।

वन-उत्पादों, खनिजों तथा दूसरे उत्पादों की माँग बढ़ने के साथ ही वन-प्रदेशों तक परिवहन सुविधाओं का विस्तार किया गया है। परिणामस्वरूप अब ये वनवासी जनजातियाँ बाहरी दुनिया के संपर्क में आने लगी हैं। स्थानांतरी कृषि के लिए उपलब्ध भूमि घट रही है, क्योंकि बाहरी लोग, खनिज निकालने तथा अन्य उद्देश्यों से वहाँ पहुँच कर उनकी भूमि पर कब्जा करने लगे हैं। आस्ट्रेलिया के आदिवासी तथा उत्तर अमेरिका के मूल इंडियन समुदायों की संख्या इसी कारण घट गई है। कुछ अन्य लोगों ने स्थायी जीवन बिताना शुरू कर दिया है। बाह्य संपर्क से धीरे-धीरे जनजाति के लोगों की जीवन पद्धति ही बदलती जा रही है।

मानव सभ्यता के विकास में, स्थायी कृषि, एक महत्वपूर्ण चरण था। इससे स्थायी बस्ती बसाने को प्रोत्साहन मिला, क्योंकि आसपास ही खेतों में वर्ष भर काम रहता था। प्रत्येक ऋतु में, चुनी हुई फसलों की खेती करने के लिए ऋतुओं की दशाओं का सावधानीपूर्वक अध्ययन जरूरी था। भूमि को साफ करने, मिट्टी की जुताई उपलब्ध जल का सावधानीपूर्वक सिंचाई द्वारा उपयोग तथा फसल काटने के लिए गाँव में रहने वाले लोगों का सहयोग आवश्यक हो गया था। अतिरिक्त भोजन सामग्री उपलब्ध होने के कारण, एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने की, कोई आवश्यकता नहीं रह गई थी। फसलों से प्राप्त भूसे या पुआल आदि से पालतू पशुओं को चारा मिल जाता था। पशुओं का खेतों की जुताई तथा कृषि के अन्य कार्यों में उपयोग किया जाता था।

इस प्रकार एक प्रभावशाली संगठन बन गया। अतिरिक्त खाद्यान्न, उन लोगों के हिस्से में आता था, जो समुदाय की किसी न किसी रूप में सेवा करते थे। समुदाय की सहायता करने वालों में पुरोहित, शिक्षक, वैद्य, नाई, धोबी आदि मुख्य थे। फसलों की कटाई तथा अगली फसल की बुआई के बीच पर्याप्त खाली समय मिलने लगा।

ऐसे समय में त्यौहार मनाए जाते थे। भूमि की नाप जोख के तरीके जानना, नक्शे बनाना तथा भूमि के स्वामित्व के सही रिकार्ड रखना; भी जरूरी हो गया था। पहिए की खोज के बाद पशुओं को गाड़ी खींचने के क्रम में लाया जाने लगा। अतिरिक्त खाद्यान्न को अन्य उत्पादों से बदलने के लिए गाड़ियों में लाद कर बाहर ले जाया जाने लगा। सड़कों के निर्माण से विभिन्न समुदाय संपर्क में आने लगे, विचारों का आदान-प्रदान शुरू हुआ और इस प्रकार सभ्यता विकसित होने लगी।

कृषि का प्रारंभ निर्वाह कृषि के रूप में हुआ, क्योंकि इससे स्थानीय समुदाय की आवश्यकताएँ तुरंत पूरी हो जाती थीं। पिछले 100 वर्षों में परिवहन तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास के साथ-साथ कृषि में विशिष्टीकरण हो गया है। अधिकतर कृषि कार्यों के लिए मशीनों का प्रयोग करके, विशाल क्षेत्रों में एक फसल की खेती विशेष रूप से होने लगी है। दूसरे देशों को निर्यात करने के लिए कपास, मक्का और गेहूँ की खेती बड़े पैमाने पर होने लगी है। इस प्रकार की कृषि को **व्यापारिक कृषि** के नाम से जाना जाता है। व्यापारिक कृषि से पालतू पशुओं जैसे गाय, बैल, भेड़ों आदि को भी चारा मिल जाता है। **रोपण कृषि**, कृषि का बहुत ही विशिष्टीकृत रूप है। रोपण कृषि के अंतर्गत सैकड़ों हैक्टर भूमि में कहवा, चाय, मसाले और रबड़ की फसलें पैदा की जाती हैं। इन फसलों को मुख्य रूप से निर्यात के लिए ही पैदा किया जाता है। निर्यात से पूर्व इन फसलों को बड़ी-बड़ी फैक्टरियों में संसाधित किया जाता है। रोपण कृषि में भारी मात्रा में पूँजी लगाई जाती है तथा इसमें बहुत बड़ी संख्या में श्रमिकों की आवश्यकता होती है। रोपण कृषि मलेशिया, भारत, श्रीलंका आदि देशों के कुछ भागों में की जाती है।

लकड़ी काटना

लकड़ी काटने के व्यवसाय का व्यापारिक स्तर पर विकास, मुलायम लकड़ी के वृक्षों वाले शंकुधारी वन प्रदेशों में हुआ है। इमारती लकड़ी, लुग्दी, कागज तथा कृत्रिम रेशे बनाने के लिए वनों से लाखों पेड़ काटे जाते हैं। स्वीडन, फिनलैंड, बाल्टिक राज्य, रूस, कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका के विस्तृत क्षेत्रों में शंकुधारी वन हैं। इन देशों के इन वनों में लकड़ी काटने का काम व्यापारिक स्तर पर होता है। पेड़ काटने तथा लट्ठे ढोने के लिए मशीनों का उपयोग किया जाता है। चिराई के कारखाने तथा फैक्टरियाँ लकड़ी के लट्ठों को संसाधित करके लुग्दी और कागज बनाती हैं। इन प्रदेशों में वनों का उपयोग उचित ढंग से योजना बनाकर किया जा रहा है। काटे गए पेड़ों के स्थान पर नए पेड़ों को लगाने का काम साथ-साथ चलता रहता है। इन प्रदेशों में परिवहन की पर्याप्त सुविधाएँ हैं। बड़ी मात्रा में लुग्दी, कागज और अखबारी कागज संसार के अनेक देशों को निर्यात किया जाता है।

उष्ण तथा उपोष्ण कटिबंधी वनों में लकड़ी काटने का व्यवसाय बड़े स्तर पर विकसित नहीं हो पाया है। ये वन प्रदेश सामान्यतः दुर्गम हैं। इन वनों में विभिन्न प्रकार के पेड़ मिलते हैं तथा पेड़ों के नीचे घनी झाड़ियाँ उगती हैं। इन वनों का व्यापारिक दोहन कुछ सुगम्य प्रदेशों तक ही सीमित है। सागौन, महोगनी, चंदन तथा रोजवुड के वृक्ष उष्ण कटिबंधीय वनों में पाए जाते हैं। मध्य अक्षांशीय वनों में बीच, भूर्ज, मैपल और ओक के पेड़ मिलते हैं। इनका उपयोग इमारतों

तथा फर्नीचर बनाने में किया जाता है। भारत, चीन तथा अफ्रीका के घने बसे कुछ देशों में जलाऊ लकड़ी तथा काठ-कोयले की माँग को पूरा करने के लिए पेड़ों, झाड़ियों तथा दूसरे पौधों के आवरण का सफाया हो चुका है। इन प्रदेशों में काटे गए पेड़-पौधों के स्थान पर नए पेड़ लगाने की कोई व्यवस्थित योजना नहीं है। वनों का आवरण हट जाने से मृदा का अपरदन हो रहा है तथा नदियों में भयंकर बाढ़ें आती हैं।

मत्स्य ग्रहण

मध्य अक्षांशों के तटीय प्रदेशों में मछली पकड़ने का काम व्यापारिक स्तर पर विकसित हो गया है। शक्ति चालित नावों तथा जलपोतों के द्वारा मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। बड़े-बड़े जहाज तैरते हुए कारखानों का काम करते हैं, जिनमें पकड़ी हुई मछलियों को संसाधित करके डिब्बों में पैक कर दिया जाता है। जहाज़ों में बने प्रशीतित प्रकोष्ठों (रेफ्रीजरेटेड होल्ड्स) की सुविधा मिलने से मछलियों को संसार के अनेक देशों में निर्यात किया जाता है। जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका, बाल्टिक राज्यों, रूस, यूनाइटेड किंगडम तथा नार्वे में व्यापारिक मत्स्य ग्रहण बड़े पैमाने पर विकसित हो गया है।

खनन

खनिजों का वितरण बहुत असमान है तथा एक खान कुछ ही वर्षों तक आर्थिक रूप से लाभदायक होती है। जब किसी खान में खनिज अयस्क समाप्त हो जाते हैं या खनन आर्थिक दृष्टि से लाभदायक नहीं रहता, तब खनिक खान को छोड़कर चले जाते हैं। खनिक सामान्यतः खानों के पास अस्थायी आवासों में रहते हैं। खनिजों के व्यापारिक दोहन के लिए खान के स्थान के चुनाव को प्रभावित करने वाले अनेक कारक हैं — जैसे अयस्क की गुणवत्ता, भूवैज्ञानिक दशाएँ, खान की गहराई तथा खानों की सुगम्यता। खनन का काम शुरू होने से, परिवहन की सुविधाओं का विकास होने लगता है तथा उस क्षेत्र में लोग बसने के लिए आने लगते हैं। सोने की लालसा, अनेक लोगों को कैलिफोर्निया तथा आस्ट्रेलिया तक खींच ले गई थी। यद्यपि आज खनन के लिए शक्तिचालित उपकरणों का प्रयोग किया जाता है, लेकिन फिर भी खनिकों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। गहरी खानों में तो कठिनाइयाँ और भी अधिक बढ़ जाती हैं। आग, बाढ़ तथा खान की छतों के धँसने या दरकने से खानों में दुर्घटनाएँ हो जाती हैं।

अयस्कों के खनन के अलावा भी अनेक लोग अयस्कों के संसाधन तथा परिष्करण में लगे होते हैं। अयस्कों को संसाधित करने वाले कारखाने या तो खानों के निकट होते हैं या उपभोक्ता केंद्रों के निकट। पैट्रोलियम से प्राप्त अनेक प्रकार के उत्पादों के परिवहन की तुलना में, अशुद्ध पैट्रोलियम का परिवहन सस्ता पड़ता है। अतः तेल परिष्करणशालाएँ पत्तनों के निकट या उपभोक्ता केंद्रों के निकट स्थापित की जाती हैं। खनन तथा उससे जुड़े व्यवसायों में लगे लोगों की संख्या में प्रतिवर्ष परिवर्तन होता रहता है। इस परिवर्तन के अनेक कारक हैं जैसे—एक खान के बंद होने के बाद दूसरी खान का प्रारंभ होना, अयस्क का लागत मूल्य, अयस्क की माँग, अन्य देशों में नए निक्षेपों की खोज तथा कुछ अन्य कारक।

गौण व्यवसाय

औद्योगिक क्रांति के बाद कोयले और खनिज तेल के अधिकाधिक उपयोग के फलस्वरूप निर्माण उद्योगों का विकास और विस्तार हुआ है। ये निर्माण उद्योग, प्राथमिक व्यवसायों, जैसे—कृषि, पशुपालन, लकड़ी काटना, मत्स्य ग्रहण तथा खनन से प्राप्त उत्पादों को संसाधित करके, तैयार माल में बदलते हैं। उदाहरण के लिए चीनी मिलें, गन्ने तथा चुकंदर से चीनी बनाती हैं। इसी तरह कोयले और लौह अयस्क का खनन, प्राथमिक व्यवसाय है, लेकिन लोहा-इस्पात निर्माण गौण व्यवसाय है। विभिन्न प्रकार के उद्योग एक दूसरे के निकट स्थापित हो जाते हैं, क्योंकि एक उद्योग का तैयार माल, दूसरे के लिए कच्चा माल हो सकता है। उदाहरण के लिए, वस्त्र निर्माण उद्योगों में बना कपड़ा, रँगाई और छपाई तथा सिले हुए वस्त्र बनाने के उद्योगों को विकसित कर सकता है।

किसी देश में गौण व्यवसायों में कितनी विविधता है तथा उन व्यवसायों में कितने लोग काम करते हैं, यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि उस देश में औद्योगिक विकास कितना हुआ है? पश्चिमी यूरोप के विकसित देशों रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका और जापान में प्राथमिक व्यवसायों की अपेक्षा गौण व्यवसायों में अधिक लोग कार्य करते हैं। उद्योगों का विकास कच्चे माल, शक्ति, श्रमिक, पूँजी और तैयार माल के लिए बाजार की उपलब्धि पर निर्भर है। इन कारकों के अलावा परिवहन और संचार की सुविधाएँ, कच्चे माल और शक्ति का लागत मूल्य, श्रमिकों का वेतन तथा तैयार माल का लागत मूल्य भी, उद्योगों की स्थापना और विकास में महत्वपूर्ण आर्थिक कारक हैं। श्रमिक विभिन्न प्रकार के निर्माण उद्योगों जैसे—चीनी और वस्त्र उद्योग, दुग्ध उद्योग, मांस की डिब्बा-बंदी, लोहा-इस्पात, रसायन, मोटर गाड़ियाँ, रेल के इंजन तथा डिब्बे, जलयान निर्माण और तेल परिष्करणशालाओं में काम करते हैं।

निर्माण उद्योगों के तीन वर्ग हैं— बड़े पैमाने के उद्योग, छोटे पैमाने के उद्योग तथा कुटीर उद्योग। इस वर्गीकरण का आधार उद्योगों में कार्यरत लोगों की संख्या, उपयोग में आने वाली यांत्रिक शक्ति की मात्रा तथा निर्मित उत्पादों का मूल्य है। दस्तकार स्थानीय पदार्थों का उपयोग करके दस्तकारी की वस्तुएँ बनाते हैं। हथकरघा-बुनकर टोकरी बनाने वाले कालीन बुनने वाले, चटाई बनाने वाले आदि गौण व्यवसायों में लगे हैं। इन गौण व्यवसायों को कुटीर उद्योग कहते हैं। कुटीर उद्योग की प्रत्येक इकाई में लोग कम संख्या में काम करते हैं तथा इनमें यांत्रिक शक्ति का उपयोग नहीं होता है।

छोटे पैमाने के उद्योग यांत्रिक शक्ति का उपयोग करते हैं। ये उद्योग बड़े उद्योगों के लिए "पुर्जे" भी बनाते हैं। इलैक्ट्रोनिक वस्तुएँ बनाने वाली औद्योगिक इकाइयाँ जैसे रेडियो, टी.वी. सेट, प्लास्टिक की वस्तुएँ, सामान्यतः छोटे पैमाने के उद्योग होते हैं। बड़े पैमाने के उद्योगों में सैकड़ों लोग काम करते हैं तथा लाखों रुपयों की पूँजी लगी होती है। इनमें से कुछ उद्योग जैसे मोटर कार उद्योग या दुपहिया स्कूटर उद्योग अधिक उत्पादन के लिए एसेम्बली लाइन तकनीक का उपयोग करते हैं। एसेम्बली लाइन में अलग-अलग स्थानों पर कच्चे पदार्थ तथा

विविध पुर्जे जोड़ने का काम होता है। एसेम्बली लाइन पर जैसे-जैसे निर्माणाधीन वस्तु आगे सरकती है, प्रत्येक श्रमिक कोई निश्चित काम करता है, फिर दूसरी निर्माणाधीन वस्तु में भी वह वही काम करता है। इस तरह अंत तक पहुँचते-पहुँचते वस्तु का निर्माण पूरा हो जाता है और इस प्रकार एसेम्बली लाइन से निर्मित वस्तु बाहर निकलती है। इस विधि में प्रत्येक श्रमिक किसी एक काम में विशेष दक्ष होता है, जिसे वह बार-बार दोहराता है।

निर्माण उद्योगों के परिणामस्वरूप प्राथमिक व्यवसायों जैसे – कृषि, खनन, मत्स्य ग्रहण में भी मशीनों का अब खूब प्रयोग होने लगा है।

तृतीयक व्यवसाय

तृतीयक व्यवसायों में समाज को दी जाने वाली व्यक्तिगत तथा व्यावसायिक सेवाएँ सम्मिलित हैं। इन व्यवसायों के अंतर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यापार, परिवहन, बैंकिंग, जीवन बीमा, संचार और प्रशासन आते हैं। उद्योगों के विकास के साथ-साथ शहरी जनसंख्या भी तेजी से बढ़ी है, परिणामस्वरूप व्यावसायिक सेवाओं की माँग में भी वृद्धि हुई है। ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरों में अधिक लोग तृतीयक व्यवसायों में काम करते हैं। प्राथमिक और गौण व्यवसायों में काम करने वाले लोगों की तरह, तृतीयक व्यवसायों में सेवारत लोगों के कार्य भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। प्राथमिक और गौण व्यवसायों में लगे लोग, समाज के लिए आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं और तृतीयक व्यवसायी समाज को विभिन्न सेवाएँ प्रदान करते हैं।

व्यावसायिक प्रारूप

पिछले 50 वर्षों में जनसंख्या की वृद्धि ने व्यावसायिक प्रारूप को प्रभावित किया है। विकासशील देशों में अर्जक जनसंख्या कम है, जबकि आश्रित जनसंख्या (बच्चे, बूढ़े आदि) अधिक हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि अर्जक जनसंख्या के प्रत्येक व्यक्ति को बहुत से आश्रित व्यक्तियों के पालन-पोषण की जिम्मेदारी निभानी पड़ती है। युवकों में बेरोजगारी भी बढ़ रही है, क्योंकि उपलब्ध रोजगार के अवसरों की तुलना में काम चाहने वालों की संख्या कहीं अधिक है। लोग रोजगार की तलाश अन्य देशों में भी करने लगे हैं, जहाँ रोजगार के अवसर उपलब्ध होते हैं। युवकों में बेरोजगारी बढ़ने से सामाजिक तनाव बढ़ता है। यह तनाव शिक्षित युवकों में और भी ज्यादा बढ़ रहा है।

इसके विपरीत, विकसित देशों में जनसंख्या तेजी से नहीं बढ़ रही है। अतः यहाँ पिछले दशक की तुलना में रोजगार ढूंढ़ने वाले युवकों की संख्या कम हुई है। परिणामस्वरूप रोजगार चाहने वाले युवकों को रोजगार मिल जाता है या वे अपना ही कोई धंधा शुरू कर देते हैं। यद्यपि आश्रित जनसंख्या में बच्चों की संख्या कम है, लेकिन जीवन प्रत्याशा बढ़ जाने के कारण बूढ़ों की संख्या अधिक है। इन देशों में आश्रित जनसंख्या की अपेक्षा अर्जक जनसंख्या अधिक है। यहाँ परिवार छोटे हैं तथा जीवन स्तर ऊँचा है।

महिलाओं की भूमिका

मानव इतिहास के प्रारंभिक युगों में महिलाएँ बच्चों और बूढ़ों की देखभाल करती थीं तथा पुरुष भोजन की खोज में बाहर घूमते थे। जब कृषि का विकास हुआ तब महिलाएँ भी खेती के काम में हाथ बँटाने लगीं। महिलाएँ अधिकतर फसलों की रोपाई, निराई और कटाई में सहयोग

देने लगी थीं। खनन, लकड़ी काटना और मत्स्य ग्रहण जैसे अन्य व्यवसायों में महिलाएँ अधिक संख्या में काम नहीं करती हैं। विकसित देशों में शिक्षा तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण के प्रसार के बाद महिलाएँ निर्माण उद्योगों तथा सेवाओं में भी काम करने लगी हैं। विकासशील देशों की महिलाएँ शिक्षा में पुरुषों से पीछे हैं, परिणामस्वरूप उनके लिए रोजगार के अवसर भी कम हैं। पिछले कुछ वर्षों में स्त्रियों में शिक्षा के प्रसार से जागृति आई है। परिणामस्वरूप "कामकाजी" स्त्रियों की संख्या भी बढ़ी है। पहले औरतें केवल "घर" की देखभाल करती थीं लेकिन आज स्त्रियाँ धनार्जन भी करती हैं। जब अधिक से अधिक स्त्रियाँ शिक्षित होकर रोजगार में लगेंगी, तब समाज में उनकी महत्ता और अधिक बढ़ जाएगी।

स्वाध्याय

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए–
   1. श्रमविभाजन से क्या तात्पर्य है?
   2. प्राथमिक और गौण व्यवसायों के तीन-तीन उदाहरण दीजिए।
   3. ऋतु प्रवास से क्या तात्पर्य है?
   4. चलवासी किसे कहते हैं? उदाहरण दीजिए।
   5. निर्माण उद्योगों का वर्गीकरण कैसे किया जाता है?
2. अंतर स्पष्ट करिए–
   1. प्राथमिक और गौण व्यवसाय।
   2. निर्वाह कृषि तथा स्थानांतरी कृषि।
   3. कुटीर उद्योग और छोटे पैमाने के उद्योग।
   4. व्यापारिक कृषि तथा रोपण कृषि।
3. व्यवसाय के रूप में पशुपालन का वर्णन कीजिए।
4. गौण व्यवसायों के महत्व की विवेचना कीजिए।

स्वयं करें और खोजें

1. अपनी कक्षा के विद्यार्थियों के माता-पिता तथा संरक्षकों के व्यवसायों की एक सूची बनाइए। उनका प्राथमिक, गौण और तृतीयक श्रेणी के व्यवसायों में वर्गीकरण कीजिए।

2. संसार के रेखा-मानचित्र में चलवासी पशुचारण तथा व्यापारिक पशुचारण के क्षेत्रों को प्रदर्शित कीजिए।
3. अपने क्षेत्र के किसी कारखाने में जाकर देखिए कि उसमें कौन-सा कच्चा माल उपयोग में आता है और उसे कहाँ से प्राप्त किया जाता है।
4. अपनी कक्षा के विद्यार्थियों के घर के पते नोट कीजिए तथा एक स्कैच बनाइए जिसमें उस क्षेत्र को दिखाइए, जहाँ से विद्यार्थी आते हैं।

पठनीय पुस्तकें

1. डी.एच. डेविस : *दि अर्थ एण्ड मैन*, दि मैकमिलन एण्ड कंपनी न्यूयार्क।
2. प्रीस डी. एम.एण्ड वुड एच.आर.बी. : *फाउंडेशन ऑफ ज्याग्रफी*, यूनिवर्सिटी ट्यूटोरिल प्रेस, लंदन।
3. नार्मन पाउंड्स : *सक्सेस इन ज्याग्रफी*, ह्यूमन एण्ड रीजनल, जान मरे, लंदन।

9

हमारे संसाधन

मनुष्य अपनी सभी आवश्यकताओं को अपने पर्यावरण या संसार के अन्य भागों से पूरा करता है। अतः किसी प्रदेश का पर्यावरण वहाँ रहने वाले मनुष्यों के लिए बहुत महत्वपूर्ण होता है। भूमि, नदियाँ, पौधे, जंतु आदि पर्यावरण के विभिन्न तत्व हैं। मनुष्य की आवश्यकताएँ सर्वत्र समान नहीं हैं। लोगों के सांस्कृतिक तथा तकनीकी विकास के स्तर के अनुरूप उनमें अंतर होता है। उदाहरण के लिए, उत्तरी अमेरिका के विशाल उपजाऊ मैदानों का वहाँ के मूल इंडियनों के लिए, शिकार के अतिरिक्त, संसाधन के रूप में कोई मूल्य न था। लोहे और इस्पात के कारखानों की स्थापना से पहले, छोटा नागपुर के पठार के लौह अयस्क के विशाल भंडारों का संसाधन के रूप में कोई महत्व नहीं था। तकनीकी विकास प्रकृति के उपहारों को अधिक उपयोगी बना देता है।

परिवहन की सुविधाएँ संसाधनों के विकास के लिए अवसर जुटाती हैं। रेलमार्गों तथा सड़कों के बन जाने के बाद तथा खेती के लिए मशीनों के आगमन के साथ ही साइबेरिया के विशाल मैदानों के भागों में खेती होने लगी है। तकनीकी विकास के फलस्वरूप जलप्रपातों का उपयोग जलविद्युत बनाने में होने लगा है। इससे जलप्रपातों की उपयोगिता और अधिक बढ़ गई है।

साधनों के विकास में होने वाला व्यय, एक महत्वपूर्ण कारक है। यदि खारे पानी के खारेपन को दूर करने की कोई सस्ती विधि निकल आए तो महासागरों से प्रचुर मात्रा में मीठा जल मिल सकता है। निम्न श्रेणी के खनिज अयस्क को खानों से तभी निकाला जा सकता है, जबकि उससे प्राप्त धातु का ऊँचा मूल्य, उसके खनन को लाभकारी बना दे। नहरों से सिंचाई का प्रारंभ होने के बाद ही राजस्थान के मरुस्थलीय भागों का संसाधन के रूप में मूल्य बढ़ा है।

शैल, खनिज पदार्थ, मृदा, नदियाँ, पौधे, जंतु आदि प्रकृति के उपहार हैं। प्रकृति के उपहार साधन तभी बनते हैं जब मनुष्य उनकी खोज कर लेता है या उनका उपयोग करने लगता है। मानव इतिहास के विभिन्न कालों में, मनुष्य की आवश्यकताओं के अनुसार संसाधनों का सापेक्षिक महत्त्व बदलता रहता है। अतः किसी क्षेत्र में उपलब्ध संसाधन सदैव निश्चित नहीं होते। जबकि प्राकृतिक उपहार निश्चित होते हैं। उदाहरण के लिए, नदी एक प्राकृतिक उपहार है। यह संसाधन तभी बनती है, जब मनुष्य सिंचाई, शक्ति के विकास, नौपरिवहन आदि के लिए इसका उपयोग करने लगता है। जब प्राकृतिक उपहार किसी भी तरह उपयोगी नहीं रहते, तो उनका संसाधनों के रूप में महत्व

समाप्त हो जाता है। उदाहरण के लिए, जब खनिज भंडार समाप्त हो जाते हैं, तो खान बंद हो सकती है और फिर वह संसाधन नहीं रह जाती है।

संसाधनों का वर्गीकरण

संसाधनों का वर्गीकरण उनके मूल स्रोतों के आधार पर किया जा सकता है। उदाहरण के लिए खनिज, वनस्पति जंतु, मृदा आदि उल्लेखनीय हैं।

संसाधनों का वर्गीकरण उनकी निरंतर उपलब्धि के आधार पर भी किया जा सकता है। कुछ संसाधन, जैसे वन एवं जल का उपयोग वर्ष प्रति वर्ष निरंतर किया जा सकता है। ऐसे संसाधनों को संपूर्ति या आपूर्ति संसाधन कहते हैं। ये संसाधन अनेक वर्षों तक चलते रहते हैं। इसके विपरीत, खनिज संसाधन कुछ वर्षों के बाद समाप्त हो सकते हैं। इन्हें अपूर्य संसाधन या अनापूर्ति संसाधन कहते हैं। कोयला और खनिज तेल अपूर्य संसाधनों के उदाहरण हैं। संसार में ऐसे संसाधनों की उपलब्धि की एक सीमा होती है।

संसाधनों को उनके विकास की अवस्था के आधार पर भी वर्गीकृत किया जा सकता है। **संभाव्य संसाधन** वे हैं, जिनकी किसी प्रदेश में मौजूद होने की संभावना होती है। उदाहरण के लिए, अफ्रीका में जल शक्ति के विपुल संभाव्य संसाधन हैं। **ज्ञात संसाधन** वे हैं, जिनका सर्वेक्षण किया जा चुका है और उनकी मात्रा भली भाँति निश्चित की जा चुकी है। किसी ज्ञात संसाधन का विकास, उपलब्ध तकनीकी ज्ञान तथा लागत मूल्य पर निर्भर करता है। संसाधन का वह अंश जिसका आर्थिक रूप से विकास किया जा सकता है, **सुरक्षित भंडार** कहा जाता है। तकनीकी में परिवर्तन आने से भी निम्न श्रेणी के अयस्क का खनन लाभदायक बन सकता है और उसे भंडार की श्रेणी में माना जा सकता है। इसी प्रकार, तांबे जैसी धातु का संसार में मूल्य बढ़ जाने से, उसके निम्न श्रेणी के अयस्क का उपयोग भी लाभदायक बन गया है और इस प्रकार वह संसाधन भंडार बन गया। किसी देश में उपलब्ध संसाधन का विकास लोगों के तकनीकी विकास की अवस्था पर निर्भर करता है।

मानव संसाधन

किसी राष्ट्र का सबसे महत्वपूर्ण संसाधन उसके लोग होते हैं। किसी राष्ट्र में रहने वाले व्यक्तियों की संख्या से उपलब्ध मानव संसाधनों का ज्ञान नहीं होता, क्योंकि उनमें से बहुत से अनपढ़, अकुशल, अप्रशिक्षित और अस्वस्थ हो सकते हैं। अतः मानव संसाधनों का विकास बहुत आवश्यक है। इसके लिए केवल जागृत करने वाली सामान्य शिक्षा ही आवश्यक नहीं है, बल्कि कृषि, खनिज तथा अन्य संसाधनों के विकास के लिए यांत्रिक शक्ति और मशीनों के उपयोग का प्रशिक्षण भी अनिवार्य है। उदाहरण के लिए अफ्रीका के विपुल साधन बहुत समय तक अविकसित पड़े रहे क्योंकि वहाँ के लोगों को उनके महत्व का ज्ञान ही नहीं था। कुशलता तो उन लोगों में थी, लेकिन साधनों का विकास करने के लिए उनके पास उपयुक्त तकनीकी का अभाव था। संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, जर्मनी, जापान आदि राष्ट्र अपने प्राकृतिक संसाधनों का विकास मानवीय कौशल तथा तकनीकी के विकास के बाद ही कर पाए। मानव संसाधनों के विकास से प्राकृतिक संसाधनों के विकास को प्रोत्साहन मिलता है। इससे न केवल स्थानीय माँग की पूर्ति

होती है, अपितु निर्यात के लिए भी वस्तुएँ बच जाती हैं।

किसी प्रदेश का आर्थिक विकास कई कारकों पर निर्भर करता है। इन कारकों में उस प्रदेश में उपलब्ध विभिन्न प्रकार के संसाधन, वहाँ के निवासियों की आवश्यकताएँ और आकांक्षाएँ तथा उनका कौशल और तकनीकी ज्ञान शामिल है। किसी प्रदेश में विभिन्न प्रकार के संसाधनों और जनसंख्या का वितरण दोनों ही बहुत असमान हैं। इनके परिणामस्वरूप न केवल विभिन्न राष्ट्रों में, बल्कि एक ही राष्ट्र के विभिन्न प्रदेशों में भी विकास के स्तर में आश्चर्यजनक विषमताएँ दिखाई पड़ती हैं। अगले पृष्ठों में, संसार के विभिन्न प्रकार के संसाधनों तथा उनके विकास के प्रभाव की विवेचना की गई है।

भूमि संसाधन

भूमि एक महत्वपूर्ण संसाधन है, क्योंकि मनुष्य भूमि पर ही रहता है और उसकी अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति भी भूमि से ही होती है। भूमि का उपयोग विभिन्न प्रकार के कार्यों जैसे, मकान, सड़क और रेलमार्ग, कृषि, पशुचारण, खनन, उद्योग आदि में किया जाता है। भूमि के विभिन्न कार्यों में उपयोग का अनुपात न केवल एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में अपितु एक ही प्रदेश में समय-समय पर बदलता रहता है। उदाहरण के लिए; पिछले कुछ दशकों में, वनों को कृषि, खनन और अन्य उपयोगों के लिए काटा गया है। परिणामस्वरूप वनों का क्षेत्रफल कम हो गया है।

भूमि के भौतिक लक्षण उसके उपयोग पर कुछ बंधन लगाते हैं। भूमि के ढाल, मृदा आवरण के होने या न होने, भूपृष्ठीय जल तथा भूमिगत जल की उपलब्धि, शैलों की प्रकृति और उनमें मौजूद खनिजों से, किसी क्षेत्र के भूमि उपयोग के प्रकार का संकेत मिल सकता है। पर्याप्त जल सुविधाओं वाली, अपेक्षाकृत समतल भूमि कृषि के लिए उपयुक्त है। खड़े ढाल वाली भूमि, मकानों और सड़कों के निर्माण के लिए अनुकूल नहीं है, लेकिन उसी भूमि में यदि खनिजों का पता चल जाए, तो वहाँ खनन को प्रोत्साहन मिल सकता है।

आर्थिक और मानवीय कारक भी महत्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए पहाड़ी ढालों पर सीढ़ीदार खेत बनाने में बहुत अधिक व्यय होने के कारण खेती करना संभव नहीं हो पाता। निम्न श्रेणी के अयस्क का उपयोग खनन में भारी व्यय के कारण संभव नहीं होता। भूमि का उपयोग लोगों के रहन-सहन के ढंग से भी प्रभावित होता है। खेती के लिए सर्वथा उपयुक्त भूमि का उपयोग चलवासी चरवाहे केवल पशुओं को चराने के लिए ही करते हैं। सड़कों और रेलमार्गों के निर्माण के परिणामस्वरूप भी भूमि का विकास होता है। उदाहरण के लिए, कनाडा के प्रेअरी प्रदेश में सड़कों और रेलमार्गों के निर्माण के बाद ही गेहूँ की विस्तृत कृषि संभव हो सकी थी। गाँव की सीमांत भूमि की अपेक्षा उसके निकटवर्ती भूमि का उपयोग अत्यधिक होता है। सड़कों और रेलमार्गों के बन जाने से किसी प्रदेश के भूमि उपयोग का प्रारूप ही बदल जाता है, जैसा कि साइबेरिया में हुआ है।

हर प्रदेश में उपलब्ध भूमि की एक सीमा होती है। अतः भूमि पर विभिन्न उपयोगों के लिए दबाव पड़ता रहता है।

भवन निर्माण या अन्य उपयोगों के लिए अतिरिक्त भूमि मिल सकती है। भारत में मुंबई

क्षेत्र तथा यूरोप में नीदरलैंड में दलदली और निम्न भूमियों को भरकर उपयोग में लाया जा रहा है। भूमि के सर्वोत्तम उपयोग के लिए यह आवश्यक है कि भूमि के वर्तमान उपयोग का सर्वेक्षण किया जाए और भावी उपयोग के लिए सही योजनाएँ बनाई जाएँ।

मृदा संसाधन

पेड़-पौधों के उगने और बढ़ने के लिए मृदा अनिवार्य है। मृदा सबसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक साधन है, क्योंकि मनुष्य समेत सभी जंतु अपने भोजन के लिए पौधों पर आश्रित हैं। मृदा का निर्माण खनिज पदार्थों जैसे बालू और चीका मिट्टी तथा जैव पदार्थों जैसे सड़ी हुई फूल-पत्तियाँ, मृत जीवों के ऊतकों, सूक्ष्म जीवाणुओं और केंचुओं आदि से हुआ है। मृदा के ठोस कणों के बीच में विभिन्न मात्रा में नमी और वायु भी होती है। भौतिक, रासायनिक और जैव परिवर्तनों से मृदा बनती है। ये परिवर्तन मृदा की परत में निरंतर होते रहते हैं। मृदा के निर्माण की प्रक्रिया बहुत धीमी है। मृदा की एक मोटी परत के निर्माण में हजारों साल लग जाते हैं।

ज़लवायु मूल शैलों की प्रकृति, भूमि की स्थलाकृति तथा वनस्पति का प्रकार, मृदा के निर्माण को नियंत्रित करने वाले कारक हैं। इनमें से जलवायु सबसे महत्वपूर्ण कारक है। जलवायु शैलों के अपक्षय, मृदा की परत में नमी की मात्रा और वनस्पति के प्रकार को प्रभावित करती है। भूपृष्ठ पर मृदा का निर्माण सामान्यतः शैलों के अपक्षय से होता है। लेकिन मृदा का निर्माण तल संतुलन के कारकों द्वारा निक्षेपित पदार्थों से हो सकता है। नदियों की घाटियों तथा डेल्टा प्रदेशों की मृदा का निर्माण इसी प्रक्रिया द्वारा हुआ है। यह मृदा उपजाऊ होती है, क्योंकि इसमें विभिन्न क्षेत्रों से बहकर आए खनिज और जैव पदार्थ मिले होते हैं।

मृदा की ऊपरी परत, मृदा-निर्माणकारी प्रक्रियाओं तथा नदियों और पवन की अनाच्छादन प्रक्रियाओं के प्रभाव में रहती है। जिन क्षेत्रों में प्राकृतिक वनस्पति का आवरण अछूता रहता है, वहाँ इन दोनों प्रक्रियाओं के बीच संतुलन बना रहता है। ऐसे क्षेत्रों में अनाच्छादन प्रक्रियाओं के द्वारा मृदा के कणों को हटाने की दर तथा मृदा-निर्माणकारी प्रक्रियाओं द्वारा उसकी परत में नए बने मृदा कणों के मिलाने की दर में समानता रहती है। जब यह संतुलन बिगड़ जाता है, तब तल संतुलन के कारक अधिक तेज गति से मृदा की परत से उसके कणों को हटाने लगते हैं। इस दशा को मृदा का अपरदन कहते हैं। यदि यह प्रक्रिया चलती रहती है तो कुछ वर्षों में मृदा की पूरी परत गायब हो जाती है।

जल संसाधन

जल संसाधनों के वितरण पर जल परिमंडल के अध्याय में विचार किया जा चुका है। मनुष्यों, पौधों और जंतुओं के अस्तित्व तथा उनके रहने के लिए जल अत्यावश्यक है। मनुष्य को घरेलू कार्यों जैसे पीने, खाना बनाने, कपड़े धोने आदि के लिए, जल की आवश्यकता होती है। बड़े-बड़े नगरों सहित सभी मानव बस्तियों के लिए पेय जल की आपूर्ति आवश्यक है। इसमें काफी धन व्यय होता है, क्योंकि जल स्रोतों का पता लगाना, जल को शुद्ध करना तथा पाइप लाइनों द्वारा जल का वितरण करना, काफी खर्चीला काम है। सभी आर्थिक क्रियाओं जैसे—कृषि, पशुपालन, लोहा, इस्पात और

कागज जैसे उद्योगों, ताप बिजली घरों आदि के लिए भी जल की आवश्यकता होती है। जल को बिजली बनाने के काम में भी लाया जाता है।

हम पढ़ चुके हैं कि वर्षा, नदियों तथा भूमि के नीचे से प्राप्त, मीठे जल का वितरण बहुत असमान है। वर्षा ऋतु में वर्षा का जल तेजी से बह जाता है। कभी-कभी इससे विनाशकारी बाढ़ें आ जाती हैं। लेकिन शुष्क ऋतु में भूपृष्ठ के जलाशय सूख जाते हैं। नदियों के जल की मात्रा में ऋतुनिष्ठ विषमताओं को बांध बनाकर नियंत्रित किया जा सकता है, क्योंकि बांध के पीछे बने जलाशय के जल का शुष्क ऋतु में उपयोग हो सकता है। यह सही है कि नगरों से दूर काफी जल मिल सकता है, लेकिन उसे नगरों तक लाने में भारी व्यय हो जाता है। किसी प्रदेश की जल की उपलब्धि में प्रादेशिक और ऋतुनिष्ठ परिवर्तनों के अलावा अर्थिक कारणों से भी जल की भारी कमी हो सकती है; क्योंकि जल की बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए जल वितरण व्यवस्था में बहुत खर्चा होता है। अफ्रीका और एशिया के कुछ विकासशील देशों में गाँव के लोगों को घरेलू कार्यों के लिए पानी लेने काफी दूर जाना पड़ता है। अपनी बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जल साधनों के महत्व के विषय में लोग अब अधिक जागरूक हो गए हैं। कभी-कभी राजनीतिक कारक जैसे राष्ट्रों या राज्यों के बीच की सीमाएँ, जल के बँटवारे में आड़े आ जाते हैं।

मनुष्य केवल जल के अभाव से ही पीड़ित नहीं होता अपितु कभी-कभी बाढ़ के रूप में जल की अधिकता से भी परेशान हो जाता है। बाढ़ में अनेक लोग मर जाते हैं। धन-सम्पत्ति और फसलों की भारी हानि होती है। किसी प्रदेश में जल की अधिकता या उसके अभाव की समस्या के समाधान के लिए जल साधनों का पूरा सर्वेक्षण तथा उनके उपयोग का उचित नियोजन आवश्यक है। बहु-उद्देशीय नदी-परियोजनाएँ जैसे भाखड़ा नांगल तथा दामोदर घाटी परियोजना, जल संबंधी अनेक समस्याओं का समाधान एक साथ करने के लिए बनाई गई हैं। बाँध के पीछे बने जलाशय से नहरें निकाल कर, सिंचाई, घरेलू आवश्यकताओं, उद्योगों, जल विद्युत बनाने, नौ-परिवहन तथा अन्य आवश्यकताओं के लिए जल उपलब्ध कराया जाता है। इन परियोजनाओं से मृदा के अपरदन और बाढ़ों को रोकने में भी मदद मिली है।

नदियों, झीलों और तालाबों के रूप में भूपृष्ठीय जल के उपयोग के अलावा मनुष्य, कुओं के द्वारा भूमिगत जल का उपयोग भी करता आ रहा है। कुओं से पानी निकालने के लिए मनुष्य अपने हाथों का और पशु शक्ति का सहारा लेता है। गाँवों में बिजली पहुँच जाने के बाद, नलकूपों तथा कुओं से पानी निकालने के लिए, लोग पम्प सेटों का प्रयोग करने लगे हैं। परिणामस्वरूप भूमिगत जल का बहुत उपयोग होने लगा है, जिससे कुछ क्षेत्रों में जल स्तर बहुत नीचे चला गया है। ऐसे प्रदेशों में भूमि के नीचे से जल निकालने की दर, भूमि में जल के रिसने की दर से अधिक है। जल स्तर को और नीचे जाने से रोकने के लिए यह आवश्यक हो गया है कि नए कुएँ बनाने तथा वर्तमान कुओं से पानी निकालने पर नियंत्रण रखा जाए।

रिसाव तालाब

रिसाव तालाब बनाकर जल स्तर में जल के रिसने की मात्रा को बढ़ाया जा सकता है।

कृषि संसाधन

मनुष्य लगभग 40 शताब्दियों से खेती करता आ रहा है। भूमि, मृदा और जल, कृषि के लिए आधारभूत साधन हैं। नदी घाटियों और तटीय मैदानों में अपेक्षाकृत समतल भूमि, उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी तथा प्रचुर जल आपूर्ति ने कृषि को प्रोत्साहित किया है। उच्च अक्षांशों के प्रदेशों का छोटा वर्धन काल तथा उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में कम वर्षा, खेती में रुकावट डालती है। पर्वतीय और पठारी प्रदेशों की भूमि, ऊबड़-खाबड़ होने के कारण खेती के लिए बहुत उपयुक्त नहीं है। इस प्रकार, खेती के योग्य भूमि सीमित है।

संसार की तेजी से बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कुछ नए क्षेत्रों में कृषि प्रारंभ की गई है। ऐसे नए क्षेत्र वनों और घास भूमियों को साफ करके, पहाड़ी ढालों पर सीढ़ीदार खेत बनाकर, दलदलों को सुखा कर तथा सिंचाई की सुविधाएँ बढ़ाकर प्राप्त किए गए हैं। ट्रैक्टरों और अन्य कृषि यंत्रों के सहारे, केवल कुछ श्रमिकों की मदद से विस्तृत क्षेत्रों में खेती की जा सकती है। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा की प्रेअरी घास भूमियों और यूरोपीय राष्ट्रों की स्टेपी घास भूमियों पर की जाने वाली खेती विस्तृत कृषि के उदाहरण हैं। यहाँ मशीनों का बड़े पैमाने पर प्रयोग होता है।

विगत कुछ दशकों में उत्पादकता के बढ़ने से कृषि के कुल उत्पादन में वृद्धि हुई है। उर्वरकों, कीटनाशकों तथा अधिक उपज देने वाले उन्नत बीजों के उपयोग से प्रति हेक्टेयर उपज बढ़ गई है। हम पढ़ चुके हैं कि विकसित और विकासशील देशों की उपज में भारी अंतर है। इससे स्पष्ट है कि प्रति हैक्टर उपज को और अधिक बढ़ाया जा सकता है।

पिछले अध्याय में हम कृषि के विभिन्न प्रकारों जैसे स्थानांतरी कृषि, निर्वाह कृषि, व्यापारिक कृषि और रोपण कृषि की विवेचना कर चुके हैं। कृषि का हर प्रकार, कुछ प्रदेशों तथा उनमें रहने वाले लोगों की विशेषताएँ दर्शाता है। कौन-कौन सी फसलें बोई जाएँ तथा एक फसल कितने क्षेत्र में बोई जाए, इसका निर्णय आर्थिक कारकों पर भी निर्भर होता है। कृषि उत्पादों की लागत तथा उनके बदलते मूल्य आर्थिक कारक हैं।

लोगों ने अपनी खाद्यान्नों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए खेती शुरू की थी। समय के अनुसार रेशेदार फसलों जैसे कपास और जूट, व्यापारिक फसलों जैसे तंबाकू, गन्ने, चुकन्दर और विभिन्न मसालों की खेती भी शुरू हो गई। रोपण कृषि के द्वारा चाय, कहवा और रबड़ की फसलें पैदा की जाती हैं। इस प्रकार कृषि के द्वारा खाद्यानों के अलावा और भी विभिन्न फसलें उगाई जाती हैं। प्रत्येक फसल की खेती के लिए कुछ विशेष प्रकार की पर्यावरणीय दशाओं की आवश्यकता होती है। अतः प्रत्येक फसल का वितरण प्रारूप, दूसरी फसलों के वितरण प्रारूप से भिन्न होता है।

गन्ना और चावल जैसी फसलें केवल उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में ही पैदा की जा सकती हैं, क्योंकि यहाँ इन फसलों के लिए आवश्यक जल की मात्रा की आपूर्ति, वर्षा द्वारा या जरूरत पड़ने पर सिंचाई द्वारा की जा सकती है। एक खेत से एक साल में गन्ने की एक ही फसल ली जा सकती है। इसके विपरीत एक ही खेत से एक साल में चावल की एक से अधिक फसलें पैदा की जा सकती हैं। यद्यपि दोनों ही फसलों को लगभग एक ही जैसी

पर्यावरणीय दशाएँ चाहिए, लेकिन इनमें से किसी एक का चुनाव आर्थिक कारकों के आधार पर किया जाता है।

उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में, जहाँ साधारण वर्षा होती है, कपास, तंबाकू, ज्वार-बाजरा तथा तिलहनों की खेती की जाती है। कुछ शुष्क क्षेत्रों में सिंचाई द्वारा भी कपास और तंबाकू की खेती होती है। ऋतुनिष्ट दशाओं तथा आर्थिक कारकों के आधार पर प्रत्येक फसल का क्षेत्रफल वर्ष प्रति वर्ष बदलता रहता है।

मध्य अक्षांशों में गेहूँ खाद्यान्न की मुख्य फसल है। इन प्रदेशों में ग्रीष्म ऋतु कोष्ण रहती है तथा साधारण वर्षा होती है। उपोष्ण कटिबंधीय प्रदेशों, जैसे चीन और भारत में, शीत ऋतु में गेहूँ पैदा किया जाता है। मध्य अक्षांशों में वसन्त और ग्रीष्म ऋतुओं में गेहूँ पैदा किया जाता है, क्योंकि शीत ऋतु यहाँ बहुत ठंडी होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, रूस, यूक्रेन और आस्ट्रेलिया में बड़े-बड़े फार्मों पर, कृषि यंत्रों द्वारा, विस्तृत कृषि संभव हुई है। मध्य अक्षांशों में उगाई जाने वाली अन्य फसलें, मक्का, जौ, जई, राई और चुकन्दर हैं।

उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में आम, केले, नींबू, संतरे आदि के बाग लगाए गए हैं। मध्य अक्षांशीय प्रदेश सेब, जैतून और अंगूरों की खेती के लिए उपयुक्त हैं। भूमध्य सागरीय प्रदेश अनेक प्रकार के फलों की खेती के लिए विश्व प्रसिद्ध है। क्या तुम बता सकते हो कि ऐसा क्यों है और यहाँ की जलवायु कौन-कौन से फलों की खेती के लिए उपयुक्त है?

खाद्यान्नों के अलावा खेती द्वारा अनेक ऐसी फसलें भी पैदा की जाती हैं, जो विभिन्न प्रकार के उद्योगों के लिए कच्चा माल प्रदान करती हैं। इस प्रकार कृषि साधनों का विकास, कृषि पर आधारित उद्योगों को बढ़ावा देता है।

पशु संसाधन

पशुओं से मांस और दूध के उत्पाद मिलते हैं। ये कृषि से प्राप्त खाद्यान्नों के पूरक हैं। मनुष्य के लिए आवश्यक ऊन, चमड़ा व खालें भी पशुओं से मिलती हैं। विकासशील देशों में पशु खेती के कामों में मनुष्य की बड़ी सहायता करते हैं। खेतों की जुताई, बुवाई, कुओं से पानी निकालने तथा गाड़ी खींचने के लिए बैलों और भैंसों का उपयोग होता है।

नए बसे महाद्वीपों, जैसे उत्तर अमेरिका, दक्षिण अमेरिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, के मध्य अक्षांशों की घास भूमियों में व्यापारिक स्तर पर पशुचारण उद्योग को प्रोत्साहन मिला है। कुछ अधिक गर्म और आर्द्र प्रदेशों में गाय-बैल पाले जाते हैं। ठंडे और शुष्क प्रदेशों में भेड़ें पाली जाती हैं। इन क्षेत्रों की विरल जनसंख्या पशुपालन के अनुकूल है, क्योंकि खेती की तुलना में पशुपालन में कम लोगों की ज़रूरत होती है। विशिष्ट उद्देश्यों के लिए पशुओं की विशेष नस्लें विकसित की गई हैं। उदाहरण के लिए, मांस के लिए अलग तथा दूध के लिए पशुओं की अलग नस्लें हैं। इसी तरह ऊन तथा मांस के लिए अलग-अलग नस्लों की भेड़ों का विकास किया गया है।

विज्ञान और तकनीकी की सहायता से अत्याधुनिक मशीनों और सुविधाओं से युक्त बड़े-बड़े बूचड़खाने बनाए गए हैं। इन बूचड़खानों में पशुओं और भेड़ों का वध करके मांस और अन्य गौण उत्पाद प्राप्त किए जाते हैं। उन्नत तकनीकी के द्वारा अब ऐसे बड़े-बड़े जहाज बनाए गए हैं, जिनमें बड़े-बड़े प्रशीतित कक्ष होते

हैं, जिनमें मांस और दूध के उत्पादों को भर कर दूर-दूर तक भेजना संभव हो गया है। संयुक्त राज्य अमेरिका, यूक्रेन, बाल्टिक राज्य, चीन, अर्जेंटाइना ब्राजील, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड, मांस और मांस के उत्पादों के प्रमुख उत्पादक हैं। डेरी-उद्योग के लिए सुव्यवस्थित परिवहन व्यवस्था आवश्यक है, क्योंकि कुछ ही घंटों में फार्मों से दूध इकट्ठा करके संसाधन केन्द्रों में पहुँचाना होता है। दुधारू पशुओं के पालन के लिए अधिक श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है, लेकिन मांस वाले पशु कम श्रमिकों की सहायता से ही पाले जा सकते हैं। व्यापारिक डेरी-उद्योग बड़े नगरों के आस-पास विकसित हो गए हैं, क्योंकि दूध और दूध के उत्पादों की नगर में ही खपत हो जाती है। गाँवों से दूध इकट्ठा करके उसे नगरों में स्थापित कारखानों में संसाधित किया जाता है। डेनमार्क, नीदरलैंड, आस्ट्रेलिया के कुछ भागों तथा न्यूजीलैंड ने डेरी-उत्पादों के निर्यात में विशेषता प्राप्त कर ली है। दूध का पाउडर, मक्खन तथा पनीर प्रमुख डेरी-उत्पाद हैं।

आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, अर्जेंटाइना और दक्षिण अफ्रीका में बड़े पैमाने पर ऊन के लिए भेड़ें पाली जाती हैं। ये देश ऊन का निर्यात करते हैं। भेड़ों से ऊन उतारने, छँटाई करने तथा निर्यात के लिए पैकिंग करने में मशीनों का प्रयोग किया जाता है।

उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में पशुपालन का व्यापारिक स्तर पर विकास नहीं हुआ है। यद्यपि हमारे देश में पशुओं की संख्या सबसे अधिक है, लेकिन उनका अधिकतर उपयोग खेती के कामों में होता है। हमारे देश में दूध का औसत उत्पादन भी कम है। बड़े-बड़े नगरों की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए, डेरी-उद्योग को व्यापारिक स्तर पर संगठित करने के उपाय किए गए हैं। अधिकतर उष्ण कटिबंधीय देशों में मांस और दूध के उत्पादों का उपभोग भी कम होता है।

वन संसाधन

जैव मंडल के अध्याय में हम वनों के विभिन्न प्रकारों की विवेचना कर चके हैं। वन उन्हीं प्रदेशों में पाए जाते हैं, जहाँ प्रचुर मात्रा में वर्षा होती है। आज संसार के कुल भूमिक्षेत्र का 30 प्रतिशत भाग वनों से ढका है। जो क्षेत्र बहुत सूखे या ठंडे हैं, वहाँ वन नहीं हैं। प्राचीन काल में वनों का विस्तार अधिक था। मानवीय हस्तक्षेप के बाद वनों के क्षेत्रफल में 30 प्रतिशत की कमी हुई है। कृषि, खनन तथा अन्य उपयोगों के लिए वनों को काटा गया है। इमारती लकड़ी, जलाऊ लकड़ी तथा अन्य उत्पादों के लिए भी वनों की कटाई हुई है।

पर्यावरण में वन बहुत महत्वपूर्ण हैं। वृक्ष वायुमंडल से कार्बन डाइआक्साइड लेते हैं तथा उसमें आक्सीजन छोड़ते हैं। वाष्पोत्सर्जन की प्रक्रिया द्वारा वन वायुमंडल में जल वाष्प की वृद्धि करते हैं। वन मृदा अपरदन को रोकते हैं, क्योंकि वृक्षों की जड़ें मृदा कणों को बाँधे रखती हैं। वन, पक्षियों, वन्य जीवों और अन्य प्राणियों को सुरक्षित आवास प्रदान करते हैं। वन, वर्षा-जल के भूमि में रिसने में सहायक हैं और इस प्रकार वे उसकी कम मात्रा को बहकर जाने देते हैं। वनों से प्राप्त लकड़ी भवन-निर्माण, फर्नीचर, कागज तथा कृत्रिम रेशे बनाने में काम आती है।

एशिया और अफ्रीका के विकासशील देशों में जलाऊ लकड़ी तथा काठ-कोयले की बढ़ती

हुई माँग को पूरा करने के लिए वनों की अंधाधुंध कटाई हुई है। परिणामस्वरूप पिछले केवल 35 वर्षों में अफ्रीका के वन-क्षेत्र में 25 प्रतिशत की कमी आ गई है। कागज और अखबारी कागज की बढ़ती हुई माँग के कारण वनों के अधिकाधिक उपयोग की आवश्यकता हो गई है। वन एक संपूर्ति साधन है। यदि काटे गए वनों के क्षेत्रों में ठीक ढंग से पेड़ लगाए जाएँ, तो वन क्षेत्रों को घटने से रोका जा सकता है। इस प्रकार वनों से निरंतर लकड़ी तथा अन्य वन-उत्पाद प्राप्त किए जा सकते हैं। आज हम वनों को सुरक्षित रखने की आवश्यकता को अच्छी तरह समझ गए हैं। इसीलिए बंजर और बेकार पड़ी भूमि पर वृक्षारोपण अभियान चलाए जा रहे हैं। वनों के खाली हो गए क्षेत्रों में सुनियोजित ढंग से पेड़ लगाकर तथा वनों के उपयोग को नियंत्रित करके वनों से प्रतिवर्ष लकड़ी प्राप्त की जा सकती है।

मध्य अक्षांशीय वनों का तथा शंकुधारी वनों का व्यापारिक उपयोग हो रहा है। नार्वे, स्वीडन, फिनलैंड और कनाडा बड़ी मात्रा में, कागज की लुग्दी, कागज और अखबारी कागज का निर्यात करते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा रूस में महत्वपूर्ण वन संसाधन हैं। विषुवतीय प्रदेशों के सघन वनों का व्यापारिक उपयोग नहीं हो पाया है। इसके अनेक कारण हैं। ये वन दुर्गम हैं, यहाँ अनेक बीमारियों का प्रकोप है तथा पेड़ों के नीचे घनी तल झाड़ियाँ हैं। भारत तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के मानसूनी वनों में सागौन, रोजवुड, महोगनी और चंदन के मूल्यवान वृक्ष उगते हैं। इनमें से कुछ वनों को चाय, कहवा, रबड़ और मसालों के बागान लगाने के लिए साफ कर लिया गया है।

वन्य जीव संसाधन

वन्य जीवों में पौधे; जंतु, पक्षी और अन्य जीव शामिल हैं। ये सभी अपने प्राकृतिक आवास में रहते हैं। हम पढ़ चुके हैं कि जैव मंडल के सभी जीव परस्पर निर्भर हैं, क्योंकि वे एक खाद्य-जाल के अंग हैं। यदि वन्य जीवों की संख्या को छेड़ा न जाए अर्थात् मनुष्य उनकी संख्या को कम या ज्यादा न करे, तो पर्यावरण में संतुलन बना रहता है। मानव के आर्थिक क्रियाकलाप के परिणामस्वरूप अनेक वन्य-जीवों के प्राकृतिक आवास उजड़ गए हैं। भोजन, समूर, पंखों या खालों के लिए पशु-पक्षियों का अंधाधुंध शिकार किया गया है। फलस्वरूप अब अनेक वन्य-जीव विलुप्त हो गए हैं। दूसरे कुछ जीव विलुप्त होने वाले हैं। इस प्रकार वन्य जीवों के विलुप्त हो जाने से पर्यावरण में पारिस्थितिक संतुलन गड़बड़ा जाएगा।

अब हम अच्छी तरह समझ गए हैं कि वन्य-जीवों का संरक्षण, उन्हें भविष्य के लिए सुरक्षित रखने हेतु आवश्यक है। वन्य जीवों के मूल आवास को उजड़ने से बचाने के लिए राष्ट्रीय उद्यानों और संरक्षित वनों की स्थापना की गई है। वन्य जीवों को बचाने के लिए ही "अभयारण्य" बनाए गए हैं। वन्य जीवों के ये शरण्यस्थल, प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर हैं। अतः इनसे अनेक पर्यटक आकर्षित होते हैं।

मत्स्य संसाधन

मनुष्य बहुत पुराने समय से मछली पकड़ता आ रहा है। मछली पकड़ने का धंधा बहुत पुराना है। सागर और महासागर जीवों से भरे पड़े हैं। हम पढ़ चुके हैं कि गहरे महासागरों की अपेक्षा समुद्रतटीय उथले जल में अधिक जीव रहते हैं।

विकासशील देशों में जहाँ मांस का उपभोग कम है, लोगों के भोजन में जीवों से प्राप्त प्रोटीन का, एक मात्र स्रोत, मछली ही है। मछलियों से प्राप्त तेल का टानिक के रूप में तथा उनके अवशिष्ट पदार्थों का उपयोग खाद के रूप में होता है। नदियों, झीलों, तालाबों तथा दूसरे अन्तःस्थलीय जलाशयों में भी मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। महासागरों के मछलियों से भरपूर क्षेत्रों में ही बड़े पैमाने पर मछली पकड़ी जाती है।

9.1 (क और ख) उत्तर अटलांटिक महासागर के प्रमुख मत्स्य क्षेत्र

उत्तर पूर्वी तथा उत्तर पश्चिमी अटलांटिक के मत्स्य ग्रहण बैंकों अर्थात् उथले सागरों की विवेचना कीजिए।

इन मत्स्य क्षेत्रों की स्थिति के लिए कौन से कारक जिम्मेदार हैं? इस मत्स्य क्षेत्र के निकटवर्ती प्रत्येक देश के मुख्य मत्स्य पत्तनों के नाम बताइए।

संसार के प्रमुख मत्स्य-क्षेत्र 40° और 50° उत्तरी अक्षांशों के बीच, महाद्वीपों के तटों के पास पाए जाते हैं। यहाँ ठंडी और गर्म धाराएँ मिलती हैं। ये क्षेत्र प्लवकों से भरपूर हैं। अतः ठंडी और गर्म धाराओं से बड़ी संख्या में मछलियाँ भोजन की तलाश में यहाँ आ जाती हैं। इस प्रकार उत्तर अमेरिका के उत्तर पूर्वी तट से कुछ दूर फैला ग्रैंड बैंक और जापान के आस-पास के सागर प्रमुख मत्स्य ग्रहण क्षेत्र हैं। उत्तरी सागर में डागर बैंक का मत्स्य ग्रहण क्षेत्र बहुत समृद्ध है, क्योंकि यहाँ उथले सागर का विस्तार बहुत बड़े क्षेत्र में है। उष्ण कटिबंधीय मरुस्थलों के पश्चिमी तट के साथ फैले सागरों में जल नीचे से ऊपर आता रहता है। अतः वहाँ खूब मछलियाँ पाई जाती हैं। इन सागर क्षेत्रों में नीचे की परतों से ऊपर आने वाले जल के साथ प्रचुर मात्रा में मछलियों का भोजन ऊपर आ जाता है। पेरु और चिली के तट के पास फैले सागर में भी ठंडे जल का उत्प्रवाह होता है। अतः यहाँ समृद्ध मत्स्य ग्रहण क्षेत्र बन गए हैं। स्थल खंडों से दूर गहरे महासागरों में मछुवाही के लिए, बड़े-बड़े तथा तेज गति वाले जहाजों की आवश्यकता होती है। इन जहाजों में रहकर मछुआरे काफी दिनों तक मछलियाँ

पकड़ते हैं। मछलियों को संसाधित करने, डिब्बा बंदी आदि सभी कामों की सुविधाएँ भी जहाजों में होती हैं। व्यापारिक गछुवाही के कारण मछलियाँ और उनके उत्पादों का बड़े पैमाने पर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार होता है। संसार में समुद्रों से लगभग 141करोड़ टन मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। संसार के कुल मछली उत्पादन का 26.5 प्रतिशत भाग अकेले जापान से आता है। संसार के मछली उत्पादन में जापान का पहला स्थान है। बाल्टिक राज्य, रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, पेरु, और नार्वे, समुद्र से मछली पकड़नेवाले प्रमुख देश हैं।

स्थानीय उपभोग के लिए अन्तःस्थलीय जलाशयों से भी मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। नदियों, झीलों और तालाबों के मीठे पानी के मत्स्य ग्रहण क्षेत्र, समुद्री मत्स्य ग्रहण क्षेत्रों की तुलना में कम महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि कुल मत्स्य ग्रहण में उनका आठवाँ भाग ही होता है। फिर भी अंतःस्थलीय मछुवाही का एक लाभ यह है कि समुद्र तटों से दूर रहने वाले लोगों को भी मछलियाँ खाने को मिल जाती हैं। नदियों पर बने बांधों के पीछे के जलाशयों में मछलियाँ पाली जाती हैं। यहाँ शीघ्र बढ़ने वाली मछलियाँ पाली जाती हैं, जिससे वर्ष में दो या तीन बार मछलियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। मछली पालन, मांस के लिए पशु पालन जैसा ही है। चीन में धान के खेतों में भी मछलियाँ पाली जाती हैं। जापान में मोतियों के लिए मोती-सीप पाली जाती हैं।

कुछ मत्स्य ग्रहण क्षेत्रों में मछलियों की मात्रा में भारी कमी आई है। तटीय सागर जल का प्रदूषण, खनिज तेल का बिखराव, महाद्वीपीय निमग्न तट पर खनिज तेल का खनन तथा अंधाधुंध मत्स्य ग्रहण, इस कमी के मुख्य कारण हैं। आज मनुष्य संसार के संभाव्य मत्स्य संसाधनों के 75 प्रतिशत भाग का उपयोग कर रहा है, लेकिन कुछ मत्स्य ग्रहण क्षेत्रों में ज्यादा मछली पकड़ने के कारण उत्पादन में कमी आई है।

यदि मत्स्य ग्रहण को नियोजित करने के उपाय किए जाएँ तो समुद्री मछलियाँ भोजन का संपूर्ति साधन बन सकती हैं। महासागरों के उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में मत्स्य ग्रहण की बड़ी संभावनाएँ हैं, क्योंकि अभी इन क्षेत्रों का मत्स्य ग्रहण के लिए व्यापारिक स्तर पर उपयोग नहीं किया गया है। अंतर्राष्ट्रीय समझौते के द्वारा ह्वेलों को पकड़ने पर नियंत्रण हो गया है। अटलांटिक तथा प्रशांत महासागरों के प्रमुख मत्स्य ग्रहण क्षेत्रों में आवश्यकता से अधिक मछलियाँ न पकड़ने के लिए ऐसे ही समझौतों की जरूरत है। ये समझौते मछली पकड़ने वाले प्रमुख राष्ट्रों के बीच होने चाहिए। तटीय सागर जल में भी मछली पालन के विकास की संभावनाएँ हो सकती हैं। यदि लोग अधिकाधिक मात्रा में मछली खाना शुरू करें, तो उनके भोजन में प्रोटीन की मात्रा बढ़ जाएगी और महाद्वीपों के जैव साधनों पर भी दबाव नहीं पड़ेगा।

खनिज संसाधन

खनिजों में वे सभी पदार्थ शामिल हैं, जिन्हें खनन द्वारा पृथ्वी से निकाला जाता है। ऐसे पदार्थों की उत्पत्ति कोयले और पेट्रोलियम के समान जैव हो सकती है। अजैव पदार्थों में धात्विक और अधात्विक दोनों ही पदार्थ शामिल हैं। खनिजों को पृथ्वी की सतह से या विभिन्न

गहराइयों से खोदकर निकाला जाता है।

यद्यपि खनिज व्यापक रूप से शैलों में पाए जाते हैं, लेकिन उन्हीं स्थानों से उनका खनन आर्थिक दृष्टि से लाभकारी होता है, जहाँ वे संकेन्द्रित रूप में मिलते हैं। शैल, जिसमें कोई धात्विक खनिज संकेंद्रित रूप में मिलता है, अयस्क कहलाता है। अतः खनन उन्हीं स्थानों तक सीमित है, जहाँ अयस्क मिलते हैं। यद्यपि लोहा और अल्युमिनियम अधिकतर शैलों में मिलते हैं, लेकिन उनका खनन उन्हीं स्थानों से होता है, जहाँ वे अयस्क के रूप में होते हैं।

बहुत से धात्विक खनिज जैसे सोना, चांदी, सीसा और जस्ता अयस्क के रूप में आग्नेय और कायांतरित शैलों में पतली बारीक परतों के रूप में मिलते हैं। कोयला और लिग्नाइट अवसादी शैलों की परतों के बीच अपेक्षाकृत मोटी परतों में मिलते हैं। पैट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस अवसादी शैलों के रंध्रों में मिलते हैं। टिन, सोना और हीरा जैसे खनिज, नदी के तल में जमा रेत, कंकड़ों और अन्य अवसादों में भी मिलते हैं। नदी द्रोणी के ऊपरी भागों के शैलों के अनाच्छादन द्वारा ये खनिज अपने मूल स्थानों से हटा दिए गए थे। नदी ने उन्हें बहाकर अपने निचले भागों में जमा कर दिया था। ऐसे जमाव को "प्लेसर" निक्षेप कहते हैं।

सामान्यतः नगरों या पत्तनों के पास स्थित उत्तम कोटि के अयस्क का खनन सबसे पहले किया जाता है। जब ये समाप्त हो जाते हैं या खनन में कठिनाइयाँ आने लगती हैं, तब दूर के क्षेत्रों में खनन किया जाता है या दूसरे देशों से आयात किया जाता है। मूल्य वृद्धि होने पर निम्न कोटि के अयस्कों का खनन भी आर्थिक दृष्टि से लाभदायक हो जाता है। मूल्य वृद्धि से खनिज के नए निक्षेपों की खोज और अन्वेषण को भी प्रोत्साहन मिलता है। खनिजों का खोज कार्य तब ऐसे स्थानों में भी किया जाता है, जिन्हें पहले प्रतिकूल माना जाता था। खनिजों की आपूर्ति को सुनिश्चित बनाए रखने के लिए नए साधनों की निरंतर खोज आवश्यक है, क्योंकि पुरानी खानें कुछ ही वर्षों में खनिज विहीन हो जाती हैं।

खनिज अयस्कों में खनिज के अलावा दूसरे अनेक पदार्थ भी होते हैं। अयस्कों में खनिजों की मात्रा अलग-अलग स्थानों में भिन्न-भिन्न होती है। शुद्ध खनिज प्राप्त करने के लिए खनिजों को संसाधित करके अशुद्धियों को दूर करना पड़ता है। लौह अयस्क को संसाधित करके लोहा प्राप्त करने के लिए, काफी व्यय करके, बड़े-बड़े कारखाने लगाने पड़ते हैं। पैट्रोलियम को बिना साफ किए उपयोग में नहीं लाया जा सकता। इसे परिष्कृत करके पैट्रोल, डीजल, मिट्टी का तेल आदि अनेक उत्पाद प्राप्त किए जाते हैं, जिनका तत्काल उपयोग हो सकता है। खनन से बाजारों के निकट या खनन स्थल के समीप, उद्योगों की स्थापना को प्रोत्साहन मिलता है।

खनिज-ईंधन

कोयला, पैट्रोलियम और प्राकृतिक गैस, ऊर्जा के सामान्य संसाधन हैं। इनकी उत्पत्ति जैव पदार्थों से हुई है। अतः इन्हें जीवाश्म-ईंधन भी कहते हैं। संसार की व्यापारिक ऊर्जा के उत्पादन का 88 प्रतिशत भाग इन्हीं से मिलता है। जल-विद्युत शक्ति तथा परमाणु शक्ति से शेष 12 प्रतिशत भाग पूरा किया जाता है। (देखिए निम्न सारणी) शक्ति के साधनों का वितरण बहुत असमान है। कुछ देशों को ऊर्जा की अपनी संपूर्ण माँग आयात से पूरी करनी पड़ती है।

शक्ति के स्रोत	(1990) विश्व के कुल योग का प्रतिशत
खनिज तेल	38.5
प्राकृतिक गैस	21.5
कोयला	27.8
जल विद्युत	6.6
परमाणु शक्ति	5.6
	100.0

संसार की लगभग आधी जनसंख्या विकासशील देशों में रहती है। ये देश आज भी अपने घरेलू ईंधन के लिए जलाऊ लकड़ी तथा काठ-कोयले, गोबर, फसलों के डंठलों आदि पर निर्भर हैं। कोयला, खनिज तेल और प्राकृतिक गैस, शक्ति के अनापूर्ति संसाधन हैं। इसके विपरीत पेड़-पौधे और जीव-जंतु शक्ति के संपूर्ति संसाधन प्रदान करते हैं। सौर ऊर्जा, पवन शक्ति और ज्वारीय शक्ति भी संपूर्ति साधन हैं। शक्ति के अन्य साधन जल विद्युत और परमाणु शक्ति हैं। गर्म झरने और गीज़र, भूतापीय ऊर्जा के संसाधन हैं।

कोयला

यूरोप की औद्योगिक क्रांति का मूल आधार कोयला ही था। वाष्प चलित इंजन तथा अंतर्दहन इंजन के आविष्कार से यांत्रिक शक्ति की माँग बढ़ गई है। औद्योगिक क्रांति से पहले, मनुष्य शक्ति के लिए, पालतू पशुओं, पवन, बहते जल पर आश्रित था। खनिज तेल की खोज और जल विद्युत के आविष्कार से कोयले का महत्व धीरे-धीरे कम होता गया। कोयला भारी और अधिक स्थान घेरने वाला होता है। अतः इसको अधिक दूर से जाना महंगा पड़ता है। इसके विपरीत खनिज तेल पाइप लाइनों तथा तेलवाहक जहाजों के द्वारा दूर-दूर तक आसानी से ले जाया जा सकता है। जलने के बाद कोयले की राख काफी मात्रा में बच जाती है, जिसे समय-समय पर हटाना पड़ता है। खनिज तेल के जलने के बाद कुछ नहीं बचता। कोयले की तुलना में खनिज तेल का उपभोग बहुत बढ़ गया है। मोटर वाहनों, रेल इंजनों तथा वायुयानों में खनिज तेल के उत्पादों का अधिकाधिक उपभोग हो रहा है। लेकिन धमन भट्टियों में लौह-अयस्क को पिघलाने के लिए कोयला अनिवार्य है।

कोयला एक जैव निक्षेप है। इसकी उत्पत्ति अतीत काल में भूमि में वनों के दब जाने से हुई है। कोयला इन्हीं का अवशेष है। कोयला अवसादी शैलों के अवसादों की परतों के बीच में विभिन्न मोटाई की परतों में मिलता है। कोयला विभिन्न गुणों वाला होता है। इसके गुण पौधों के अवशेषों के कार्बनीकरण पर निर्भर होते हैं। एंथ्रेसाइट उत्तम कोटि का कोयला है। इसमें कार्बन का अंश 90 प्रतिशत से लेकर 95 प्रतिशत तक होता है। बिटुमिनस कोयले का खनन और उपभोग सबसे अधिक होता है। इसमें 70 प्रतिशत कार्बन होता है। बिटुमिनस कोयले से कोक बनाया जाता है। कोक लोहे को गलाने के काम आता है। पीट और लिग्नाइट निम्न कोटि के कोयले के प्रकार हैं। इन्हें भूरा कोयला भी कहते हैं। इनमें कार्बन की मात्रा तो 50 प्रतिशत होती है, लेकिन आर्द्रता की मात्रा अधिक होती है।

कोयले के ज्ञात निक्षेपों का वितरण बहुत असमान है। कोयले के बड़े निक्षेप संयुक्त राज्य अमेरिका, यूक्रेन, रूस, चीन और पश्चिमी यूरोप में हैं। दक्षिण अफ्रीका गणतंत्र और

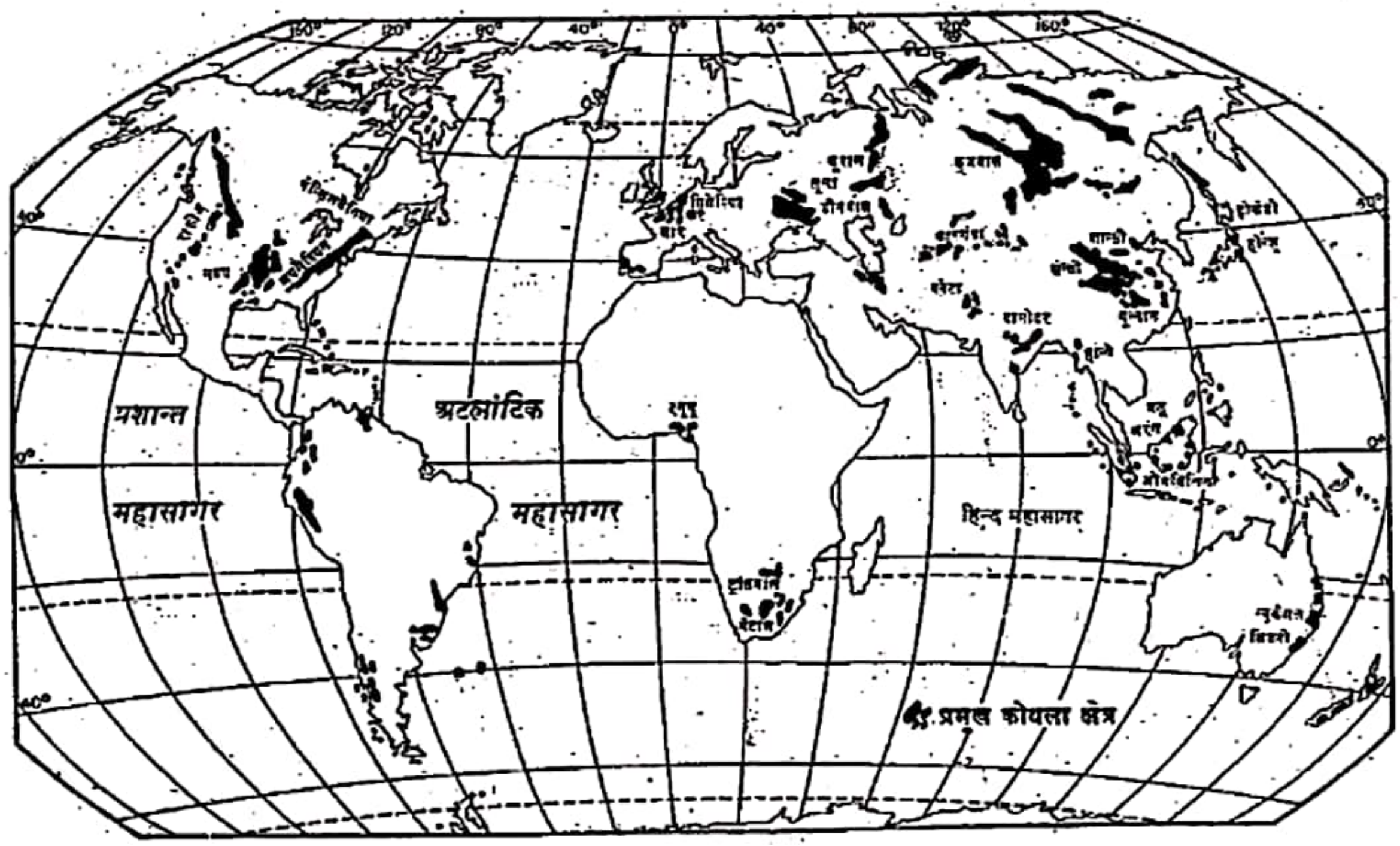

9.2(क) कोयले के प्रमुख क्षेत्र

कोयले के अधिकतर प्रमुख क्षेत्र 30° उ० तथा 60° उ० अक्षांशों के मध्य पाए जाते हैं।
उन देशों के नाम बताइए, जहाँ ये क्षेत्र स्थित हैं।

आस्ट्रेलिया को छोड़कर, दक्षिणी गोलार्द्ध में कोयले के निक्षेप नहीं पाए जाते हैं। ऐसे असमान वितरण का अर्थ है कि अनेक देश कोयले का उत्पादन ही नहीं करते। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें कोयले का आयात करना पड़ता है।

संसार में कोयले के कुल उत्पादन का 60 प्रतिशत भाग संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस और चीन से प्राप्त होता है। यूरोप में युनाइटेड किंगडम और जर्मनी कोयले के प्रमुख उत्पादक देश हैं। इन देशों में संसार के 15 प्रतिशत कोयले का उत्पादन होता है। संसार में कोयले के विपुल भंडार हैं, जो 100 सालों से अधिक समय तक चल सकते हैं।

लोहा और इस्पात बनाने में तथा बिजली उत्पादन में कोयले का उपयोग होता है। रासायनिक उद्योग तथा कुछ अन्य उद्योगों में कोयले का उपयोग कच्चे माल के रूप में भी होता है।

पेट्रोलियम

पेट्रोलियम या खनिज तेल जैव पदार्थों से बना है। अतीत काल में जैव पदार्थ अवसादी शैलों की परतों के बीच दब गए थे। खनिज तेल शैलों के रंध्रों में रिस जाता है और यह पानी तथा प्राकृतिक गैस के साथ पाया जाता है। खनिज तेल पानी से हल्का होता है। अतः यह पानी पर तिरता रहता है। प्राकृतिक गैस तेल के ऊपर होती है। अपने कम घनत्व के कारण तेल, अपनतियों में इकट्ठा हो जाता है। नवीन वलित पर्वत श्रेणियों के निकट तेल मिलता है। तटीय प्रदेशों तथा अपतटीय प्रदेशों जैसे महाद्वीपीय निमग्न तट में भी तेल पाया जाता है।

अशुद्ध पैट्रोलियम को परिष्कृत करके अनेक उत्पाद प्राप्त किए जाते हैं। इनमें पैट्रोल, डीज़ल, मिट्टी का तेल आदि मुख्य हैं। स्थल, जल और वायु में परिवहन के लिए तेल का सबसे अधिक महत्व है। बिजली उत्पादन में भी तेल का उपयोग होता है। तेल परिष्करण के बाद जो गौण उत्पाद मिलते हैं, उनका कच्चे माल के रूप में उपयोग होता है। इनसे उर्वरक, चिकना करने वाले तेल, कृत्रिम रेशे, रसायन और दवाइयाँ बनाई जाती हैं। तेल का बड़ा सामरिक महत्व है, क्योंकि सेनाओं की गतिशीलता तथा प्रहार शक्ति तेल पर निर्भर करती है। तेल के गौण उत्पादों के आधार पर अनेक सहायक उद्योगों की स्थापना को बढ़ावा मिला है।

सन् 1973 तक तेल के उपयोग में बड़ी तेजी से वृद्धि होती रही; लेकिन उसके बाद तेल की कीमतें बड़ी तेजी से बढ़ गईं। इससे विकसित देशों में तेल के उपभोग में कमी आ गई है। कम से कम तेल में अधिक से अधिक काम हो, इसके लिए प्रयत्न जारी हैं। इसीलिए अंतर्दहन इंजनों में सुधार किया जा रहा है। परिणामस्वरूप विगत 10 वर्षों में तेल के विश्व उपभोग में वृद्धि की दर धीमी हो गई है।

संसार में तेल के भंडारों तथा उत्पादन का वितरण बहुत ही असमान है। संसार के कुल तेल भंडारों का लगभग दो-तिहाई भाग दक्षिण पश्चिम एशिया में फारस की खाड़ी के आस-पास केंद्रित हैं। इस क्षेत्र के प्रमुख देश कुवैत, साउदी अरब, ईरान, ईराक और संयुक्त अरब अमीरात हैं। इन देशों में तेल का स्थानीय

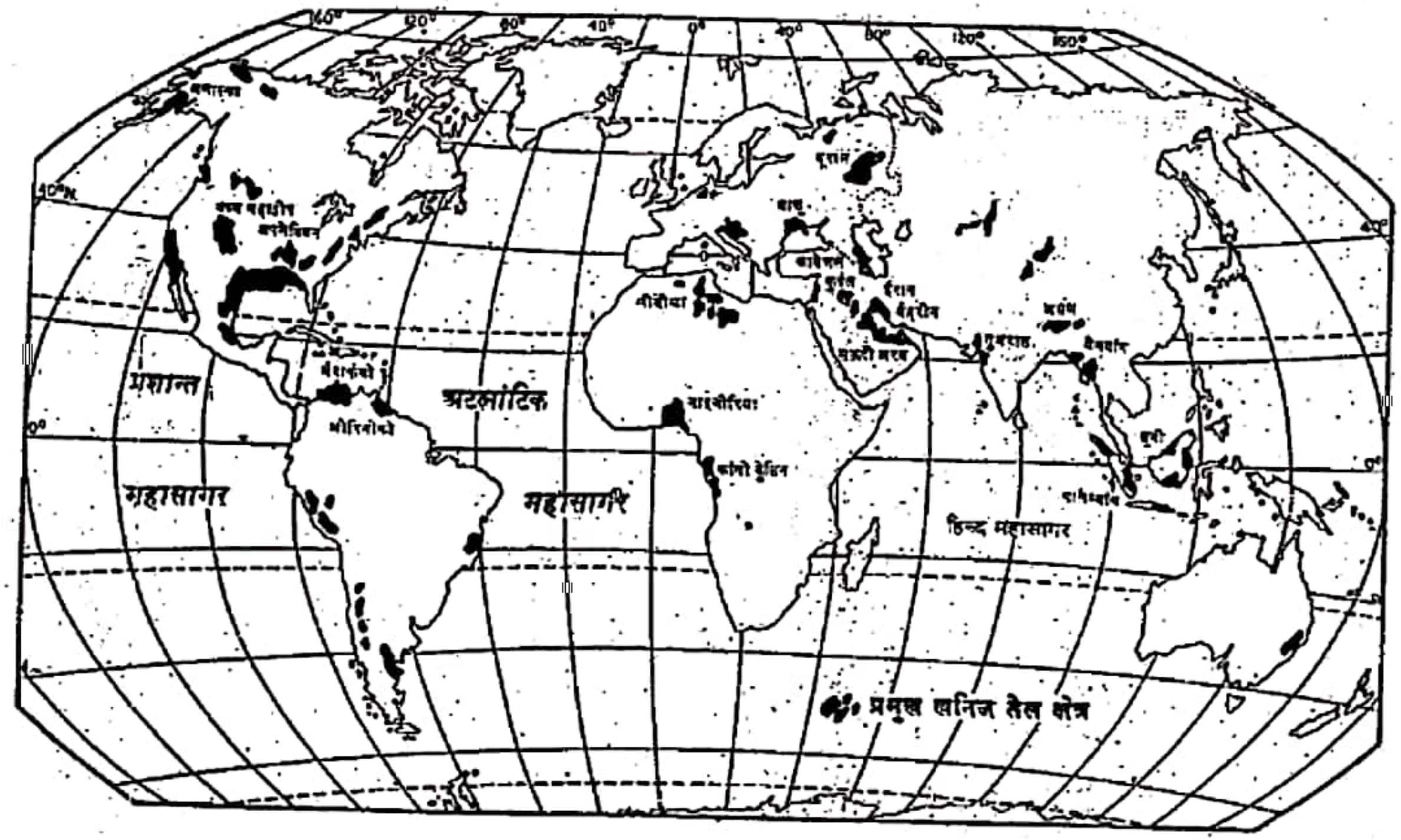

9.2 (घ) खनिज तेल के प्रमुख क्षेत्र

उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका, यूरेशिया और अफ्रीका के ऐसे देशों को मालूम करें जिनमें तेलयुक्त शैल पाए जाते हैं।

उपभोग बहुत कम है। विश्व के कुल निर्यात का 75 प्रतिशत तेल इन देशों से प्राप्त होता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व में तेल का सबसे बड़ा उत्पादक और उपभोक्ता है. लेकिन इसके तेल भंडार विपुल नहीं हैं। पूर्व सोवियत संघ और चीन तेल के संदर्भ में आत्मनिर्भर हैं। यूनाइटेड किंगडम तथा नार्वे के अलावा पश्चिमी यूरोप के देश और जापान मुख्यत: तेल के आयात पर निर्भर हैं। अपने तटों के पास उत्तरी सागर में तेल मिलने के बाद यूनाइटेड किंगडम तथा नार्वे में खनिज तेल का काफी उत्पादन होने लगा है। ये देश खनिज तेल के मामले में न केवल आत्मनिर्भर हैं, बल्कि निर्यात भी करते हैं। वेनेजुएला, लीबिया, अल्जीरिया और इंडोनेशिया तेल के अन्य निर्यातक देश हैं। तेल का उत्पादन कुछ देशों तक ही सीमित है। अत: कोयले की तुलना में तेल का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार अधिक है।

प्राकृतिक गैस

प्राकृतिक गैस तेल के साथ मिलती है। कुछ कुओं से केवल प्राकृतिक गैस बड़ी मात्रा में निकलती है। घरेलू कार्यों के साथ-साथ प्राकृतिक गैस का उपयोग बिजली के उत्पादन में भी होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में प्राकृतिक गैस के विश्व के सबसे बड़े भंडार हैं। यह देश इसका सबसे बड़ा उत्पादक भी है। रूस तथा यूरोपीय देश प्राकृतिक गैस के अन्य उत्पादक हैं। पैट्रोलियम के समान प्राकृतिक गैस का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार नहीं होता है।

विद्युत

कोयले तथा तेल जैसे जीवाश्म ईंधनों के उपयोग से या यूरेनियम जैसे परमाणु खनिजों के उपयोग से बिजली बनाई जाती है। इन खनिजों से ऊष्मा-ऊर्जा मिलती है, जिसे बिजली में बदला जाता है। इसे तापविद्युत कहते हैं। इस शक्ति का उत्पादन, ऐसे खनिजों की उपलब्धि पर निर्भर है। ताप बिजली अनापूर्ति खनिजों पर आधारित है।

गिरते हुए या बहते हुए जल की शक्ति से भी बिजली उत्पन्न की जा सकती है। बिजली उत्पादन के लिए जल प्रपातों का उपयोग किया जाता है। इसे जल-विद्युत कहते हैं। जब तक नदियों में पानी बहता रहेगा तब तक वर्ष-प्रतिवर्ष निरंतर बिजली बनाई जा सकती है। यह शक्ति का संपूर्ति साधन है। जल-विद्युत, तापविद्युत से सस्ती है, क्योंकि उसके उत्पादन में किसी ईंधन या पदार्थ का उपभोग नहीं होता।

जलविद्युत

उत्पादन के लिए सबसे महत्वपूर्ण अनुकूल कारक भूमि का तेज ढाल है, जिस पर होकर नदियाँ बहती हैं। नदी में पूरे वर्ष प्रचुर जल के प्रवाह से जलविद्युत निरंतर मिलती रहती है। यदि किसी नदी के प्रवाह में ऋतुनिष्ठ परिवर्तन होते हैं, तो नदी पर बाँध बनाकर, उसके पीछे बने जलाशय में जल इकट्ठा किया जाता है, ताकि जल की आपूर्ति पूरे वर्ष नियमित बनी रहे। कावेरी पर मैटूर, महानदी पर हीराकुंड तथा सतलुज पर भाखड़ा बाँध जल की आपूर्ति को नियमित रखते हैं। तेज ढाल पर लगाए गए बड़े पाइपों में जल को छोड़ा जाता है। इस प्रकार गिरने वाले पानी की शक्ति से, ढाल के नीचे लगाए गए टरबाइन घूमने लगते हैं और बिजली बनने लगती है। शुष्क ऋतु में जलाशयों में जल के निम्न स्तर के कारण बिजली का उत्पादन नहीं हो सकता। इसीलिए जलविद्युत गृहों तथा ताप

बिजली घरों में उत्पादित बिजली के वितरण के लिए तारों की मिली-जुली लाइनें बनाई गई हैं, ताकि बिना किसी बाधा के बिजली की आपूर्ति होती रहे। इस प्रकार शुष्क ऋतु में जलविद्युत का उत्पादन न होने पर भी ताप बिजली का सहारा रहता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में टैनेसी घाटी योजना तथा भारत में दामोदर घाटी योजना के अंतर्गत कई बाँध तथा शक्ति केंद्र बनाए गए हैं। यद्यपि विगत कुछ वर्षों में अनेक जलविद्युत शक्ति केंद्र बनकर तैयार हुए हैं, लेकिन जलविद्युत शक्ति से, संसार में सभी स्रोतों से उत्पन्न कुल शक्ति का केवल 6.7 प्रतिशत भाग ही मिलता है। दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका में जलविद्युत शक्ति के विकास की बहुत संभावनाएं हैं।

कोयले और तेल की अपेक्षा बिजली का एक सर्वथा अनूठा गुण है कि इसे तारों द्वारा कम खर्चे पर दूर-दूर तक भेजा जा सकता है। ट्रकों, रेलों तथा जहाजों द्वारा कोयले के परिवहन में बहुत व्यय होता है। बिजली के उपयोग के बाद राख और धूल भी नहीं बचते हैं और न ही विषैली गैसें वायुमंडल में फैलती हैं। परिवहन, उद्योगों और घरों में बिजली का खूब उपभोग होता है।

परमाणु शक्ति

रेडियो-धर्मी तत्व जैसे यूरेनियम और थोरियम अपने आप ही विघटित हो जाते हैं, जिससे ऊर्जा का विमोचन होता है। परमाणु शक्ति का यही आधार है। परमाणु बिजलीघरों में इसी ऊर्जा द्वारा बिजली का उत्पादन होता है। संसार में सभी स्रोतों से उत्पन्न कुल शक्ति का 5.6 प्रतिशत भाग परमाणु शक्ति से मिलता है। सन् 1984 में विश्व में 345 परमाणु शक्ति केंद्र थे। इनमें से 70 प्रतिशत परमाणु शक्ति केंद्र पश्चिमी यूरोप तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में थे। परमाणु शक्ति के अन्य प्रमुख उत्पादक देश रूस, यूक्रेन और जापान हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका के थ्री माइल आइलैंड तथा पूर्व सोवियत संघ के चर्नोबल के परमाणु बिजली घर दुर्घटना ग्रस्त हो गए थे। इन दुर्घटनाओं में भारी मात्रा में परमाणु विकिरण हुआ था। इससे परमाणु बिजली घरों की सुरक्षा पर प्रश्न चिह्न लग गए हैं। विगत कुछ वर्षों में परमाणु शक्ति के विकास में कमी आई है। परमाणु कचरे के निपटारे से पर्यावरण को खतरे पैदा हो रहे हैं।

ऊर्जा के अपारंपरिक स्रोत

शक्ति के परंपरागत साधन जैसे कोयला और तेल अनापूर्ति साधन हैं और वे शीघ्रता से घट रहे हैं। कोयले के ज्ञात भंडार तो कुछ शताब्दियों के लिए पर्याप्त भी होंगे, लेकिन तेल के ज्ञात भंडार तो कुछ दशकों में ही खत्म हो जाएँगे। शक्ति की माँग बढ़ती ही जा रही है। अब तो कृषि कार्यों में भी शक्ति की माँग बढ़ रही है, अतः शक्ति के नए स्रोतों जैसे सूर्य, पवन, ज्वार आदि से ऊर्जा प्राप्त करने की खोज जरूरी है। सूर्य, पवन, ज्वार आदि संपूर्ति संसाधन हैं। कई दर्पणों की सहायता से एक ही बिन्दु पर सूर्य की किरणों को संकेन्द्रित करके, सौर ऊर्जा को काम में लाया जा सकता है। सौर ऊर्जा का उपयोग बिजली उत्पादन, घरों को गर्म रखने, पानी गर्म करने तथा उद्योगों में गर्म हवा के लिए किया जाने लगा है। कृत्रिम उपग्रह और अंतरिक्ष केंद्रों की शक्ति का स्रोत सौर ऊर्जा ही है। सौर ऊर्जा केवल धूप के समय ही मिल सकती है।

सौर ऊर्जा के उपयोग को व्यापक बनाने के लिए, कई उपाय करने होंगे, जैसे तकनीकी के विकास द्वारा सौर ऊर्जा से उत्पादित बिजली की लागत को कम करना तथा सौर ऊर्जा का संग्रह करना ताकि बदली और रात के समय इसका उपयोग हो सके। ऐसा होने पर, सौर ऊर्जा से निरंतर तथा विपुल मात्रा में शक्ति मिलती रहेगी।

अनाज पीसने के लिए मनुष्य पवन चक्कियों का उपयोग करता रहा है। नीदरलैंड में बिजली उत्पादन के लिए अनेक पवन चक्कियाँ लगाई गई हैं। पवन चक्कियों की कार्यक्षमता पवन के वेग पर निर्भर है। पवन का वेग बदलता रहता है। अतः इनसे बिजली की निरंतर आपूर्ति शायद संभव नहीं होगी। अतः पवन चक्कियाँ केवल वहीं लगाई जा सकती हैं जहाँ पवनें निरंतर तथा वेग से चलती हैं। पवन चक्कियों को जीवाश्म ईंधन से चलने वाले बिजलीघरों से या जलविद्युत शक्ति केंद्रों से जोड़ना पड़ेगा, ताकि पवन का वेग कम होने पर अन्य स्रोतों से बिजली मिलती रहे।

ज्वारीय शक्ति का उत्पादन, ज्वारीय क्रिया में समुद्रतल के ऊपर उठने या गिरने को, काम में लाने पर निर्भर करता है। संकीर्ण ज्वारनदमुखों में ज्वार के समय पानी तेजी से ऊपर को चढ़ता है और भाटे के समय पानी तेजी से उतरता है। ज्वारीय ऊर्जा केंद्रों का विकास केवल उन्हीं कुछ स्थानों पर किया जा सकता है, जहाँ ज्वार की ऊँचाई अधिक होती है।

भूतापीय शक्ति में पृथ्वी के भीतरी भागों की ऊष्मा का उपयोग किया जाता है। अतः भूतापीय ऊर्जा का विकास ज्वालामुखी प्रदेशों या गर्म जल के झरनों या गीज़र वाले प्रदेशों में ही संभव है। ऐसे प्रदेशों में शीतल जल गहरी दरारों से होकर पृथ्वी के अंदर चला जाता है और वहाँ तप्त शैलों के संपर्क में गर्म हो जाता है और फिर वह स्टीम या उबलते हुए पानी के रूप में बड़ी तेजी से बाहर निकलता है। संयुक्त राज्य अमेरिका, इटली और न्यूज़ीलैंड में भूतापीय ऊर्जा पर आधारित बिजली घर बनाए गए हैं।

विकासशील देशों में संसार की लगभग आधी जनसंख्या रहती है। यहाँ के लोग पौधों तथा जंतुओं से प्राप्त पदार्थों पर आधारित ईंधनों का उपयोग करते हैं। कुछ अफ्रीकी देशों में ऊर्जा के उपभोग का 90 प्रतिशत भाग जैव पदार्थों के ईंधनों से मिलता है। खाना बनाने के लिए जलाऊ लकड़ी इकट्ठी करना, गाँवों में प्रतिदिन का काम है। जलाऊ लकड़ी तथा इमारती लकड़ी के लिए पेड़ों और झाड़ियों की अंधाधुंध कटाई से गाँवों और शहरों के पास-पड़ोस में पौधों का आवरण हट गया है। जलाऊ लकड़ी के अभाव और इसकी ऊँची कीमतों के कारण लोगों के लिए एक वक्त का खाना बनाना भी मुश्किल हो गया है। एशिया के कुछ देशों में जैसे चीन और भारत में घरेलू ईंधन के लिए गोबर और फसलों के अवशेषों का उपयोग किया जाता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में जलाऊ लकड़ी की कमी की समस्या का हल, खेती के अयोग्य भूमि पर पेड़ लगाकर, उन्हें सुव्यवस्थित ढंग से काटकर और पुनः वृक्ष लगाकर किया जा सकता है। इस तरह उचित मूल्य पर जलाऊ लकड़ी सदा मिलती रहेगी। बिना धुएँ वाले चूल्हों के उपयोग से जलाऊ लकड़ी का उपभोग भी घटेगा।

अन्य खनिज

अन्य खनिजों में धात्विक खनिज जैसे लोहा, मैंगनीज़, ताँबा और अल्युमिनियम

महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये औद्योगिक विकास के आधार हैं। लौह अयस्क के विपुल भंडार उपलब्ध हैं। ब्राजील, भारत, यूक्रेन और रूस में उत्तम कोटि के लौह अयस्क के विपुल भंडार हैं। ब्राजील, भारत और कनाडा बड़ी मात्रा में लौह अयस्क का निर्यात करते हैं। पश्चिमी यूरोप के देश तथा जापान लौह अयस्क के प्रमुख आयातक देश हैं। लोहा और इस्पात बनाने के लिए उत्तम कोटि के कोयले और मैंगनीज की आवश्यकता होती है। रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, चीन तथा जर्मनी इस्पात के उत्पादन में अग्रणी देश हैं। लोहा तथा इस्पात उद्योग कोयले के क्षेत्रों के निकट या लौह अयस्क की खानों के समीप अथवा उस स्थान पर जहाँ कोयला और अन्य आवश्यक कच्चे पदार्थ, सड़क और रेल परिवहन द्वारा इकट्ठे हो सकें, स्थापित किए जा सकते हैं।

मैंगनीज का उपयोग इस्पात और मिश्र-धातु बनाने के लिए किया जाता है। संसार के कुल मैंगनीज उत्पादन का 50 प्रतिशत पूर्व सोवियत संघ पैदा करता है। इसके अन्य प्रमुख उत्पादक देश दक्षिण अफ्रीका गणतंत्र, ब्राजील, गैबन, चीन और भारत हैं।

अल्युमिनियम बाक्साइट से परिष्कृत किया जाता है। ब्राक्साइट शैलों के अपक्षय का उत्पाद है। आस्ट्रेलिया, गुयाना, जमैका, ब्राजील और पूर्व सोवियत संघ इसके प्रमुख उत्पादक हैं। पूर्व सोवियत संघ को छोड़कर ये सभी देश बाक्साइट का निर्यात करते हैं। बाक्साइट को परिष्कृत करके अल्युमिनियम बनाने के लिए भारी मात्रा में बिजली खर्च होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका, पूर्व सोवियत संघ और कनाडा अल्युमिनियम के मुख्य उत्पादक देश हैं।

तांबा एक महत्वपूर्ण धातु है। इसका उपयोग बिजली के तार बनाने में किया जाता है। तांबे की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए इसके पर्याप्त भंडार नहीं हैं। चिली, संयुक्त राज्य अमेरिका, रूस, कजाखस्तान, कनाडा, जाम्बिया कांगो लोक गणतंत्र के प्रमुख उत्पादक देश हैं।

उद्योग

हम पिछले अध्याय में पढ़ चुके हैं कि उद्योग प्राथमिक कच्चे पदार्थों के संसाधन पर आधारित होते हैं। ये कच्चे माल, कृषि, पशु-पालन या खानिजों से मिल सकते हैं। कच्चे माल को संसाधित करने में भारी मात्रा में ऊर्जा की आवश्यकता होती है। शक्ति के साधनों की कमी वाले देशों में उद्योगों का विकास नहीं हुआ है। किसी प्रदेश में उद्योगों के विकास के लिए सड़क, रेल और वायु परिवहन की सुविधाएँ अत्यावश्यक हैं। समुद्र तट पर बसे पत्तन उद्योगों की स्थिति के लिये सर्वोत्तम हैं, क्योंकि यहाँ कच्चे माल के आयात में तथा तैयार वस्तुओं के निर्यात में सुविधा रहती है। हीरा तराशने, घड़ियाँ बनाने जैसे कई उद्योगों में कारीगरों का वेतन बहुत ऊँचा होता है। अतः ये उद्योग वहीं पनपते हैं, जहाँ कुशल कारीगर सस्ते में मिल सकते हैं।

संसार के प्रमुख औद्योगिक प्रदेश, उत्तर-पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका के अटलांटिक तट से लेकर "ग्रेटलेक्स" के बीच के क्षेत्र में, युनाइटेड किंगडम सहित पश्चिमी यूरोप के देशों में रूस, यूक्रेन, चीन और जापान में स्थित हैं। लोहा और इस्पात, तेल परिष्करणशालाएँ, वस्त्र निर्माण उद्योग ऐसे उत्पाद बनाते हैं, जो दूसरे उद्योगों में कच्चे माल के रूप में उपयोग में लाए जाते हैं।

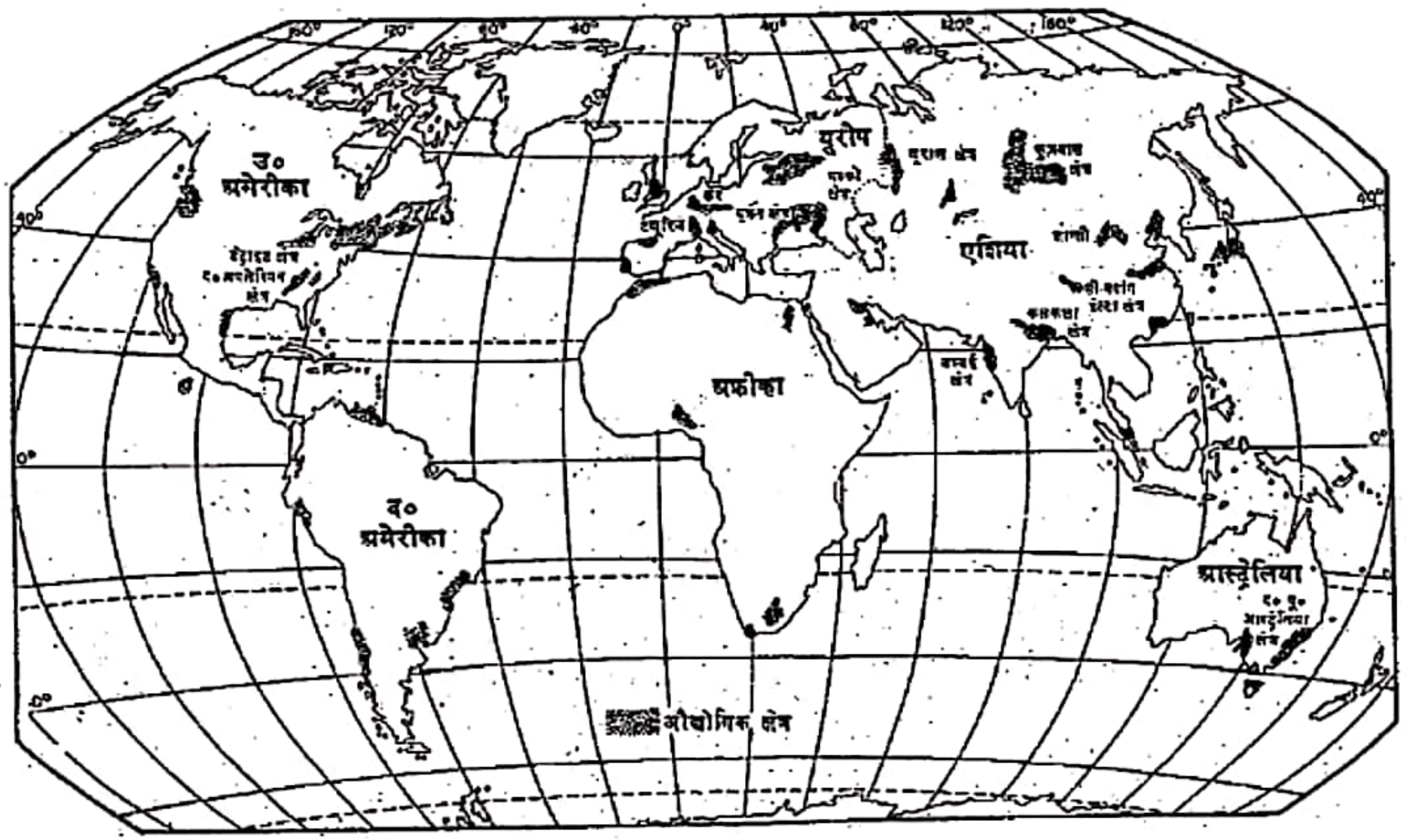

9.3 संसार के प्रमुख औद्योगिक प्रदेश
हर एक ऐसे प्रदेश में कौन से देश अथवा उनके भाग और प्रसिद्ध औद्योगिक केन्द्र सम्मिलित हैं।

उदाहरण के लिए वस्त्र निर्माण उद्योगों में बना धागा और कपड़ा कई गौण उद्योगों के विकास का आधार बन सकता है। इनमें होज़ियरी, वस्त्रों की रंगाई, धुलाई तथा छपाई और सिले सिलाए वस्त्रों के गौण उद्योग प्रमुख हैं। ऐसे उद्योगों के नाम लिखिए जो एक-दूसरे से संबंधित हैं। औद्योगीकरण से बड़े नगरों के विकास को प्रोत्साहन मिलता है।

संसाधनों का संरक्षण

पिछले दशकों में जनसंख्या की तेज वृद्धि और प्रति व्यक्ति उपभोग में वृद्धि के परिणामस्वरूप पृथ्वी पर उपलब्ध सीमित साधनों की माँग बहुत बढ़ गई है। आर्थिक विकास से सब प्रकार के साधनों का उपभोग बढ़ गया है, जिससे मूल्यों में वृद्धि हुई है। विकसित देशों को अपने आर्थिक विकास के लिए आवश्यक दुर्लभ साधनों की खरीदारी भारी पड़ रही है।

घने बसे देशों में भूमि दुर्लभ हो गई है। कृषि के लिए अत्यंत उपयोगी भूमि पर भी मकान बन रहे हैं या उद्योग खड़े किये जा रहे हैं। अब यह बहुत आवश्यक हो गया है कि उपलब्ध भूमि का सर्वोत्तम उपयोग किया जाए। मृदा अपरदन, वर्षा के जल से होने वाले नालीदार कटाव, खानों के कचरों के ढेर, नगरों के ठोस कचरे आदि से, भूमि अन्य उपयोगों के लिए बेकार होती जा रही है। यह हम पहले ही पढ़ चुके हैं कि मृदा संसाधनों का संरक्षण कितना आवश्यक है।

जल संसाधनों के संरक्षण की बड़ी आवश्यकता है। यह कार्य भूपृष्ठ पर उपलब्ध जल के समुचित उपयोग द्वारा किया जा सकता है। नदियों को परस्पर ज़ोड़ा जा सकता है, ताकि एक नदी का अतिरिक्त जल दूसरी नदी में छोड़ा जा सके। उदाहरण के लिए केरल में बहने वाली पेरियार नदी का जल तमिलनाडु की वेगाई नदी में लाया गया है। भूमिगत जल के अत्यधिक उपभोग के कारण नीचे जाते हुए जल स्तर को रोकना जरूरी है। इसके लिए भूपृष्ठ पर वर्षा जल इकट्ठा करके ऐसे जलाशय बनाने होंगे, जिनका जल भूमि में रिस जाए और भूमिगत जल की मात्रा बढ़ जाए। नदियों और तालाबों से निकली वर्तमान नहरों में पानी की बहुत बर्बादी होती है। इनके पानी का केवल 30 प्रतिशत भाग ही पौधों के उपयोग में आता है। शेष जल रिसाव या वाष्पीकरण से नष्ट हो जाता है। सिंचाई के आधुनिक तरीके जैसे स्प्रिंकल सिंचाई या ड्रिप सिंचाई में कम पानी खर्च होता है। उद्योगों और वितरण में होने वाली पानी की बर्बादी को भी रोका जा सकता है। लोहा और इस्पात उद्योग, कागज उद्योग तथा अन्य उद्योग पानी की भारी मात्रा का उपभोग करते हैं। इन उद्योगों से निकले गंदे पानी का उपचार करके पुनः उपभोग के योग्य बनाया जा सकता है।

बंजर और बेकार पड़ी भूमि में पेड़ लगाकर तथा वर्तमान वन क्षेत्र को यथास्थिति में रखकर, जैव संसाधनों का संरक्षण किया जा सकता है। राष्ट्रीय उद्यानों और अभयारण्यों की स्थापना के द्वारा वन्य पौधों और जंतुओं का संरक्षण उनके प्राकृतिक आवासों में ही किया जा सकता है। अधिक उपज देने वाले तथा कीटरोधी फसलों के पौधों के प्रजनन और विकास के लिए जंगली पौधे बहुत उपयोगी हो सकते हैं।

खनिज जैसे अनापूर्ति साधनों की बड़ी माँग

है। धातुओं से बनी पुरानी बेकार वस्तुओं को गला कर पुनः उपयोग में लाया जा सकता है। इस विधि से लोहे और अन्य धातुओं से बनी वस्तुओं का पुनः उपयोग करना आसान है। ऐसी वस्तुओं के परिष्करण में, अयस्कों के परिष्करण की तुलना में, कम ऊर्जा खर्च होती है। कुछ उपयोगों में धातुओं के स्थान पर लकड़ी, प्लास्टिक, रबड़ आदि को काम में लाया जा सकता है।

ऊर्जा के संपूर्ति साधनों के अधिकाधिक उपयोग से ऊर्जा के अनापूर्ति साधनों का संरक्षण हो सकता है। मोटर वाहनों के इंजनों, बिजली के मोटरों तथा अन्य मशीनों की कार्यक्षमता बढ़ाकर भी ऊर्जा के साधनों का संरक्षण संभव है। अधिक कार्यक्षमता वाली मशीनों में ऊर्जा कम खर्च होती है। तेल के घटते भंडारों तथा वनों की अनाप-शनाप कटाई से संसार में ऊर्जा का संकट पैदा हो गया है। आज घरेलू तथा औद्योगिक उपभोक्ताओं के उपयोग में तथा वितरण आदि में होने वाली ऊर्जा की बर्बादी को, संरक्षण द्वारा कम करना अनिवार्य हो गया है।

स्वाध्याय

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए –
   (i) संसाधन किसे कहते हैं?
   (ii) मानव संसाधनों के महत्व की विवेचना कीजिए।
   (iii) भूमिगत जल के उपयोग में क्या समस्याएँ आती हैं?
   (iv) किसी प्रदेश में कृषि को प्रोत्साहन देने वाले कारकों के नाम लिखिए।
   (v) दूध-उत्पादों के प्रमुख निर्यातक देशों के नाम लिखिए।
   (vi) वन संसाधनों के महत्व का वर्णन कीजिए।
   (vii) संसार के प्रमुख मत्स्य ग्रहण क्षेत्रों के नाम लिखिए।
   (viii) खनन को प्रोत्साहन देने वाले कारकों की विवेचना कीजिए।
   (ix) शक्ति के विभिन्न साधनों के सापेक्षिक महत्व पर प्रकाश डालिए।
   (x) शक्ति के संपूर्ति साधनों के नाम लिखिए।
   (xi) साधनों के संरक्षण की आवश्यकता की विवेचना कीजिए।

2. अंतर स्पष्ट करिए –
   (i) संपूर्ति तथा अनापूर्ति साधन।
   (ii) ताप विद्युत तथा जल विद्युत।

(iii) शैल और अयस्क।
(iv) संसाधन और सुरक्षित भंडार।

3. निम्नलिखित में से प्रत्येक के लिए एक-एक पारिभाषिक शब्द लिखिए –
(i) संसाधन, जो कुछ वर्षों में समाप्त हो जाते हैं।
(ii) संसाधनों का वह अंश, जिसे आर्थिक दृष्टि से विकसित किया जा सकता है।
(iii) शैल, जिसमें कोई विशेष धातु संकेंद्रित रूप में पायी जाती है।
(iv) कोयला, जिसमें 90 प्रतिशत से लेकर 95 प्रतिशत तक कार्बन का अंश होता है।

4. भूमि के उपयोग को प्रभावित करने वाले कारकों का विवेचन कीजिए।
5. जल संसाधनों के महत्व का वर्णन कीजिए।
6. संसाधनों के संरक्षण की आवश्यकता की विवेचना कीजिए।

स्वयं करें और खोजें

1. अपने पास-पड़ोस में उपयोग में लाए जा रहे प्राकृतिक संसाधनों का पता लगाइए।
2. अपने स्कूल के आस-पास के क्षेत्र में भूमि के उपयोग में हुए परिवर्तनों का अध्ययन करके, एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।
3. अपने क्षेत्र के जल आपूर्ति के साधनों की जानकारी प्राप्त कीजिए। क्या वे बढ़ती हुई आवश्यकता को पूरी करने के लिए पर्याप्त हैं?
4. पिछले दस वर्षों में भारत के कोयले, पैट्रोलियम तथा जलविद्युत उत्पादन के आँकड़े एकत्र करके दण्ड आरेख बनाइए।
5. संसार का मानचित्र बनाकर उसमें कोयले के प्रमुख क्षेत्रों तथा तेल क्षेत्रों का वितरण दिखाइए।

पठनीय पुस्तकें

जोसेफ एम. मोरान तथा अन्य — इंट्रोडक्शन टु इनवायरनमेंटल साइंस, डब्ल्यू.एच फ्रीमैन: सेन फ्रांसिस्को।

10

प्राकृतिक प्रदेशों में मानव जीवन

पिछले अध्यायों में हम पर्यावरण के विभिन्न रूपों तथा उन पर मानव के प्रभाव की विवेचना कर चुके हैं। यद्यपि पर्यावरण की दशाओं में पर्याप्त विविधता दिखाई पड़ती है, फिर भी उनके वितरण के कुछ निश्चित प्रारूप पहचाने जा सकते हैं और उनकी विभिन्न महाद्वीपों में पुनरावृत्ति होती है। इन प्रारूपों के आधारभूत तत्व जलवायु की दशाएँ हैं। किसी क्षेत्र की जलवायु, उसकी मृदा के प्रकारों तथा वनस्पति के आवरण को प्रभावित करती है। जलवायु के प्रमुख प्रकारों के वितरण के आधार पर ही संसार के प्रमुख प्राकृतिक प्रदेशों को निर्धारित किया गया है।

प्राकृतिक प्रदेश

प्राकृतिक प्रदेश वह है, जिसकी जलवायु, मृदा और वनस्पति में एकरूपता मिलती है। प्रत्येक प्रदेश की पर्यावरण की दशाओं में अपेक्षाकृत समानता होती है। एक प्राकृतिक प्रदेश में पर्यावरणीय भिन्नताएँ बहुत कम होती हैं, जबकि दो अलग-अलग प्रदेश में ये भिन्नताएँ बहुत अधिक होती हैं। प्राकृतिक प्रदेशों का निर्धारण करते समय उच्चावच के लक्षणों द्वारा उत्पन्न छोटी मोटी भिन्नताओं पर ध्यान नहीं दिया जाता। ऊँची पर्वत श्रेणियों तथा पठारों जैसे हिमालय और तिब्बत को पृथक प्रदेश माना जाता है, क्योंकि वहाँ पर्यावरणीय दशाओं में ऊँचाई के साथ परिवर्तन आ जाता है। यद्यपि निकटवर्ती दो प्रदेशों जैसे विषुवतीय वन तथा उष्णकटिबंधीय घास भूमियों के बीच असाधारण विषमताएँ दिखाई पड़ती हैं, लेकिन उनको अलग करने वाली सुनिश्चित सीमा रेखा नहीं होती। दो प्रदेशों की सीमाएँ, वास्तव में चौड़े परिवर्ती क्षेत्र होते हैं, जिनमें एक प्रदेश के प्रमुख लक्षण क्रमशः विलुप्त होते जाते हैं तथा उनका स्थान दूसरे निकटवर्ती प्रदेश के लक्षण ले लेते हैं। संसार को प्राकृतिक प्रदेशों में विभाजित करने का उद्देश्य, तुलनात्मक अध्ययन के लिए, एक प्रारूप प्रस्तुत करना है। संसार में अनेक पर्यावरणीय दशाएँ पाई जाती हैं, परन्तु इन विविधताओं को मोटे तौर पर कुछ प्राकृतिक प्रदेशों के रूप में व्यक्त किया गया है।

संसार को प्रमुख प्राकृतिक प्रदेशों में विभाजित करने का आधार जलवायु है, क्योंकि जलवायु ही मृदा, जंतुओं तथा वनस्पति को प्रभावित करती है। लोगों की जीवन पद्धति का संबंध जलवायु से है। यह सबंध तब और स्पष्ट हो जाता है, जब बड़ी संख्या में लोग केवल प्राथमिक व्यवसायों में लगे हों। प्रत्येक जलवायु प्रदेश में कुछ निश्चित फ़सलों की खेती के लिए

ही अनुकूल दशाएँ होती हैं, क्योंकि प्रत्येक फसल की तापमान के उतार-चढ़ाव को सहन करने की एक सीमा होती है तथा उसकी जल आपूर्ति की कम से कम आवश्यकता भी निश्चित होती है। जलवायु की दशाओं को प्राकृतिक वनस्पति के रूप में स्पष्ट देखा जा सकता है। अत: कई प्रमुख प्राकृतिक प्रदेशों के नाम, उनमें पाई जाने वाली वनस्पति के नाम पर रखे गए हैं।

पर्यावरण और मानवीय अनुक्रियाएँ

प्राकृतिक पर्यावरण के प्रभावी कारक होने का कारण पहले ऐसा माना जाता था कि समान पर्यावरण में मानव की समान अनुक्रियाएँ होंगी। ऐसा विश्वास था कि मानवीय क्रिया-कलाप पर्यावरण के प्रतिबंधों से प्रभावित होते हैं। लेकिन आज विज्ञान और तकनीकी में विकास के द्वारा मनुष्य ने प्राकृतिक पर्यावरण द्वारा लगाए प्रतिबंधों को हटाना सीख लिया है। अब मानव पूरी तरह से पर्यावरण पर आश्रित नहीं है। उदाहरण के लिए, उष्णकटिबंधीय मरुस्थलीय प्रदेश के सऊदी अरब में पर्यावरण को एक सीमा तक अपने अनुकूल बना लिया गया है। वहाँ वातानुकूलित मकान बनाए गए हैं, पीने के लिए समुद्र के खारे जल को मीठे जल में बदला गया है तथा विदेशों से खाद्यान्न तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ आयात द्वारा प्राप्त की गई हैं। नील घाटी में सिचाई की आधुनिक सुविधाओं द्वारा कृषि भूमि का क्षेत्रफल बढ़ा लिया गया है। मनुष्य, अब प्राकृतिक पर्यावरण के प्रतिबंधों को कुछ सीमा तक दूर कर सकता है। परंतु आर्थिक, सामाजिक और अन्य प्रतिबंध हमारे विकल्पों को सीमित कर देते हैं। यद्यपि टुण्ड्रा प्रदेश के 'ग्लास हाउसों' में सब्जियाँ पैदा की जा सकती हैं, लेकिन ऐसी खेती के उत्पादों का लागत मूल्य बहुत ऊँचा होता है, अत: यह खेती सब लोग नहीं कर सकते। अन्य प्रदेशों से सब्जियाँ मँगाना ही सस्ता पड़ता है।

प्राकृतिक पर्यावरण अनेक संभावनाएँ प्रदान करता है। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं, आकांक्षाओं तथा तकनीकी विकास के स्तर के अनुसार अपने लिए अनुकूलतम संभावनाओं का चुनाव करने के लिए स्वतंत्र है। यद्यपि मनुष्य शारीरिक दृष्टि से सर्वत्र एक समान है, लेकिन उसकी आवश्यकताएँ, आकांक्षाएँ और उपभोग के तौर तरीके भिन्न-भिन्न हैं। ये भिन्नताएँ उसकी सामाजिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और जीवन स्तर के कारण होती हैं। इसीलिए प्राकृतिक प्रदेश में शामिल सब क्षेत्रों में मानवीय अनुक्रियाएँ एक जैसी नहीं हैं। उदाहरण के लिए उष्णकटिबंधीय वर्षा वनों के पर्यावरण में मानवीय अनुक्रियाएँ भिन्न-भिन्न हैं। जायरे बेसिन में लोग भोजन संग्रहण, आखेट और मत्स्य ग्रहण में लगे हैं, जबकि इसके विपरीत मलेशिया और इंडोनेशिया में रोपण कृषि की जाती है।

पर्यावरण के प्रति मनुष्य की अनुक्रियाओं में समय के अनुसार भी परिवर्तन हो जाता है। आस्ट्रेलिया में यूरोपवासियों के आने से पूर्व, यहीं की आदिवासी जातियाँ चलवासी जीवन बिताती थीं और सारा महाद्वीप उनके अधिकार में था। महाद्वीप के साधनों का उनके लिए कोई महत्व नहीं था। ब्रिटेन और पश्चिमी यूरोप के देशों के लोग वहाँ आकर जब बसने लगे, तब कृषि, पशुचारण तथा खनिज साधनों का विकास प्रारंभ हुआ। इसका कारण यह है कि यूरोप के प्रवासियों की आवश्यकताएँ और आकांक्षाएँ तथा उनका तकनीकी ज्ञान आदिवासियों से बिल्कुल भिन्न

था। इस उदाहरण में प्रकृति के उपहार ज्यों के त्यों रहे, केवल मनुष्य बदला। मनुष्य ने प्रकृति के उपहारों को मूल्यवान बनाया, उनका न केवल स्वयं उपयोग किया, अपितु अन्य देशों को निर्यात भी किया।

अगले पृष्ठों में प्रत्येक मुख्य प्राकृतिक प्रदेश के प्राकृतिक पर्यावरण एवं उसके प्रति बदलती मानवीय अनुक्रियाओं का वर्णन किया गया है। प्रमुख प्राकृतिक प्रदेश, संसार के प्रमुख जलवायु प्रदेशों तथा वनस्पति पेटियों के अनुरूप हैं।

1. विषुवतीय प्रदेश

(क) प्राकृतिक पर्यावरण: विषुवतीय प्रदेश में जलवायु वर्ष भर गर्म और आर्द्र रहती है। वर्ष में कोई शुष्क ऋतु नहीं होती है। वार्षिक तापांतर कम रहता है। ऋतुनिष्ठ विषमताएं बहुत कम हैं। निरंतर गर्म और आर्द्र जलवायु के कारण यहाँ मनुष्य अधिक देर तक काम नहीं कर पाता।

इस प्रदेश में लाल और पीली अनुपजाऊ मिट्टियाँ पाई जाती हैं। भारी वर्षा के कारण इन

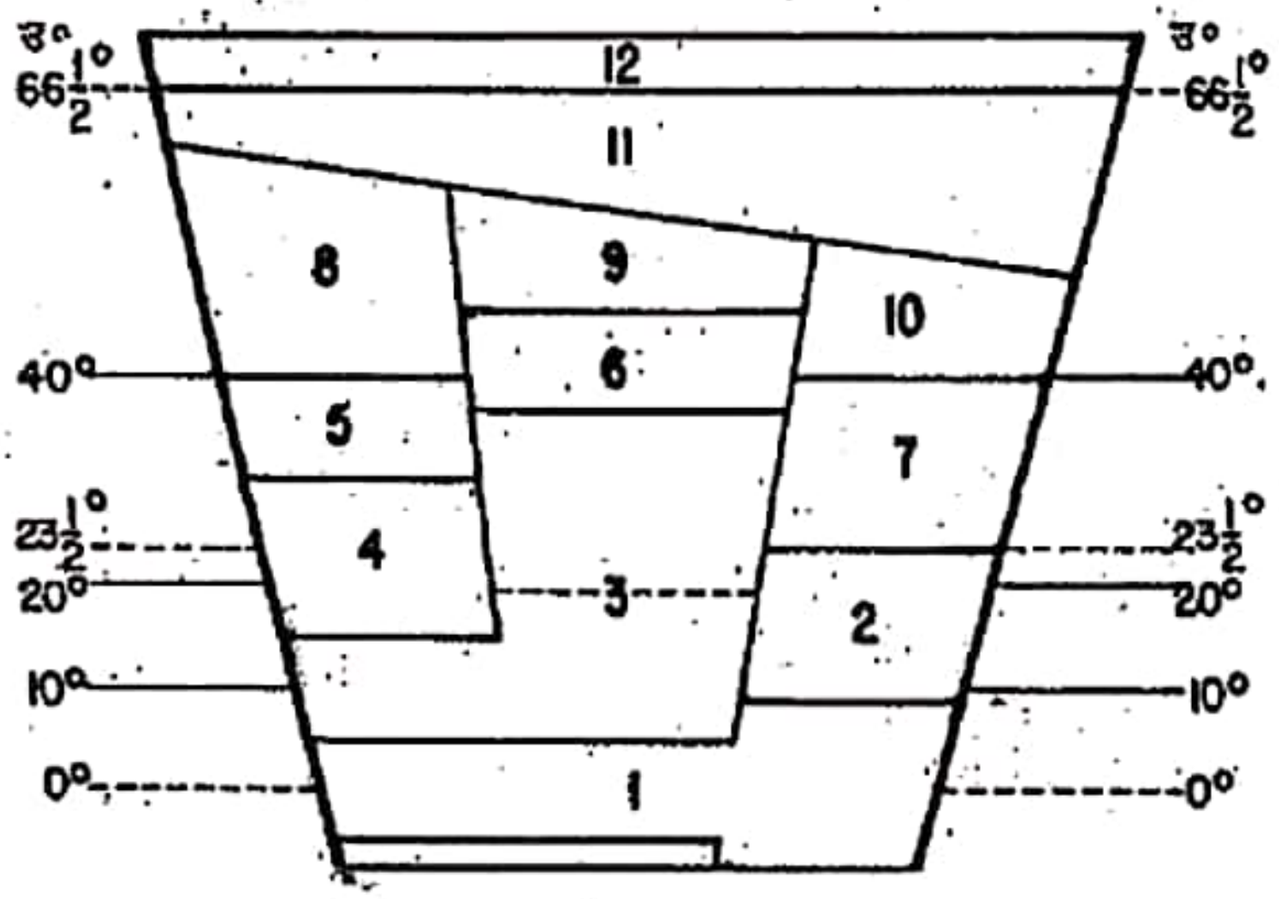

संसार के प्रमुख प्राकृतिक प्रदेश

1. विषुवतीय प्रदेश
2. उष्ण कटिबंधीय पूर्वी सीमान्त
3. उष्ण कटिबंधीय घास भूमियाँ (सवाना)
4. उष्ण कटिबंधीय मरुस्थल
5. भूमध्य सागरीय प्रदेश
6. मरुस्थल (मध्य अक्षांशीय)
7. कोष्ण पूर्वी सीमान्त (मध्य अक्षांशीय)
8. शीतल पूर्वी सीमान्त (मध्य अक्षांशीय)
9. घास भूमियाँ (मध्य अक्षांशीय)
10. शीतलपरिषमी सीमान्त (मध्य अक्षांशीय)
11. टैगा प्रदेश
12. टुंड्रा प्रदेश

10.1 संसार के प्रमुख प्राकृतिक प्रदेशों को दिखानेवाला व्यवस्था-चित्र
संसार के मानचित्र पर प्रमुख प्राकृतिक प्रदेशों की स्थिति दर्शाने के लिए यह चित्र बड़ा सहायक है।

मिट्टियों के उपजाऊ तत्व निक्षालन क्रिया द्वारा मिट्टी की निचली परतों मे चले जाते हैं। यहाँ निचले और गहरे भूमि भागों में सदा पानी भरा रहता है। उष्णकटिबंधीय सदाहरित वन यहाँ की वनस्पति है। इन वनों में वृक्षों की अनेक जातियाँ पाई जाती हैं। पेड़ खूब ऊँचे होते हैं। इनकी लकड़ी कठोर होती है। ये पेड़ इतने पास-पास उगे होते हैं कि ऊपर एक विशाल छतरी सी बन जाती है। ऊँचे पेड़ों के बीच में छोटे पौधे भी उगते हैं। वृक्षों के नाचे घनी तलझाड़ियाँ पाई जाती हैं।

(ख) मानवीय अनुक्रियाएँ: कुछ सुगम्य क्षेत्रों को छोड़ कर विषुवतीय प्रदेश अपनी मूल प्राकृतिक अवस्था में है। इस प्रदेश में मलेरिया, पीला बुखार तथा अन्य उष्णकटिबंधीय बीमारियाँ काफी फैलती हैं। पशुओं तथा फसलों पर कीड़ों तथा नाशक जीवों के हमले होते रहते हैं। नाव्य नदियों तथा कुछ प्रमुख सड़कों के आसपास के क्षेत्रों को छोड़कर ये घने वन दुर्गम ही बने हुए हैं। इस प्रदेश में सड़कों और रेल मार्गों के निर्माण तथा रख-रखाव में भारी व्यय करना पड़ता है। बस्तियाँ छोटी और एक दूसरे से बहुत दूर होती हैं।

दक्षिण अमेरिका के अमेजन बेसिन तथा अफ्रीका के कांगो बेसिन में जनजातियाँ रहती हैं। वे वनों में साफ किए गए छोटे से क्षेत्रों में रहती हैं। स्थानांतरी कृषि के साथ-साथ, आखेट, भोजन-संग्रहण तथा-मछली-पकड़ना, यहाँ के निवासियों के मुख्य व्यवसाय हैं। स्थानांतरी कृषि के लिए साफ की गई वन भूमि में पेड़-पौधे पुनः बड़ी जल्दी उग आते हैं। अतः उन्हें वह क्षेत्र छोड़कर अन्यत्र जाना पड़ता है। दूसरी जगह जा कर वे फिर नई वन भूमि का छोटा सा टुकड़ा साफ करके खेती करते हैं। यहाँ जनसंख्या का घनत्व बहुत कम है, क्योंकि इस प्रकार की जीवन शैली में प्रत्येक जनजाति समूह के निर्वाह के लिए भी विशाल क्षेत्र की आवश्यकता होती है।

इंडोनेशिया देश का जावा द्वीप, विषुवतीय प्रदेश के अन्य क्षेत्रों से बिल्कुल भिन्न है। यहाँ ज्वालामुखीय उपजाऊ मिट्टी पाई जाती है। अतः इस द्वीप में किसान शताब्दियों से खेती कर रहे हैं। पहाड़ी ढालों के सीढ़ीदार खेतों में तथा निम्न भूमि भागों में किसान गहन निर्वाह कृषि करते हैं। जावा की जनसंख्या का औसत घनत्व 1000 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से भी अधिक है।

मलेशिया, श्री लंका और इंडोनेशिया में रोपण कृषि का विकास हुआ है। उसी पर्यावरण में यह दूसरे प्रकार की मानवीय अनुक्रिया का उदाहरण है। यूरोप के उपनिवेशवादियों ने यहाँ के विशाल क्षेत्रों में रबड़, चाय आदि के बड़े-बड़े बागान लगाए हैं। रोपण कृषि को विकसित करने में उनका मुख्य उद्देश्य यूरोपीय बाजारों के लिए रबड़, चाय आदि उत्पाद उपलब्ध कराना था।

2. उष्णकटिबंधीय पूर्वी सीमांत

(क) प्राकृतिक पर्यावरण: इस प्रदेश में 10° से 30° उत्तरी और दक्षिणी अक्षांशों के बीच स्थित महाद्वीपों के पूर्वी सीमांत शामिल हैं। इस प्रदेश के कुछ भागों में विशेष प्रकार की मानसूनी जलवायु पाई जाती है, जिसमें ऋतुओं के अनुसार पवनों की दिशाएँ उलट जाती हैं। भारत, दक्षिण पूर्व एशिया, पूर्वी अफ्रीका तथा उत्तरी आस्ट्रेलिया में मानसूनी जलवायु पाई जाती है। शीत ऋतु में इन प्रदेशों में संमार्गी पवनें चलती हैं

तथा ग्रीष्म ऋतु में विपरीत दिशा वाली मानसून पवनें चालती हैं। पूर्वी ब्राजील, मध्य अमेरिका, तथा दक्षिण अफ्रीका के नैटाल तट के क्षेत्रों में पूरे वर्ष संमार्गी पवनें चलती हैं। तटीय प्रदेशों और पर्वतीय भागों के अलावा प्रदेश के सभी क्षेत्रों में साधारण वर्षा होती है। वर्षा सामान्यतः ग्रीष्म ऋतु में ही होती है। इस प्रदेश में सामान्यतः लेटराइट मिट्टी पाई जाती है, लेकिन नदी घाटियों में जलोढ़ मिट्टियाँ मिलती हैं। उष्ण कटिबंधीय पर्णपाती वन यहाँ की वनस्पति हैं। ये वन विषुवतीय वनों की तुलना में कम घने होते हैं।

(ख) मानवीय अनुक्रियाएँ: इस प्रदेश के मैदानों और नदियों की घाटियों में उपजाऊ मिट्टियाँ मिलती हैं। यहाँ जल भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। यहाँ गहन कृषि की जाती है। कुछ भागों में एक साल में एक से अधिक फसलें पैदा की जाती हैं। चावल, गेहूँ और अन्य खाद्यानों के अलावा गन्ना, कपास, जूट जैसी कई व्यापारिक फसलें भी पैदा की जाती हैं। भारत की नदी-घाटियाँ तथा डेल्टा प्रदेश घने बसे हुए हैं। पर्वतीय भाग वनों से ढके हैं। इनसे इमारती लकड़ी, बाँस तथा अन्य वन-उत्पाद प्राप्त किए जाते हैं। कुछ वन क्षेत्रों को चाय, कहवा और रबड़ के बागान लगाने के लिए साफ कर लिया गया है।

3. उष्णकटिबंधीय घास भूमि या सवाना

(क) प्राकृतिक पर्यावरण: यह प्रदेश उष्ण कटिबंध में महाद्वीपों के भीतरी भागों में स्थित है। इसलिए यहाँ साधारण वर्षा होती है और वार्षिक तापांतर अधिक रहता है। यहाँ वर्षा, छोटी सी ग्रीष्म ऋतु में होती है, वर्ष का शेष भाग सूखा रहता है। लंबी और मोटी घास यहाँ की विशेष प्रकार की वनस्पति है। यहाँ घास 3 मीटर की ऊँचाई तक बढ़ जाती है। इन घास भूमियों में सिंह, चीता और शेर जैसे मांसाहारी जंतु काफी बड़ी संख्या में रहते हैं। ये मांसाहारी जंतु, हिरन, जेब्रा जैसे शाकाहारी जंतुओं को मार कर खाते हैं। पहले इन जानवरों का खूब शिकार किया जाता था। इसीलिए इन घास भूमियों को 'शिकार भूमि' के नाम से जाना जाता है। अब इन वन्य जीवों के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय उद्यानों तथा अभयारण्यों की स्थापना की गई है। पूर्वी अफ्रीका के राष्ट्रीय उद्यानों से आकर्षित होकर, दुनिया के कोने-कोने से पर्यटक यहाँ आते हैं।

अफ्रीका में ये उष्णकटिबंधीय घास भूमियाँ विषुवतीय प्रदेश के दोनों ओर एक चौड़ी पट्टी के रूप में फैली हैं। दक्षिण अमेरिका में ब्राजील का पठार तथा ओरीनोको बेसिन और उत्तरी आस्ट्रेलिया इन घास भूमियों के अन्य क्षेत्र हैं।

(ख) मानवीय अनुक्रियाएँ: पूर्वी अफ्रीका की इन घास भूमियों में 'मसाई' जाति के लोग पशु पालते हैं। वे अपने गाय-बैलों और भेड़-बकरियों के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते हैं। मांस, दूध तथा पशु उत्पादों का केवल स्थानीय उपभोग होता है। यहाँ पशुचारण उद्योग के व्यापारिक स्तर पर विकसित होने की खूब संभावनाएँ हैं, क्योंकि आस्ट्रेलिया के क्वींसलैंड राज्य की ऐसी ही घास भूमियों में पशुचारण उद्योग विकसित हो चुका है।

नाइजीरिया के सवाना प्रदेश में रहने वाली 'हौसा' जनजाति का मुख्य धंधा खेती है। ये लोग वर्षा के आधार पर मक्का, ज्वार, बाजरा तथा

मूँगफली की खेती करते हैं। ये दूध और मांस के लिए गाय, बैल और बकरियाँ भी पालते हैं।

ब्राजील के पठार और पूर्वी तथा पश्चिमी अफ्रीका के पठारों के सवाना प्रदेश के कुछ चुने हुए क्षेत्रों में व्यापारिक कृषि भी की जाती है।

4. उष्णकटिबंधीय मरुस्थल

(क) प्राकृतिक पर्यावरण: संमार्गी पवनों के कटिबंध में, महाद्वीपों के पश्चिमी सीमान्तों में उष्णकटिबंधीय मरुस्थल स्थित हैं। इस मरुस्थलीय प्रदेश के अधिकतर भागों में वर्षा सामान्यतः 25 सेंटीमीटर से कम ही होती है। दिन के समय सूर्यातप स्वच्छ आकाश से गुजर कर सीधे भूपृष्ठ पर आता रहता है। रात के समय भी पार्थिव विकिरण को स्वच्छ आकाश से गुजरने में कोई बाधा नहीं आती है। परिणामस्वरूप दैनिक तापांतर बहुत अधिक रहता है। यहाँ की मिट्टी रेतीली है, जिस पर वाष्पीकरण के कारण नमकीन निक्षेपों की परत जमी होती है। सूखे की दशाओं में पनपने वाली कंटीली झाड़ियों के झुरमुट यहाँ की प्रमुख वनस्पति है। मरुद्यानों में खजूर तथा कुछ अन्य पेड़ भी उगते हैं। यहाँ मरुद्यानों के कुछ क्षेत्रों में थोड़ी बहुत खेती भी होती है।

(ख) मानवीय अनुक्रियाएँ: दक्षिण अफ्रीका में कालाहारी मरुस्थल के बुशमैन तथा आस्ट्रेलिया के मरुस्थल के आदिम लोग कंदमूल फल इकट्ठे करके तथा शिकार द्वारा अपना जीवन निर्वाह करते हैं। सहारा और अरब के बद्दू चलवासी जातियाँ हैं। ये ऊँट-घोड़े और भेड़-बकरियाँ पालते हैं। ये लोग तंबुओं मे रहते हैं तथा अपने पशुओं के साथ चरागाहों की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान में घूमते रहते हैं।

मरुस्थलों से गुजरने वाली नदियों की घाटियों तथा कुछ अन्य छुट-पुट स्थानों में खेती भी की जाती है। नील नदी की घाटी तथा डेल्टा प्रदेश में स्थायी ग्रामीण बस्तियाँ तथा नगर हैं। सिंचाई के आधुनिक साधनों के द्वारा पर्याप्त जल की आपूर्ति सुनिश्चित हो गई है। पाकिस्तान की सिंधु नदी की घाटी तथा कैलीफोर्निया की इंपीरियल घाटी के काफी बड़े भागों में स्थायी कृषि की जाती है। कुछ मरुस्थलों में छोटी-छोटी खनन-बस्तियाँ भी पाई जाती हैं। पिछले कुछ दशकों में, कुवैत, सऊदी अरब, ईराक, और ईरान में पैट्रोलियम के विशाल भंडारों की खोज की गई है। अब यहाँ भारी मात्रा में पैट्रोलियम निकाला जाता है, जिससे इन देशों का बड़ी तेजी से आर्थिक विकास हुआ है।

5. भूमध्य सागरीय प्रदेश

(क) प्राकृतिक पर्यावरण: ये प्रदेश उष्णकटिबंधीय मरुस्थलों से ध्रुवों की ओर जाने पर महाद्वीपों के पश्चिमी सीमांतों में मिलते हैं। यहाँ ग्रीष्म ऋतु कोष्ण तथा शुष्क रहती है। वर्षा केवल शीत ऋतु में होती है। शीत ऋतु में ये प्रदेश पछुआ पवनों के प्रभाव क्षेत्र में आ जाते हैं तथा इन पवनों के कटिबंध से गुजरने वाले चक्रवातों से यहाँ वर्षा होती है। ग्रीष्म ऋतु में ये प्रदेश संमार्गी पवनों के कटिबंध में होते हैं। इस समय संमार्गी पवनें स्थल से समुद्र की ओर चलती हैं। अतः यहाँ वर्षा नहीं होती। वर्ष भर में वर्षा की मात्रा कम है तथा शुष्क ऋतु काफी लंबी होती है। छोटे सदाहरित वृक्ष तथा झाड़ियाँ इस प्रदेश की मुख्य वनस्पति हैं। जैतून के पेड़ इस प्रदेश की विशेषता है।

(ख) मानवीय अनुक्रियाएँ: भूमध्यसागर

...य तटीय क्षेत्र इस प्रदेश का विशेष उदाहरण है। इसमें दक्षिणी यूरोपीय तटीय भाग तथा दक्षिण पश्चिम एशिया और उत्तर अफ्रीका के क्षेत्र सम्मिलित हैं। दक्षिण अमेरिका में मध्य चिली, दक्षिण अफ्रीका में केप प्रांत के तटीय भाग, आस्ट्रेलिया का दक्षिण पश्चिमी में तट तथा कैलीफोर्निया के तटीय मैदान भी भूमध्यसागरी प्रदेश के अन्य उदाहरण हैं। इस प्रदेश के तटीय मैदानों में गेहूँ, जौ तथा अन्य कुछ फसलों की खेती की जाती है। पहाड़ी ढालों पर फलदार वृक्षों के बाग लगाए गए हैं। फसलों की खेती तो स्थानीय उपभोग के लिए की जाती है, लेकिन नींबू जाति तथा अन्य विभिन्न फलों को संसाधित करके भारी मात्रा में विदेशों को निर्यात किया जाता है। यह प्रदेश अंगूरों और उसके उत्पादों के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध है।

6. मध्य- अक्षांशीय मरुस्थल

(क) प्राकृतिक पर्यावरण: ये मरुस्थल एशिया और उत्तर अमेरिका के भीतरी पठारों तथा बेसिनों में फैले हैं। ये चारों ओर से ऊँचे पर्वतीय प्रदेशों से घिरे हैं। तिब्बत और गोबी इस के विशेष उदाहरण हैं। यहाँ बहुत कम वर्षा होती है। कम वर्षा का कारण यह है कि ये प्रदेश एक

10.2 संसार के प्रमुख प्राकृतिक प्रदेश
यद्यपि इस मानचित्र में एक प्रदेश को दूसरे प्रदेश से अलग करने के लिए सीधी रेखाएँ खींची गई हैं, लेकिन वास्तव में दो प्रदेशों के बीच कोई निश्चित विभाजन रेखा न होकर परिवर्ती क्षेत्र हैं। इसका क्या कारण हो सकता है?

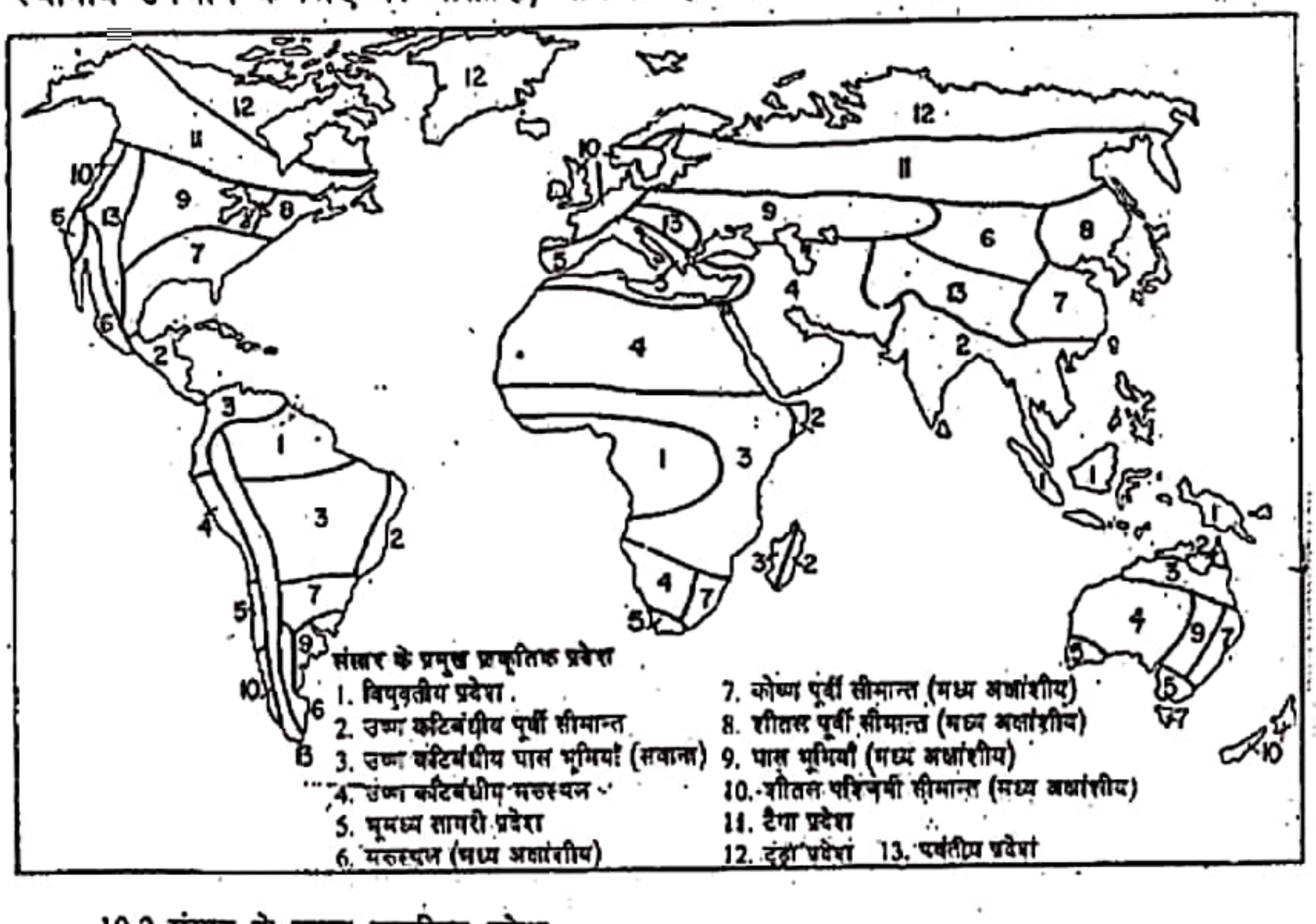

तो महाद्वीपों के भीतरी भागों में हैं और दूसरे ऊँचे पर्वतों से घिरे हैं, जो आर्द्र पवनों को इनसे दूर ही रोक लेते हैं। आंतरिक स्थिति के कारण यहाँ गर्मियों और सर्दियों के तापमान में बहुत अधिक अंतर होता है। सर्दियों में हल्का हिमपात भी होता है।

(ख) मानवीय अनुक्रियाएँ: यहाँ के निवासी चलवासी चरवाहे हैं, जो अपने पशुओं के साथ चरागाहों की खोज में इधर-उधर घूमते रहते हैं। तिब्बत और गोबी के मरुस्थलों के अधिकतर भागों में जनसंख्या का घनत्व बहुत कम है। मध्य एशिया की निम्न भूमियों में आमू दरिया तथा सर दरिया एवं अन्य नदियों के द्वारा सिंचाई होने से खेती का भी विकास हुआ है। इस प्रदेश में खनन और कुछ उद्योग भी विकसित हो गए हैं।

उत्तर अमेरिका में राकी पर्वतमालाओं से घिरे बेसिन में मध्य-अक्षांशीय मरुस्थल की दशाएँ पाई जाती हैं। इस क्षेत्र में सामान्यतः बस्तियाँ नहीं हैं। केवल कुछ ऐसे भागों में जहाँ सिंचाई से खेती हो सकती है या खानों से खनिज पदार्थ निकाले जाते हैं, कुछ छुट-पुट बस्तियाँ मिलती हैं। एण्डीज पर्वतमाला के पूर्व में अर्जेंटाइना देश का पैटागोनिया का मरुस्थल भी मध्य-अक्षांशीय मरुस्थल का उदाहरण है। यह मरुस्थल अधिकतर पथरीला और चट्टानी है। यहाँ भी चलवासी चरवाहे रहते हैं।

7. मध्य-अक्षांशीय कोष्ण पूर्वी सीमांत प्रदेश

(क) प्राकृतिक पर्यावरण: यह प्रदेश उपोष्ण कटिबंध में महाद्वीपों के पूर्वी सीमांतों पर स्थित है। ग्रीष्म ऋतु में, संमार्गी पवनें निकटवर्ती समुद्रों से चलती हैं और इनसे साधारण वर्षा होती है। महाद्वीपों के भीतरी भागों की ओर वर्षा की मात्रा घटती जाती है। शीत ऋतु में महाद्वीपों के आंतरिक भागों से समुद्रों की ओर पछुआ पवनें चलती हैं। इन स्थल पवनों से वर्षा नहीं होती। अतः शीत ऋतु सूखी रहती है। इस प्रदेश में मुख्यतः मध्य तथा दक्षिण चीन, दक्षिण-पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिण पूर्वी ब्राज़ील तथा उरुग्वे, दक्षिण अफ्रीका का पूर्वी तट और आस्ट्रेलिया में न्यू साउथ वेल्स का तट सम्मिलित हैं। मैदानी भागों की वनस्पति में पर्णपाती और सदाहरित वृक्ष मिश्रित रूप से पाए जाते हैं। ऊँचे भागों में शंकुधारी वृक्ष मिलते हैं। यहाँ वन न तो सघन हैं और न ही इनके नीचे झाड़ियाँ उगती हैं। जैतून, चीड़ तथा यूकेलिप्ट्स के मूल्यवान वृक्ष सामान्य रूप से पाए जाते हैं।

(ख) मानवीय अनुक्रियाएँ : यह प्रदेश अपनी गहन खेती के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध है। यहाँ शीत ऋतु में साधारण ठंड पड़ती है। अतः पूरे वर्ष फसलें उगाई जा सकती हैं। सिंचाई की सुविधाओं से युक्त नदी-घाटियाँ गहन कृषि के विशेष क्षेत्र हैं। चीन में पूर्वी ढंग की खेती तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में पश्चिमी ढंग की खेती होती है। दोनों के तरीके एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। पूर्वी ढंग की खेती निर्वाह कृषि है। इसमें मानव श्रम का अधिक उपयोग होता है। कम्पोस्ट खाद का प्रयोग तथा सिंचाई और अपवाह के पारंपरिक तरीके इस कृषि की अन्य विशेषताएँ हैं। चावल मुख्य फसल है तथा सिंचित क्षेत्रों में दो-दो फसलें एक साथ उगाई जाती हैं। पहाड़ी ढालों पर चाय और शहतूत की खेती होती है।

संयुक्त राज्य अमेरिका की पश्चिमी ढंग से खेती विस्तृत कृषि का उदाहरण है। इसमें खेती के अधिकतर काम ट्रैक्टरों तथा अन्य मशीनों

द्वारा किए जाते हैं, जहाँ सैकड़ों हैक्टर के बड़े-बड़े फार्म हैं। मक्का, कपास और तंबाकू की फसलें इन फार्मों की विशेषता हैं। पशुओं और सूअरों को मोटा करने के लिए मक्का खिलाई जाती है। कपास और तंबाकू का निर्यात किया जाता है। दक्षिण अफ्रीका के पूर्वी तट की मुख्य फसल गन्ना है।

8. मध्य अक्षांशीय शीतल सीमांत प्रदेश

(क) प्राकृतिक पर्यावरण: यह प्रदेश, कोष्ण पूर्वी सीमांत प्रदेश से उत्तरी ध्रुव की ओर स्थित है। उत्तर-पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका तथा उससे लगे कनाडा के निकटवर्ती भाग, उत्तर चीन, कोरिया और उत्तरी जापान, इस प्रदेश के मुख्य क्षेत्र हैं। यहाँ की वनस्पति में पर्णपाती और सदाहरित दोनों ही प्रकार के मिले जुले वृक्ष मुख्य हैं। पर्णपाती वृक्ष ठंडी शीत ऋतु में अपनी पत्तियाँ गिरा देते हैं। 50° उत्तर अक्षांश के उत्तर में शंकुधारी वृक्ष मिलते हैं।

(ख) मानवीय अनुक्रियाएँ : यहाँ की ठंडी शीत ऋतु में खेती करना संभव नहीं है। कोष्ण तथा आर्द्र ग्रीष्म ऋतु, कृषि के लिए उपयुक्त है। उत्तर अमेरिका के इस प्राकृतिक प्रदेश की मुख्य फसलें, जौ, जई और आलू हैं। इस प्रदेश के एशियाई क्षेत्रों में सोयाबीन, शहतूत और तिलहन की फसल मुख्य हैं। नगरों के आसपास दूध का धंधा खूब विकसित है।

यहाँ के मुलायम लकड़ी वाले पेड़ों को आधुनिक तरीकों से काटा जाता है। लकड़ी के लट्ठों का उपयोग लुग्दी तथा कागज बनाने में किया जाता है। साफ किए गए वन क्षेत्र में योजनाबद्ध तरीके से पुन: पेड़ लगा दिये जाते हैं। इस तरह लकड़ी की नियमित आपूर्ति बनी रहती है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वी तट पर तथा जापान में मछली पकड़ने का धंधा व्यापारिक स्तर पर विकसित हो गया है। सागर के इन क्षेत्रों में ठंडी और गर्म धाराएँ मिलती हैं, जिससे प्लवकों की खूब वृद्धि होती है। प्लवक मछलियों के भोजन हैं। अत: ये सागर क्षेत्र समृद्ध मत्स्य ग्रहण क्षेत्र बन गए हैं। यहाँ तटरेखा दंतुरित है। अत: यहाँ अच्छे बंदरगाह हैं। मछली, जापानी लोगों के भोजन का मुख्य अंग है। जापान मछलियों का मुख्य निर्यातक देश भी है।

उत्तर-पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका में तथा जापान में स्थानीय तथा आयातित कच्चे माल के आधार पर बड़े पैमाने पर उद्योगों का विकास हुआ है। इन क्षेत्रों में अधिकतर लोग नगरों में रहते हैं। अत: यहाँ जनसंख्या का बहुत ही अधिक घनत्व है।

9. मध्य अक्षांशीय घास भूमि प्रदेश

प्राकृतिक पर्यावरण: यह प्रदेश महाद्वीपों के भीतरी भागों में स्थित हैं। अत: यहाँ कम वर्षा होती है। आंतरिक स्थिति के कारण यहाँ की कोष्ण ग्रीष्म ऋतु तथा ठंडी शीत ऋतु के बीच तापमान का बहुत अंतर होता है। ग्रीष्म ऋतु में वायु के संवहनीय रूप में ऊपर उठने के फलस्वरूप यहाँ वर्षा होती है। छोटी-छोटी घास यहाँ की प्रमुख वनस्पति है। इन घास भूमियों के स्थानीय नाम हैं। इन्हें, पूर्वी यूरोप तथा मध्य एशिया में स्टेप्स, उत्तर अमेरिका में प्रेरीज, अर्जेंटाइना में पंपास, दक्षिण अफ्रीका में वेल्ड्स तथा आस्ट्रेलिया में डाउंस कहते हैं। कम वर्षा तथा शीत ऋतु में अधिक ठंड पड़ने के कारण यहाँ पेड़ नहीं उगते हैं।

जैव पदार्थों से युक्त उपजाऊ काली मिट्टी यहाँ पाई जाती है।

(ख) मानवीय अनुक्रियाएँ : उत्तर अमेरिका के इस प्रदेश में पहले मूल इंडियन रहते थे। वे चलवासी शिकारी थे। मध्य एशिया के इस प्रदेश में रहने वाली जनजातियों का मुख्य धंधा चलवासी पशुचारण है। लेकिन यहाँ अब छुट-पुट क्षेत्रों में ही चलवासी जीवन पद्धति दिखाई पड़ती है। संयुक्त राज्य अमेरिका तथा रूस की घास भूमियों में विस्तृत यांत्रिक खेती का विकास हुआ है। इन विस्तृत समतल मैदानों में बड़े-बड़े फार्म बनाये गये हैं। कृषि कार्यों के लिए श्रमिकों की कमी है। अतः खेती के सभी कामों के लिए मशीनों का अधिक प्रयोग होता है। गेहूँ इन घास भूमियों की प्रमुख फसल है। संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, अर्जेंटाइना तथा आस्ट्रेलिया गेहूँ के मुख्य निर्यातक हैं। इस प्रदेश के कुछ गर्म भागों में मक्का की खेती भी की जाती है।

इन घास भूमियों में पशुचारण उद्योग व्यापारिक स्तर पर विकसित हो गया है। इस प्रदेश के अपेक्षाकृत कोष्ण और आर्द्र भागों में पशु पाले जाते हैं तथा ठंडे और शुष्क क्षेत्रों में भेड़ पालन होता है। पशुओं को मारने, मांस की डिब्बा बंदी करने, दूध दुहने, दूध के संसाधन तथा भेड़ों से ऊन उतारने में मशीनों का प्रयोग होता है। जहाजों में प्रशीतित प्रकोष्ठों की सुविधा उपलब्ध होने से आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और अर्जेंटाइना, बड़े पैमाने पर मांस और दूध के उत्पादों का निर्यात करने में समर्थ हैं। ये घास भूमियाँ गेहूँ, मांस तथा दूध के उत्पादों का निर्यात करके संसार की भोजन की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं।

10. शीतल (मध्य अक्षांशीय) पश्चिमी सीमांत प्रदेश

(क) प्राकृतिक पर्यावरण : यह प्रदेश पूरे वर्ष पछुआ पवनों के प्रभाव में रहता है। ये पवनें कोष्ण महासागरों से तट की ओर चलती हैं। परिणामस्वरूप इस प्रदेश में शीत ऋतु, शीतल पूर्वी सीमांत प्रदेश की तुलना में अधिक कोष्ण रहती है और वर्षा भी यहाँ उस प्रदेश की अपेक्षा अधिक होती है। यहाँ साल भर चक्रवातों द्वारा वर्षा होती है। वर्षा की मात्रा शीत ऋतु में अधिकतम होती है। पर्णपाती वन इस प्रदेश की प्राकृतिक वनस्पति हैं। पहाड़ी ढालों पर शंकुधारी वन पाए जाते हैं। उत्तर-पश्चिमी यूरोप में मनुष्यों के आवास के लिए, मूलवनों का अधिकतर भाग साफ कर लिया गया है। इस प्रदेश के अन्य क्षेत्र हैं—कनाडा में ब्रिटिश कोलंबिया के तटीय प्रदेश, दक्षिण अमेरिका में दक्षिणी चिली तथा न्यूजीलैंड का दक्षिणी द्वीप।

(ख) मानवीय अनुक्रियाएँ : उत्तर पश्चिमी यूरोप में कई शताब्दियों से लोग रह रहे हैं और यहाँ के साधनों का पूरी तरह विकास हो चुका है। यहाँ गहन कृषि सामान्य रूप से होती है। फसलों की उपज भी बहुत अधिक है। गेहूँ, जौ, आलू और चुकन्दर प्रमुख फसलें हैं। मिश्रित कृषि यहाँ बिल्कुल सामान्य बात है। मिश्रित कृषि में पशु भी साथ-साथ पाले जाते हैं। इस प्रदेश में बहुत नगरीकरण हुआ है। अतः नगरों की सब्जियों, फूलों आदि की माँग को पूरा करने के लिए व्यापारिक बागवानी भी की जाती है।

उद्योगों के लिए कच्चा माल तथा शक्ति के साधन जुटाने के लिए खनिज साधनों का व्यापक रूप से उपयोग हुआ है। कुछ कच्चे

पदार्थ जैसे कपास; आयात करके भी उद्योग धंधे शुरू किए गए हैं। उत्तर सागर का महाद्वीपीय निमग्न उथला और विस्तृत है। अतः यहाँ मत्स्य ग्रहण व्यापारिक स्तर पर विकसित हो गया है। उत्तर पश्चिमी यूरोप के विपरीत इस प्रदेश के अन्य क्षेत्रों की जनसंख्या विरल है तथा उनके साधनों का भी पूरी तरह विकास नहीं हुआ है। कनाडा के ब्रिटिश कोलंबिया में मछली पकड़ना और लकड़ी काटने का व्यवसाय मुख्य है। सुदूर स्थिति के कारण दक्षिण चिली के साधनों का उपयोग भी शुरू नहीं हुआ है। न्यूजीलैंड के दक्षिणी द्वीप में भेड़ पालन व्यापारिक स्तर पर होता है। यहाँ से ऊन तथा भेड़ के मांस का निर्यात किया जाता है।

11. टैगा (शंकुधारी वन) प्रदेश

(क) प्राकृतिक पर्यावरण: यह प्रदेश यूरोप, एशिया और उत्तर अमेरिका में एक चौड़ी पट्टी के रूप में स्थित है। इसके उत्तर में ध्रुवीय टुण्ड्रा प्रदेश तथा दक्षिण में मध्य अक्षांशीय घास भूमियाँ हैं। इस प्रदेश में ग्रीष्म ऋतु कोष्ण लेकिन छोटी होती है। शीत ऋतु यहाँ बहुत ठंडी और लंबी होती है। शीत ऋतु में नदियों का पानी जम जाता है और कई महीनों तक भूमि हिम से ढकी रहती है। यहाँ साधारण वर्षा होती है, जिसकी मात्रा गर्मियों में अधिकतम होती है। इस प्रदेश में शंकुधारी वनों का विस्तार है। ये सदाहरित वन हैं। इनके पेड़ों की पत्तियाँ सुइयों जैसी होती हैं। ये वाष्पोत्सर्जन में नष्ट होने वाली आर्द्रता को रोकती हैं। इन वनों में मुलायम लकड़ी वाले स्प्रूस, देवदार, मैपल तथा भूर्ज के वृक्ष पाए जाते हैं। इन वनों में पेड़ों के नीचे झाड़ियाँ आदि अपेक्षाकृत नहीं होती हैं।

(ख) मानवीय अनुक्रियाएँ: सुगम्य क्षेत्रों में लकड़ी काटना यहाँ के लोगों का मुख्य धंधा है। स्कैंडिनेविया, कनाडा बाल्टिक राज्यों तथा रूस में इन वनों का सुनियोजित तथा व्यवस्थित उपयोग किया गया है। साफ किए गए उन क्षेत्रों में पुनः पेड़ लगाए जाते हैं ताकि भविष्य में निरंतर नियमित रूप से लकड़ी मिलती रहे। लकड़ी के लट्ठों का उपयोग लकड़ी की लुग्दी, कागज, अखबारी कागज, कृत्रिम रेशे, माचिस और फर्नीचर बनाने में किया जाता है।"

इस प्रदेश में जौ, जई और आलू की खेती केवल दक्षिणी क्षेत्रों तक सीमित है। छोटे वर्धन काल के कारण यहाँ बड़े पैमाने पर कृषि नहीं की जा सकती है। इस प्रदेश में मस्क-रैट, इरमाइन और सिल्वर फाक्स जैसे समूरधारी जानवरों का शिकार किया जाता है। मछली पकड़ना यहाँ की अन्य आर्थिक क्रिया है। कनाडा और रूस में समूरधारी जानवर फार्मों पर पाले भी जाते हैं। लकड़ी काटने का काम तो शीत ऋतु में होता है, लेकिन मछलियाँ पकड़ने का काम छोटी सी ग्रीष्म ऋतु में ही होता है, जब हिम पिघल जाता है।

12. ध्रुवीय प्रदेश

(क) प्राकृतिक पर्यावरण: उत्तरी ध्रुवीय प्रदेश में ग्रीनलैंड ऐसा बड़ा भूभाग है, जो सदा बर्फ की चादरों से ढका रहता है। छोटी सी ग्रीष्म ऋतु में तट के समीप बर्फ की चादरों के छोर पिघलने लगते हैं, जिससे भूमि दिखाई पड़ने लगती है। इस प्रदेश में मिट्टी की नीचे की परत हमेशा जमी रहती है। ग्रीष्म ऋतु में भी तापमान 10° सैल्सियस से ऊपर नहीं जाता है। शीत ऋतु में थोड़ा सा 'वर्षण' हिम के रूप में होता है।

इस प्रदेश में ग्रीष्म ऋतु के छोटे से वर्धन काल में केवल कुछ फूलों वाले पौधे तथा घास ही उग पाती है। टुण्ड्रा प्रकार की वनस्पति जैसे,

मॉस, लाइकेन तथा सैंज के दूर-दूर बिखरे झुरमुट यहाँ दिखाई पड़ते हैं। यह वनस्पति यहाँ के मुख्य पशु रेंडियर का भोजन है। रेंडियर के अलावा भेड़िए, लोमड़ी, मस्क-आक्स तथा सील अन्य जंतु हैं, जो यहाँ पाए जाते हैं। दक्षिण ध्रुव प्रदेश में अंटार्कटिका हमेशा बर्फ की मोटी चादरों से ढका रहता है। पैंग्विन अंटार्कटिका में पाया जाने वाला सामान्य पक्षी है।

(ख) मानवीय अनुक्रियाएँ : इस प्रदेश का कठोर पर्यावरण स्थायी निवास के अनुकूल नहीं है। अतः कनाडा और अलास्का के इनुइट, स्कैंडिनेविया के लैप्स तथा साइबेरिया के याकूत तथा समोएड पहले चलवासी जीवन बिताते थे। वे शीत ऋतु में बर्फ से बने घर 'इग्लू' में तथा ग्रीष्म ऋतु में तंबुओं में रहते थे। जानवरों का शिकार और मछली पकड़ना उनका मुख्य व्यवसाय था। इस प्रदेश के निवासी समूर तथा अन्य जंतु-उत्पादों को बाहरी लोगों के हाथ बेच भी देते हैं।

अब बाहरी संपर्क से इन चलवासी लोगों के जीवन में परिवर्तन आया है। अधिकांश लोग आधुनिक सुविधाओं से युक्त लकड़ी से बने घरों में स्थायी रूप से रहने लगे हैं। वे मछलियाँ पकड़ने के लिए शक्तिचालित नावों तथा आधुनिक उपकरणों का प्रयोग करने लगे हैं। रूस में रेंडियरों को पालने के लिए फार्म खोले गए हैं। स्थानीय जनसंख्या की माँग को पूरा करने के लिए 'ग्लास हाउसों' में सब्जियाँ पैदा की जाती हैं। अलास्का में खनिज तेल और सोना, लैब्रेडोर में लौह अयस्क तथा साइबेरिया में निकिल जैसे खनिज पदार्थ निकाले जाने लगे हैं। अतः यहाँ खनन-बस्तियाँ बस गई हैं, जिनके लिए स्थल, वायु और जल परिवहन की सुविधा का विकास भी हुआ है। ध्रुवीय टुण्ड्रा में जनसंख्या का घनत्व बहुत ही कम है। अंटार्कटिका में कुछ राष्ट्रों ने वैज्ञानिक शोध के लिए विज्ञान-केंद्र स्थापित किए हैं।

13. पर्वतीय प्रदेश

(क) प्राकृतिक पर्यावरण: एशिया में हिमालय, यूरोप में आल्प्स, उत्तर अमेरिका में राकीज तथा दक्षिण अमेरिका के एण्डीज ऊँची पर्वत श्रेणियाँ हैं। ये पृथ्वी के काफी बड़े भूभाग पर फैले हैं। इन प्रदेशों की जलवायु और वनस्पति में ऊँचाई के अनुसार परिवर्तन आ जाते हैं। विषुवतीय प्रदेश में फैली एण्डीज पर्वतमाला के जो भाग हैं, वहाँ पर्वतीय प्रदेश के निचले भागों में सघन वर्षा वन पाए जाते हैं, जबकि चोटियाँ हमेशा बर्फ से ढकी रहती हैं। पर्वतीय प्रदेशों की जलवायु और वनस्पति, इस बात पर भी निर्भर करती है कि उनकी ओर पवनें किस दिशा से आ रही हैं। मानसूनी पवनों के सामने पड़ने वाले हिमालय के दक्षिण ढालों पर भारी वर्षा होती है और वे घने वनों से ढके हैं। इस के विपरीत हिमालय के उत्तरी ढाल, जिनका रुख तिब्बत की ओर है, सूखे और बंजर हैं। ऊँचाई में परिवर्तन होने और पर्वतीय ढालों की दिशा के अनुसार, थोड़ी सी दूरी में ही जलवायु और वनस्पति में अंतर पड़ जाता है।

(ख) मानवीय अनुक्रियाएँ: लकड़ी काटना और पशुपालन यहाँ का मुख्य व्यवसाय है। घाटियों में खेती भी महत्वपूर्ण है। कहीं-कहीं खनन कार्य भी होता है। हिमालय और आल्प्स पर्वतों में जिन स्थानों में परिवहन सुविधाएँ विकसित हो गई हैं, वे पर्यटकों के आकर्षण केंद्र

बन गए हैं। पर्वतीय प्रदेशों के लोगों द्वारा बनाई गई दस्तकारी की वस्तुएँ बड़ी प्रसिद्ध हैं। इन पर्वतीय प्रदेशों के प्राकृतिक सौंदर्य, प्राकृतिक वनस्पति, रंग-बिरंगे पक्षियों तथा दूसरे वन्य जीवों का संरक्षण, भावी पीढ़ियों के लिए आवश्यक है।

स्वाध्याय

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए–
   (1) प्राकृतिक प्रदेश किसे कहते हैं?
   (2) एक जैसे पर्यावरण में मानवीय अनुक्रियाओं में परिवर्तन क्यों आ जाता है?
   (3) उष्ण कटिबंधीय घास भूमियों के प्राकृतिक पर्यावरण का वर्णन कीजिए।
   (4) उष्ण कटिबंधीय मरुस्थलों की मानवीय अनुक्रियाओं का विवरण लिखिए।
   (5) भूमध्य सागरीय जलवायु के प्रमुख लक्षण कौन से हैं?
   (6) मध्य अक्षांशीय मरुस्थल कहाँ स्थित हैं?
2. अन्तर स्पष्ट करिए–
   (1) टैगा और टुण्ड्रा।
   (2) उष्ण कटिबंधीय घास भूमियाँ तथा मध्य अक्षांशीय घास भूमियाँ।
3. निम्नलिखित में से प्रत्येक के लिए एक-एक पारिभाषिक शब्द दीजिए–
   (1) अफ्रीका की उष्ण कटिबंधीय घास भूमियाँ।
   (2) पूर्वी यूरोप की मध्य अक्षांशीय घास भूमियाँ।
   (3) अर्जेंटाइना में मध्य अक्षांशीय घास भूमियाँ।
   (4) शंकुधारी वन प्रदेश
4. विषुवतीय प्रदेश में मानवीय अनुक्रियाओं का विवरण दीजिए।
5. ऊँचे पर्वतीय प्रदेशों के विशेष लक्षणों की विवेचना कीजिए।
6. उष्ण कटिबंधीय मरुस्थलों तथा मध्य-अक्षांशीय मरुस्थलों की स्थिति और प्राकृतिक पर्यावरण की तुलना कीजिए।

स्वयं करें और खोजें

पत्र-पत्रिकाओं से विभिन्न प्रदेशों के निवासियों के जीवन संबंधी चित्र एकत्र कीजिए।

2. प्राकृतिक प्रदेशों का वितरण दिखाने के लिए संसार का एक मानचित्र बनाइये।
3. परिशिष्ट II में दिए गए जलवायु के आँकड़ों के आधार पर प्रत्येक स्थान के लिए जलवायु आरेख बनाइये।

पठनीय पुस्तकें

1. काजी एस० ए० : मेजर नेचुरल रीजन्स, फ्रैंड्स बुक हाउस।
2. प्रीस डी० एम० एण्ड बुड एच० आर० बी० : फाउंडेशन ऑफ ज्याग्रफी, यूनिवर्सिटी, ट्यूटोरियल प्रेस, लंदन।

11

पर्यावरण पर मनुष्य का प्रभाव

जबसे मनुष्य ने इस पृथ्वी पर रहना प्रारम्भ किया है, तब से लेकर आज तक, मनुष्य और पर्यावरण के संबंधों में परिवर्तन होता रहा है। इसके अलावा, एक ही समय में, भिन्न भिन्न स्थानों में मनुष्य और पर्यावरण के संबंध बदलते रहे हैं। उदाहरण के लिए आदि मानव पर्यावरण को ही प्रभावी मानता था। बिजली की चमक और बादलों की गड़गड़ाहट से उसे डर लगता था। सघन वन और वन्य जीवों से वह भयभीत रहता था। विशाल महासागर तथा बड़ी नदियाँ भी उसे डराती थीं। उस समय उसके पास पर्यावरण की बाधाओं को दूर करने के लिए उपकरण भी नहीं थे। मनुष्य प्रकृति के विभिन्न अंगों जैसे पर्वत, नदियों, महासागरों, वनों आदि की पूजा करता था। उसे पर्यावरण के अनुकूल बनना पड़ा।

जब मनुष्य ने पत्थरों और धातुओं से उपकरण बनाने शुरू किए तथा उसे आग के उपयोग की जानकारी हो गई, तब पर्यावरण पर उसके प्रभाव का अनुभव किया जाने लगा। अपने उपकरणों से वह पेड़ों को काटने में समर्थ हो गया तथा पेड़ों के लट्ठों का उपयोग अपने लिए अच्छे और अपेक्षाकृत टिकाऊ मकान बनाने के लिए करने लगा। आग, उसकी रक्षा, न केवल वन्य जीवों से करती थी, अपितु उसे सर्दियों में गरमाहट भी देती थी। जानवरों के शिकार तथा मछली पकड़ने से अन्य जन्तुओं पर उसका प्रभुत्व स्थापित हो गया। इतना होने पर भी, पर्यावरण पर उसका प्रभाव नगण्य ही था।

औद्योगिक क्रांति से मिली यांत्रिक शक्ति से, वाष्प इंजन तथा अन्य मशीनों के आविष्कार से, धातुओं के अधिकाधिक प्रयोग आदि से, मनुष्य को पर्यावरण में परिवर्तन करने के अवसर मिलने लगे। अपनी आवश्यकताओं के अनुसार पर्यावरण को बदलने का वह एक सक्रिय कारक बन गया। यही नहीं, मनुष्य कृषि के द्वारा अपने भोजन के बारे में भी निश्चित हो गया। उसे भोजन की खोज में भटकने की आवश्यकता नहीं रह गयी। अतः वह स्थायी रूप से बस्तियाँ बसाकर रहने लगा। अब वह निश्चित हो कर प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षित मकानों में अपने परिवार का पालन-पोषण कर सकता था। उसका परिवार बड़ा होने लगा और लोगों ने संसार के अन्य भागों में प्रवास करना प्रारंभ कर दिया। सड़क, रेल और समुद्री परिवहन में बहुत सुधार हो गया तथा यूरोप के लोग उत्तर अमेरिका, दक्षिण अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया की नई भूमियों पर जाकर बसने लगे।

पहले प्लेग, हैजे, मलेरिया तथा चेचक से अनेक लोग मर जाते थे। लेकिन चिकित्सा तथा

स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं के विकास के द्वारा मनुष्य ने प्राकृतिक आपदाओं के रूप में आने वाली, इन महामारियों और बीमारियों पर काबू पा लिया। परिणामस्वरूप मृत्यु दर धीरे-धीरे कम हो गई तथा जीवन प्रत्याशा बढ़ गई। निश्चित खाद्य-आपूर्ति, बीमारियों से सुरक्षा, नए बसे महाद्वीपों में जीवाश्म ईंधन तथा अन्य साधनों की प्रचुरता के द्वारा, इस शताब्दी के प्रारम्भ से जनसंख्या में बहुत ही तेज वृद्धि हुई है।

अब जनसंख्या 5.5 अरब की सीमा को पार कर गई है तथा सन् 2000 तक उसके 6 अरब हो जाने की प्रबल संभावना है। इस तथ्य ने मनुष्य को पर्यावरण पर पड़ने वाले अपने प्रभावों के बारे में चिंतित कर दिया है। कुछ स्थानों पर तो पर्यावरण इतना बिगड़ चुका है कि मनुष्य को मजबूर हो कर उन स्थानों को छोड़ना पड़ा है। उसे खाद्यानों तथा ऊर्जा जैसे साधनों के अभाव का सामना करना पड़ रहा है। प्राकृतिक आपदाओं जैसे सूखा और बाढ़, पर्यावरण प्रदूषण, सड़क दुर्घटनाओं और औद्योगिक दुर्घटनाओं में काफी बड़ी संख्या में लोग मर जाते हैं। अपने भविष्य का रास्ता चुनने के लिए मनुष्य आज चौराहे पर आ खड़ा हुआ है। उसे दो में से एक को चुनना है। एक रास्ता तो यह है कि वह अपनी अनन्त आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, इसी तरह निरंतर विकास करता जाए और पर्यावरण को इस सीमा तक बिगाड़ दे कि भविष्य में पृथ्वी पर से उसका ही लोप हो जाए। दूसरा रास्ता यह है कि वह विकास की गति धीमी कर दे, साधनों का संरक्षण करे, जनसंख्या की वृद्धि दर को घटाए, उपभोग में बर्बादी को रोके तथा भावी पीढ़ियों के लिए पर्यावरण को बचा कर रखे।

ऐसा नहीं है कि मनुष्य ने पर्यावरण को बिगाड़ने का काम अभी-अभी शुरू किया हो। मानवीय क्रियाकलापों से पर्यावरण पहले से ही बिगड़ता रहा है। यह बात अलग है कि उसने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया था। ऐसा समझा जाता है कि बड़े पैमाने पर वनों के विनाश से ही ईराक में मैसोपोटामिया की सभ्यता, पीरू की इंका सभ्यता तथा सिंधु घाटी की प्राचीन सभ्यताओं का पतन हुआ। वनों के विनाश से भूमि में मृदा का अपरदन हुआ, बाढ़ें आईं तथा नहरें और खेत गाद-मिट्टी से भर गए। परिणामस्वरूप अकाल पड़ा, अनेक लोग मर गए तथा गाँव के गाँव उजड़ गए।

कुछ समय पहले तक हम नहीं जानते थे कि जल आपूर्ति को नियमित बनाने के लिए नदी के आरपार बाँध बनाना, पर्यावरण के लिए गंभीर खतरे पैदा कर सकता है। नदी पर बने बाँध के पीछे एक विशाल जलाशय बन जाता है तथा नदी द्वारा लाई हुई गाद-मिट्टी इसमें जमा होती रहती है। बाँध के नीचे नदी में गाद-मिट्टी बहकर नहीं जाती है। इससे नदी तल का अपरदन होता है तथा नदी के किनारे के दोनों ओर की भूमि भी अपरदित हो जाती है। कुछ नदियों में बाँध के नीचे पानी का बहाव घट जाता है और सहायक नदियाँ मुख्य नदी के निचले मार्ग में गाद-मिट्टी जमा कर देती हैं। नदी तल के इस प्रकार ऊँचा उठने से बाढ़ के समय आस-पास की भूमि पानी में डूब जाती है और नदी अपना मार्ग बदल लेती है। परिणामस्वरूप भारी विनाश होता है। नील नदी पर अस्वान बाँध के बन जाने के बाद गाद-मिट्टी बहकर अब नदी के निचले मार्ग में नहीं पहुँचती। पहले नील नदी द्वारा बहाकर लाई गई गाद-मिट्टी आस-पास की भूमि को उपजाऊ

बनाए रखती थी। मृदा का उपजाऊपन घटने से फसलों की उपज भी कम हो गई है। बाँध, नदियों में मछली तथा अन्य जीवों को भी प्रभावित करते हैं।

प्राकृतिक वनस्पति तथा वनों का विनाश, मृदा अपरदन का सबसे सामान्य कारक है। भूमि पर बकरियाँ चराने से भी पौधों का आवरण हट जाता है। जब भूमि पर वनस्पति का आवरण हट जाता है तब मृदा की परत पर वर्षा का सीधा प्रहार होता है। सतह पर बहने वाला जल भी आवरणहीन भूमि को प्रभावित करता है। खड़े ढालों पर मृदा के कण कट कर तेजी से नीचे की ओर बहने लगते हैं और भूमि में नालियाँ बन जाती हैं। इसे **अवनालिका अपरदन** कहते हैं। समय बीतने पर ये नालियाँ गहरी और चौड़ी होती जाती हैं तथा इनकी शाखाओं का एक जाल सा बन जाता है। इस प्रकार अनेक नालियों के द्वारा अपरदित भूमि को **उत्खात भूमि** कहते हैं। इन भूमियों का कोई उपयोग नहीं हो सकता है। चंबल के बीहड़ ऐसी ही उत्खात भूमि के उदाहरण हैं। साधारण ढाल वाली भूमि पर जल एक पतली परत के रूप में बहता है। इस प्रक्रिया में मृदा के सूक्ष्म कण पूरी तरह से ही पानी के साथ बहकर चले जाते हैं। इस प्रकार के अपरदन को **परत अपरदन** कहते हैं। परत अपरदन को देखा नहीं जा सकता। इसका ज्ञान तो तब होता है जब मृदा का उपजाऊपन घटने लगता है। मृदा के अपरदन से पानी का बहाव बढ़ जाता है। परिणामस्वरूप बाढ़ें आती हैं और जलाशय गाद से भर जाते हैं।

अब मृदा संरक्षण के उपायों को अपना कर मृदा का अपरदन रोकना बहुत आवश्यक हो गया है। पहाड़ी ढालों तथा बिना खेती वाली भूमि पर पेड़-पौधे लगाकर, मृदा का संरक्षण किया जा सकता है। साधारण ढालों पर समोच्च जुताई, पट्टीदार खेती तथा मेड़ बनाकर मिट्टी का संरक्षण किया जा सकता है। पहाड़ी ढालों पर सीढ़ीदार खेत बनाने से भी मिट्टी का अपरदन रुक जाता है। अवनालिका अपरदन को नालियों में बाँधकाएँ बनाकर रोका जा सकता है। मृदा संरक्षण के उपायों से मृदा के कणों का बहना, उड़ना आदि रुक जाता है और उसका उपजाऊपन बना रहता है।

आज मनुष्य के प्रभाव से पर्यावरण प्रदूषित हो गया है। प्रदूषण केवल वायु, जल और भूमि को ही प्रभावित नहीं करता है, अपितु जैव मंडल के जीवों पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। प्राकृतिक पारितंत्र मृत जीवों तथा मल-मूत्र आदि का विघटन करके उनका पुनः चक्रण करता रहता है। लेकिन जब भारी मात्रा में हानिकारक पदार्थ पर्यावरण को दूषित करते हैं, तब पारितंत्र उन्हें अपने में नहीं मिला पाता तथा वे पारितंत्र में इकट्ठे होते रहते हैं। परिणामस्वरूप पर्यावरण खराब हो जाता है।

वायु प्रदूषण

विगत कुछ दशकों में भारी मात्रा में जीवाश्म ईंधनों को जलाया गया है। फलस्वरूप वायुमंडल में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ गयी है। ऐसा अनुमान है कि पिछले सौ वर्षों में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा 25% बढ़ी है। कार्बन डाइआक्साइड सूर्यातप को तो भूपृष्ठ पर आने देती है, लेकिन पार्थिव विकिरण को सोख लेती है। वायुमंडल में कार्बन डाइआक्साइड के बढ़ने का प्रभाव यह

हुआ है कि वायुमंडल का तापमान बढ़ गया है। यह अनुमान लगाया गया है कि पिछले सौ वर्षों में भूमंडलीय औसत तापमान में 0.3° सेल्सियस से लेकर 0.7° सेल्सियस की वृद्धि हुई है। कार्बन डाइआक्साइड में वृद्धि का कारण, बड़े पैमाने पर वनों के विनाश को भी बताया जाता है। पेड़ वायुमंडल में संचित कार्बन डाइ-आक्साइड को सोख लेते हैं। यदि आगामी 50 वर्षों में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा इसी तरह बढ़ती रही तो तापमान में वृद्धि के फलस्वरूप ध्रुवों पर जमी बर्फ की चादरें पिघल जाएँगी तथा समुद्र तल एक मीटर ऊँचा हो जाएगा तथा तटीय प्रदेश पानी में डूब जाएँगे।

कोयले और खनिज तेल के जलने से सल्फर डाइआक्साइड भी वायुमंडल में चली जाती है। मोटरों और कारों के धुएँ के साथ निकले सीसे, कार्बन मोनोक्साइड्स तथा नाइट्रोजन आक्साइड्स के अंश भी वायुमंडल में मिल जाते हैं। मोटरों-कारों का धुआँ साँस के साथ नाक में जा कर जलन पैदा करता है तथा साँस के रोगों का कारण बनता है। उत्तर अमेरिका तथा यूरोप के औद्योगिक प्रदेशों में अम्लीय वर्षा भी इन्हीं गैसों के कारण होती है। अम्लीय वर्षा का जलीय तंत्र पर दुष्प्रभाव पड़ता है, क्योंकि अम्लीय जलाशयों में मछलियाँ तथा अन्य जीव जीवित नहीं रह सकते। स्वीडन, नार्वे, कनाडा तथा संयुक्त राज्य अमेरिका की झीलें अम्लीकरण से बुरी तरह प्रभावित हुई हैं। अम्लीय वर्षा बड़े पैमाने पर वनों को हानि पहुँचाती है। इससे पत्तियाँ पीली होकर झड़ जाती

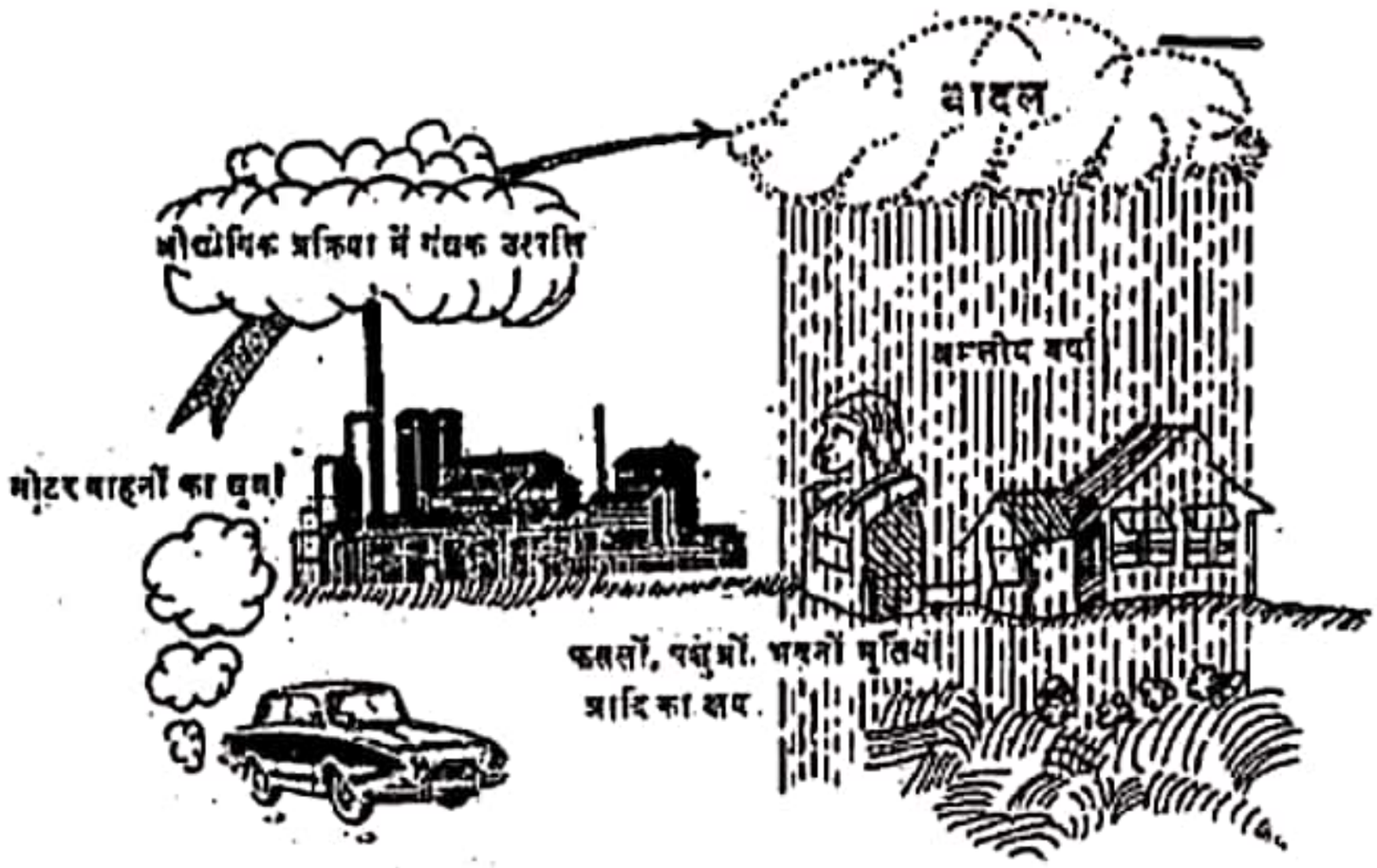

11.1 वायु प्रदूषण

महानगरों में कारों मोटरों आदि में तथा कारखानों में भारी मात्रा में कोयले और तेल जैसे ईंधनों के जलने से सल्फर डाइआक्साइड पैदा होती है। ध्यान दीजिए कि धुएँ की वाष्प के साथ यह वायु में किस प्रकार मिल रही है। यह वायुमंडल को प्रदूषित करती है। वर्षा के जल में घुलने के बाद यह गंधक के अम्ल में बदल जाती है। अम्लीय वर्षा से पौधों, धातुओं और भवनों को भारी हानि पहुँचती है।

हैं और पेड़ों का विकास रुक जाता हैं। यूरोप में लगभग 60 लाख हैक्टर वन अम्लीय वर्षा से क्षतिग्रस्त हो चुके हैं।

समतापमंडल की ओज़ोन परत पर जेट विमानों से निकले धुएँ का प्रभाव पड़ता है। क्लोरो-फ्ल्यूरो-कार्बनृस (सी.एफ.सी.) स्थायी यौगिक हैं। इनका उपयोग प्रशीतन एवं ऐसे ही अन्य कार्यों में किया जाता है। पिछले 100 वर्षों में ओजोन की परत में जो 3% से 4% का कमी आई है, उसके जिम्मेदार यही रसायन हैं। वायुमंडल को ऊपरी परतों में पाई जाने वाली ओजोन, पृथ्वी को हानिकारक पराबैंगनी विकिरण से बचाती है। ओजोन की परत के कम होने पर जब पराबैंगनी विकिरण भूपृष्ठ पर पहुँचेगा, तब इससे त्वचा का कैंसर हो सकता है।

कारखानों से गैस के रूप में बाहर निकला कचरा भी वायुमंडल को प्रदूषित करता है। धुआँ, धूल, कार्बन और सीसे आदि के कण वायुमंडल में मिलते रहते हैं। शीतल रातों में जब कुहरा फैला होता है, तब ये कण वायु में तैरते रहते हैं। इस दशा को धूम-कुहरा कहते हैं। सन् 1952 में लंदन के धूम-कुहरे में दम घुटने से 4000 व्यक्तियों की मृत्यु हो गई थी। कारखानों में दुर्घटना होने से विषैली गैसें वायुमंडल में फैल जाती हैं, जिससे लोग बीमार हो जाते हैं तथा मर भी जाते हैं। भोपाल में एक कीटनाशक रसायन बनाने वाला कारखाना है। सन् 1984 में इस कारखाने की विषैली गैस वायु में फैल गई थी, जिससे हजारों लोग मर गए थे। सन् 1986 में सोवियत संघ के चर्नोबिल परमाणु बिजली घर में दुर्घटना होने पर रेडियोधर्मी तत्व वायु में मिल गए थे, जिससे बड़ी भारी हानि हुई थी।

जल और भूमि के प्रदूषण का तो केवल स्थानीय या प्रादेशिक प्रभाव पड़ता है, लेकिन वायु प्रदूषण से तो पूरा भूमंडल प्रभावित हो जाता है। प्रदूषित वायु में से होकर जब वर्षा होती है, तब प्रदूषक तत्व वर्षा जल के साथ मिलकर जलाशयों, भूमि और महासागरों को प्रदूषित कर देते हैं। वायु प्रदूषण का प्रभाव पौधों, मनुष्यों तथा अन्य जंतुओं पर भी पड़ता है।

कुछ नगरों में मोटरों-कारों के विषैले धुएँ से वायु इतनी प्रदूषित हो जाती है कि लोगों का दम घुटने लगता है और उन्हें आक्सीजन लेने के लिए "फेस मास्क" पहनने पड़ते हैं।

जल प्रदूषण

कारखानों का कूड़ा-कचरा जलाशयों और नदियों में फैंकने से जल प्रदूषित हो जाता है। कागज और चीनी के कारखाने तथा चमड़ा साफ करने के कारखाने अपना कूड़ा-कचरा नदियों में बहा देते हैं या भूमि पर सड़ने के लिए छोड़ देते हैं। इस कूड़े-कचरे का कुछ अंश रिस-रिस कर भूमिगत जल में मिल जाता है और उसे भी प्रदूषित कर देता है। तमिलनाडु के उत्तरी अर्काट जिले में चमड़े के अनेक कारखाने हैं। उनके कूड़े कचरे से आस-पास के बहुत से गाँवों के कुओं का जल प्रदूषित हो गया है।

नदियों के जल को सबसे अधिक प्रदूषित शहर के गंदे नाले करते हैं। शहरों के गंदे नालों ने ही गंगा और यमुना के जल को प्रदूषित कर दिया है। यह कितनी बड़ी विडंबना है कि इनके तट पर बसे शहरों में इन्हीं नदियों का जल पीने के काम में भी लाया जाता है। प्रदूषित जल नदियों में रहने वाले जीवों को भी प्रभावित करता है। प्रदूषित जल से पीलिया, पेचिस और

टाइफाइड जैसी बीमारियाँ फैलती हैं, जो मनुष्यों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं।

कृषि में प्रयुक्त उर्वरकों तथा कीटनाशकों के द्वारा भी जल प्रदूषित होता है। खेतों से जल बहकर नदियों और झीलों में मिल जाता है और उन्हें भी प्रदूषित कर देता है। खेतों से बहकर आए पोषक तत्व, झीलों के जल को उर्वर बना देते हैं। इससे झीलों में **सुपोषण** हो जाता है। परिणामस्वरूप झीलों में शैवाल बहुत उग आती हैं और झीलें शैवालों से भर जाती हैं, जिससे पानी में घुली हुई आक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है। इससे इन झीलों की मछलियों और अन्य जलीय जीवों का दम घुट जाता है और वे मर जाते हैं।

महासागरों का जल भी प्रदूषित होने लगा है। महासागरों के जल के प्रदूषण के कई स्रोत हैं। तटों पर स्थित शहरों की गंदगी तथा कारखानों का सारा कूड़ा-कचरा सीधे समुद्रों में ही जाता है। तटीय दलदलों और अनूपों में सुपोषण से समुद्री जीवन प्रभावित होता है। तट से दूर गहरे महासागरों में भी तेल वाहक जहाजों से तेल रिसने तथा बिखरने से जल प्रदूषण होता है। महासागरों में बिखरा तेल लहरों तथा धाराओं के द्वारा दूर-दूर तक फैल जाता है और जल को प्रदूषित करता है।

भूमि-प्रदूषण

मृदा अपरदन तथा अवनालिका अपरदन से भूमि के बीहड़ों में बदलने के उदाहरण हम पहले ही पढ़ चुके हैं। नगरों द्वारा ठोस कूड़ा-करकट फेंकने से तथा खानों के पास बेकार पदार्थों के ढेर जमा होने से भूमि अन्य कार्यों के उपयुक्त नहीं रहती। ऐसे क्षेत्रों से बहकर आया जल नदियों को प्रदूषित करता है। इन्हीं क्षेत्रों से जल का रिसाव भूमिगत जल में प्रदूषण फैलाता है। सिंचाई से भी भूमि का प्रदूषण होने लगा है। सिंचित भूमि पर नमक या नमकीन परत जम जाती है। ऐसी भूमि खेती योग्य नहीं रहती है। अर्द्धमरुस्थलीय प्रदेशों में पवनें भारी मात्रा में बालू उड़ाकर पास-पड़ोस के खेतों में जमा कर देती हैं और खेत कृषि के लिए बेकार हो जाते हैं। यह मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया का प्रारंभ है। बाढ़ के दौरान कंकड़, पत्थर तथा रेत जमा हो जाने से खेत बर्बाद हो जाते हैं।

मनुष्य का जैव मंडल पर प्रभाव

मनुष्य पारिस्थितिक पिरामिड के शीर्ष पर है। वह परभक्षी की तरह कार्य करता है, क्योंकि वह सर्वाहारी है। मनुष्य विभिन्न प्रकार के पौधों और जंतुओं को खाता है। मनुष्य भूमि पर खेती करता है। इसका पारितंत्र पर गंभीर प्रभाव पड़ा है। खेती से प्राकृतिक पौधों का मूल आवरण हट जाता है। उसके स्थान पर एक दो फसलें बोई जाने लगती हैं। इससे जीवों में विविधता कम हो जाती है। इस प्रक्रिया में पारितंत्र सरल बन जाता है, जिसमें एक ही तरह के पौधों की प्रधानता होती है। नाशक जीव और फसलों के रोग अकेली फसल पर हमला कर देते हैं।

कृषि तथा अन्य कार्यों के लिए वनस्पति के आवरण के विनाश के अतिरिक्त मनुष्य ने किसी क्षेत्र विशेष से नए पौधे लाकर दूसरे क्षेत्रों में लगा दिए हैं या उनकी फसल ही पैदा करनी शुरू कर दी है। ऐसे नए पौधों को मनुष्य खाद्यान्न तथा कच्चा माल प्राप्त करने के लिए लाता है। उदाहरण के लिए वह अमेजन बेसिन से रबड़ के पौधे लाया और एशिया के उष्ण कटिबंधीय

प्रदेश में उनकी खेती शुरू कर दी। इस प्रक्रिया से वांछित फसलों के बीजों के साथ-साथ अवांछित पौधों के बीज भी आ जाते हैं। कुछ खर-पतवार इसी तरह संसार के विभिन्न भागों में पहुँच गए हैं। उदाहरण के लिए नागफनी और पारथीनियम घास को देखा जा सकता है। वायु और जल प्रदूषण भी पौधों पर बुरा प्रभाव डालता है। इससे उनकी कुछ जातियाँ तो विलुप्त ही हो गई हैं। मनुष्य ने कीट रोधी तथा अधिक उपज देने वाली संकर फसलों का विकास कर लिया है।

चुनी हुई विविध फसलों तथा पेड़ों की कृषि के समान, मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, कुछ विशेष जंतुओं को पालतू बना लिया है। इन पालतू जंतुओं की संख्या काफी बढ़ गई है, क्योंकि नई परिस्थितियों में इन्हें परभक्षियों से कोई खतरा नहीं होता। मनुष्य ने पालतू पशुओं की नस्लों में भी सुधार किया है ताकि उनसे अधिक दूध प्राप्त किया जा सके। देशी भेड़ों की तुलना में सुधरी हुई नस्ल की भेड़ों से अच्छी तथा अधिक मात्रा में ऊन प्राप्त होती है। मनुष्य ने अपने भोजन के लिए नाशक जीवों पर नियंत्रण के लिए तथा अन्य कारणों से नए पशुओं, पक्षियों, मछलियों आदि का पालन प्रारंभ किया है। जनसंख्या में वृद्धि तथा मानवीय क्रिया कलापों से कुछ पशुओं और पक्षियों के प्राकृतिक आवास नष्ट हो गए हैं या उनके आवास का क्षेत्रफल घट गया है। जीवों की कुछ जातियाँ तो लुप्त हो गई हैं तथा कुछ जीव, जैसे अमेरिकी गौर (बाइसन) के विलुप्त होने की आशंका है। मनुष्य ने पर्यावरण के प्रदूषण, पशु-पक्षियों के शिकार तथा नए परभक्षियों को पर्यावरण में छोड़कर कुछ जीवों की जातियों को विलुप्त किया है।

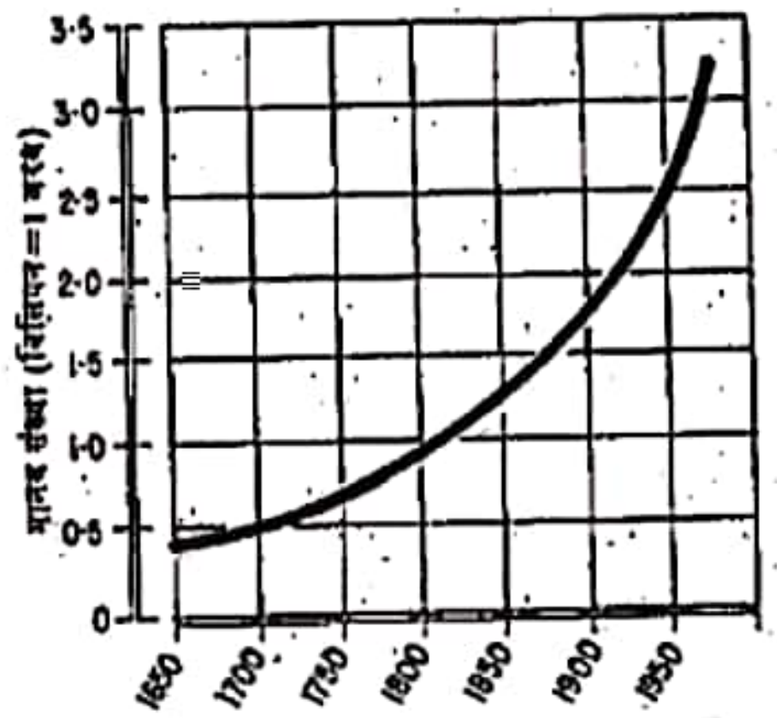

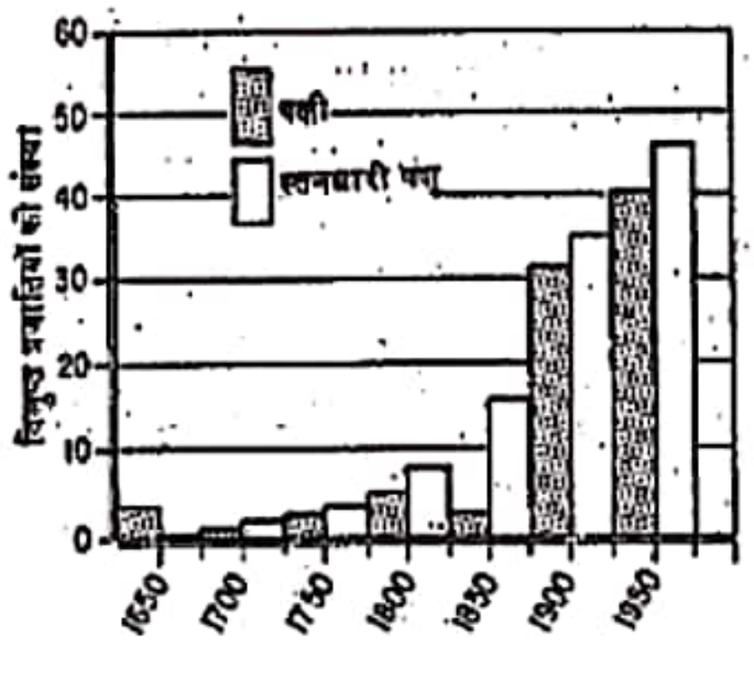

11.2 (क तथा ख) मानव जनसंख्या तथा जंतुओं की विलुप्त जातियों को प्रदर्शित करनेवाला आरेख

ध्यान दीजिए कि जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ जंतुओं की विलुप्त जातियों की संख्या भी बढ़ रही है। ऐसा क्यों हो रहा है?

साधनों का ह्रास

विगत कुछ वर्षों में जनसंख्या में वृद्धि तथा प्रति व्यक्ति उपभोग में वृद्धि के फलस्वरूप सभी प्रकार के साधनों का ह्रास हुआ है। ऐसे साधनों के ह्रास का सबसे असाधारण उदाहरण है, संसार के 100 देशों में खाद्यान्नों का अभाव। पिछले 20 सालों में अफ्रीका के कुछ देशों में वनों के विनाश, मृदा अपरदन तथा जल स्तर के नीचे चले जाने के कारण फसलों की उपज काफी कम हो गई है। अफ्रीका के सवाना प्रदेश में पशुओं के चारे की कमी से अनेक पशु मर गए हैं। इन देशों के निवासी कुपोषण के शिकार हैं तथा इन्हें बीमारियाँ भी जल्दी पकड़ लेती हैं।

जनसंख्या के दबाव से वन और मृदा साधन बड़ी तेजी से घट रहे हैं। उष्ण कटिबंधीय वन 2% प्रति वर्ष की दर से कम हो रहे हैं। भविष्य में इसके गंभीर परिणाम होंगे। जलाऊ लकड़ी की कमी तथा इसकी कीमतों में वृद्धि, गरीबों को प्रभावित कर रही है। ऐसा अनुमान है कि संसार की उपरिमृदा का 7% भाग प्रति दशक की दर से नष्ट हो रहा है। इसका अर्थ यह हुआ कि कुछ दशकों में मूल्यवान कृषि योग्य भूमि बेकार हो जाएगी। इस प्रकार बढ़ती हुई माँग के फलस्वरूप साधनों का अधिकाधिक उपभोग हो रहा है। साधनों को पुनरुत्पादन का समय ही नहीं मिल पा रहा है। इस प्रकार वन और मृदा जैसे संपूर्ति साधन भी धीरे-धीरे अनापूर्ति साधन बनते जा रहे हैं।

साधनों के ह्रास में अनापूर्ति खनिज तथा शक्ति के साधनों का ह्रास सबसे अधिक चौंकाने वाला है। बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए खनिज पदार्थों का उपभोग बड़ी तेजी से हो रहा है। संसार में इनके उपभोग का प्रारूप भी बहुत ही असमान है। संसार के एक चौथाई खनिजों का उपभोग, अकेले संयुक्त राज्य अमेरिका में हो रहा है। संसार में खनिजों का वितरण इतना असमान है कि अधिकतर खनिजों का उत्पादन केवल कुछ ही देशों में होता है। लौह अयस्क के अतिरिक्त अन्य धात्विक खनिज कुछ दशकों में ही समाप्त हो जाएँगे। खनिजों की माँग में वृद्धि के कारण इनके मूल्य भी बढ़े हैं। परिणामस्वरूप कारखानों में बची धातु की क़तरनों तथा पुरानी वस्तुओं का पुनः चक्रण होने लगा है। धातुओं के स्थान पर प्लास्टिक और लकड़ी भी काम में लाई जाने लगी है।

ऊर्जा का संकट संसार के सामने है, क्योंकि खनिज तेल के वर्तमान ज्ञात साधन कुछ ही दशकों में खत्म हो जाएँगे। यह सही है कि कोयला, आने वाली कुछ शताब्दियों तक मिलता रहेगा, लेकिन यह तेल का स्थान तो नहीं ले सकता, विशेष रूप से परिवहन में। तेल का संरक्षण अत्यावश्यक है। कम ऊर्जा से अधिक कार्य करने वाले इंजनों के विकास तथा प्रयोग से ऊर्जा की खपत कम हो सकती है। ऊर्जा के संपूर्ति साधनों के अधिकाधिक उपयोग से तेल पर दबाव घटाया जा सकता है और यह साधन कुछ अधिक लंबी अवधि तक मिल सकता है। विकासशील देशों की तुलना में विकसित देशों में ऊर्जा की खपत कई गुनी है। ऊर्जा का उपयोग करने वाली मशीनों की कार्यक्षमता बढ़ाकर, इसकी खपत को कम किया जा सकता है।

निष्कर्ष

मनुष्य अब समझने लगा है कि उसकी आर्थिक गतिविधियाँ ही पृथ्वी पर उसके अस्तित्व

के लिए आशंका पैदा कर रही है। पृथ्वी पर अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए मनुष्य को यह ज्ञान होना बहुत आवश्यक है कि वह पर्यावरण के परस्पर जुड़े तत्वों के साथ सामंजस्य रखकर ही जीवित रह सकता है। इसके अतिरिक्त अपने जीवित रहने के लिए उसे यह भी जानना जरूरी है कि पर्यावरण के घटक कौन से हैं, पर्यावरण में कैसी प्रक्रियाएँ चलती रहती हैं और पर्यावरण के विभिन्न जैव एवं अजैव घटकों का एक दूसरे से क्या संबंध है? इतना ही नहीं, उसे किसी प्रदेश के साधनों का आकलन उस प्रदेश के निवासियों की आवश्यकताओं के संदर्भ में ही करना पड़ेगा। विकासशील देशों में जनसंख्या की वृद्धि दर में कमी द्वारा जनसंख्या और साधनों में संतुलन रखा जा सकता है। पर्यावरण की समस्याओं को जानकर ही उनके समाधान के लिए मनुष्य उपयुक्त उपाय कर सकेगा तथा अपनी पृथ्वी को भावी पीढ़ियों के निवास योग्य बनाए रख सकेगा।

स्वाध्याय

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए–
   (1) एक उदाहरण देकर समझाइए कि मनुष्य ने प्राकृतिक पर्यावरण की आपदाओं पर विजय कैसे प्राप्त की है।
   (2) पर्यावरण पर औद्योगिक क्रांति के प्रभाव की विवेचना कीजिए।
   (3) विगत वर्षों में पर्यावरण के प्रदूषण के उदाहरण दीजिए।
   (4) वायुमंडल में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा में वृद्धि का क्या प्रभाव पड़ेगा?
   (5) जल प्रदुषण के उदाहरण दीजिए।
   (6) 'ऊर्जा संकट' की व्याख्या कीजिए।
2. वायु प्रदूषण के क्या कारण हैं?
3. जैवमंडल पर मनुष्य के प्रभाव का वर्णन कीजिए।
4. पिछले दशकों में साधनों के ह्रास का विवरण लिखिए।

स्वयं करें और खोजें

1. अपने क्षेत्र के पर्यावरण में प्रदूषण का अध्ययन कीजिए तथा प्रदूषण के स्रोतों की जानकारी प्राप्त करके प्रदूषण को कम करने के उपाय सुझाइए।
2. पत्र-पत्रिकाओं से पर्यावरण के प्रदूषण संबंधी समाचार और चित्र एकत्र कीजिए।

पठनीय पुस्तकें

1. जोसेफ एम० मोरान तथा अन्य : इंट्रोडक्शन टु इनवायरनमेंटल साइंस, डब्ल्यू० एच० फ्रीमैन एण्ड कंपनी, सेन फ्रांसिस्को।
2. जान पी० कोलार्स एण्ड जान डी० निश्चुएन : फिजीकल ज्याग्रफी—इनवायरनमेंट एण्ड मैन, मैग्राहिल, न्यूयार्क।

12

क्षेत्र-विकास

किसी क्षेत्र का विकास, उस क्षेत्र में उपलब्ध साधनों, वहाँ के निवासियों की आवश्यकताओं तथा महत्वाकांक्षाओं और उनके तकनीकी कौशल पर निर्भर करता है। किसी क्षेत्र के प्राकृतिक उपहारों का साधन के रूप में मूल्य तभी बढ़ता है, जब लोगों को उनके किसी उपयोग का ज्ञान हो जाता है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जहाँ संभाव्य साधन विशाल मात्रा में उपलब्ध हैं, लेकिन आर्थिक कारणों से उनका विकास नहीं हो पाया है। पूँजी, सड़कें और रेल मार्ग तथा अन्य आवश्यक सुविधाओं के अभाव होने पर साधनों के विकास में कठिनाइयाँ आती हैं।

हम पहले ही पढ़ चुके हैं कि संसार के राष्ट्रों के बीच साधनों का वितरण बहुत ही असमान है। यही नहीं, प्रत्येक देश के अंदर भी साधनों की उपलब्धि और विकास में काफी अंतर होते हैं। साधनों के विकास में भिन्नता के कारण एक ही देश के विभिन्न क्षेत्रों में तथा संसार के राष्ट्रों के बीच वस्तुओं का विनिमय आवश्यक हो जाता है। किस साधन का विकास पहले किया जाए, इसके निर्णय का आधार विभिन्न आर्थिक कारक होते हैं। जिन साधनों का विकास कम खर्च में हो सकता है, उन्हें पहले विकसित किया जाता है। इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र कुछ निश्चित साधनों के विकास में विशेषज्ञता प्राप्त कर लेता है।

गाँव और नगर एक दूसरे के पूरक हैं। गाँवों से नगरों को खाद्यान, दूध, सब्जियाँ आदि भेजी जाती हैं। बदले में नगर, गाँव के लोगों को निर्मित वस्तुएँ तथा सेवाएँ जैसे शिक्षा, चिकित्सा, आदि प्रदान करते हैं। इस प्रकार, ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों में निरंतर अंतर्क्रिया होती रहती है।

इस संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय स्तर के उदाहरण, विषय को और अधिक स्पष्ट कर सकेंगे। मलेशिया, रोपण कृषि द्वारा भारी मात्रा में रबड़ का उत्पादन करता है तथा इसका अन्य देशों को निर्यात करता है। बदले में मलेशिया अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए खाद्यान्नों का आयात करता है। कांगो लो० ग० ने तांबे की खानों का विकास कर लिया है। वह तांबे का निर्यात करके, अपनी आवश्यकताओं की वस्तुएँ आयात कर लेता है। इस प्रकार प्रत्येक देश, आत्मनिर्भर बनने के लिए अपने सभी साधनों का विकास हर कीमत पर नहीं करता, क्योंकि ऐसा करना आर्थिक दृष्टि से लाभदायक नहीं है। क्षेत्र विकास में, वस्तुओं और सेवाओं के विनिमय में, राष्ट्रों की परस्पर निर्भरता का ध्यान रखा जाता है। विकासशील देश कच्चे पदार्थों का निर्यात करते हैं तथा विकसित देशों से निर्मित वस्तुओं का

आयात करते हैं।

किसी क्षेत्र के विकास में मनुष्य की महत्वपूर्ण तथा निर्णयात्मक भूमिका होती है। वह उन्हीं साधनों को चुनता है, जिनके विकास से उसे लाभ मिल सकता है। साधनों का विकास इस बात पर निर्भर करता है कि उसके उपकरण तथा तकनीकी ज्ञान कैसा और कितना है। उस क्षेत्र में रहने वाले लोगों के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक संगठन भी साधनों के विकास को प्रभावित करते हैं। अमेजन बेसिन और मलेशिया, दोनों को ही प्रकृति ने विषुवतीय वर्षा वनों का उपहार दिया है। अमेजन बेसिन के वनों में पहुँचना कठिन है। इसके विपरीत मलेशिया के वन सुगम्य हैं, क्योंकि मलेशिया एक संकरा प्रायद्वीप है, जिसके अंदर समुद्री तटों से होकर आसानी से पहुँचा जा सकता है। इसीलिए मलेशिया की तुलना में अमेजन बेसिन के वनों का विकास कम हुआ है। मलेशिया में मूल वनों के स्थान पर रबड़ के पेड़ों के बहुत बड़े-बड़े बाग लगाए गए हैं। यहाँ रबड़ के बागानों का विकास मलेशिया के लोगों का ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के साथ बाह्य संपर्क से हुआ है। अंग्रेजों ने संसार में रबड़ की बढ़ती हुई माँग को पहचान लिया था। अतः उन्होंने रबड़ के पौधे, अमेजन बेसिन से लाकर, मलेशिया के साफ किए गए वन क्षेत्रों में लगाए। रबड़ के बागानों में काम करने के लिए श्रमिक भी वे भारत से ले आए। इस प्रकार, इस उदाहरण में क्षेत्र का विकास बाहरी प्रेरणा से हुआ है। रबड़ के निर्यात को ध्यान में रखते हुए यहाँ पूँजी, श्रमिक तथा प्रबंधकों आदि को बाहर से लाया गया। मलेशिया निवासियों का इस क्षेत्र के इस तरह के विकास में कोई योगदान नहीं था।

इस प्रकार किसी साधन का विकास होना या न होना कई कारकों पर निर्भर करता है जैसे– अंतर्राष्ट्रीय माँग तथा मूल्य का स्तर और स्थानीय लोगों की आवश्यकताएँ तथा आकांक्षाएँ। आयात करने वाले देशों की माँग को पूरा करने के उद्देश्य से ही कर्नाटक के कुद्रेमुख क्षेत्र की लौह-अयस्क की खानों का विकास किया गया है।

किसी साधन के विकास में विशेषज्ञता प्राप्त कर ली जाती है, जैसे–बंबई हाई के तेल क्षेत्रों का विकास, न केवल महाराष्ट्र के क्षेत्रों की आवश्यकता, अपितु सारे राष्ट्र की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया गया है। असम में चाय के बागान न केवल स्थानीय और प्रादेशिक, अपितु अंतर्राष्ट्रीय माँग की पूर्ति के लिए भी लगाए गए हैं। आस्ट्रेलिया में भेड़ पालन व्यवसाय ऊन की अंतर्राष्ट्रीय माँग के बल पर ही फल-फूल रहा है, क्योंकि जनसंख्या कम होने के कारण स्थानीय माँग बहुत ही कम है। मानवीय साधनों के आधार पर विकास का सुन्दर उदाहरण जापान है। यह अधिकतर कच्चे पदार्थ जैसे लौह-अयस्क, कोकिंग कोयला, आयात करता है तथा अपने लोगों के तकनीकी कौशल से तैयार की गई विभिन्न वस्तुओं का निर्यात करता है। अंतर्राष्ट्रीय माँग या मूल्यों में परिवर्तन तथा नई तकनीकी भी किसी क्षेत्र के साधन के विकास को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए सन् 1973 के बाद पैट्रोलियम के मूल्यों में अचानक भारी वृद्धि ने हमारे देश में तथा उत्तर सागर में तेल की खोज को प्रोत्साहित किया है।

समय के अनुसार भी किसी क्षेत्र के विकास में परिवर्तन हो जाता है। स्वतंत्रता से पूर्व हम सुई से लेकर वायुयान तक विदेशों से आयात करते

थे। पिछले 40 वर्षों में साधनों के सुनियोजित विकास के परिणामस्वरूप न केवल कृषि का उत्पादन बढ़ा है, अपितु निर्माण उद्योगों में विविध वस्तुएँ भी बनने लगी हैं। एक समय था, जब हम अपनी आवश्यकता के वस्त्र ब्रिटेन या अन्य देशों से मँगाते थे। अब हम अनेक प्रकार के वस्त्र तथा सिले-सिलाए कपड़ों का निर्यात करते हैं, क्योंकि अब हमारा वस्त्र उद्योग विकसित हो गया है। राजनीतिक स्वतंत्रता से हमें यह अधिकार मिल गया है कि हम अपने साधनों का विकास, अपने देशवासियों की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुरूप कर सकें। साधनों के विकास के द्वारा, अब हमारे पास अपने इंजीनियरों, वैज्ञानिकों और कुशल प्रबंधकों के रूप में विकसित मानवीय साधन हैं। अब हम इनके द्वारा अपने प्राकृतिक साधनों का विकास करने में जुटे हुए हैं।

दूसरे देशों में भी समय, क्षेत्र विकास का

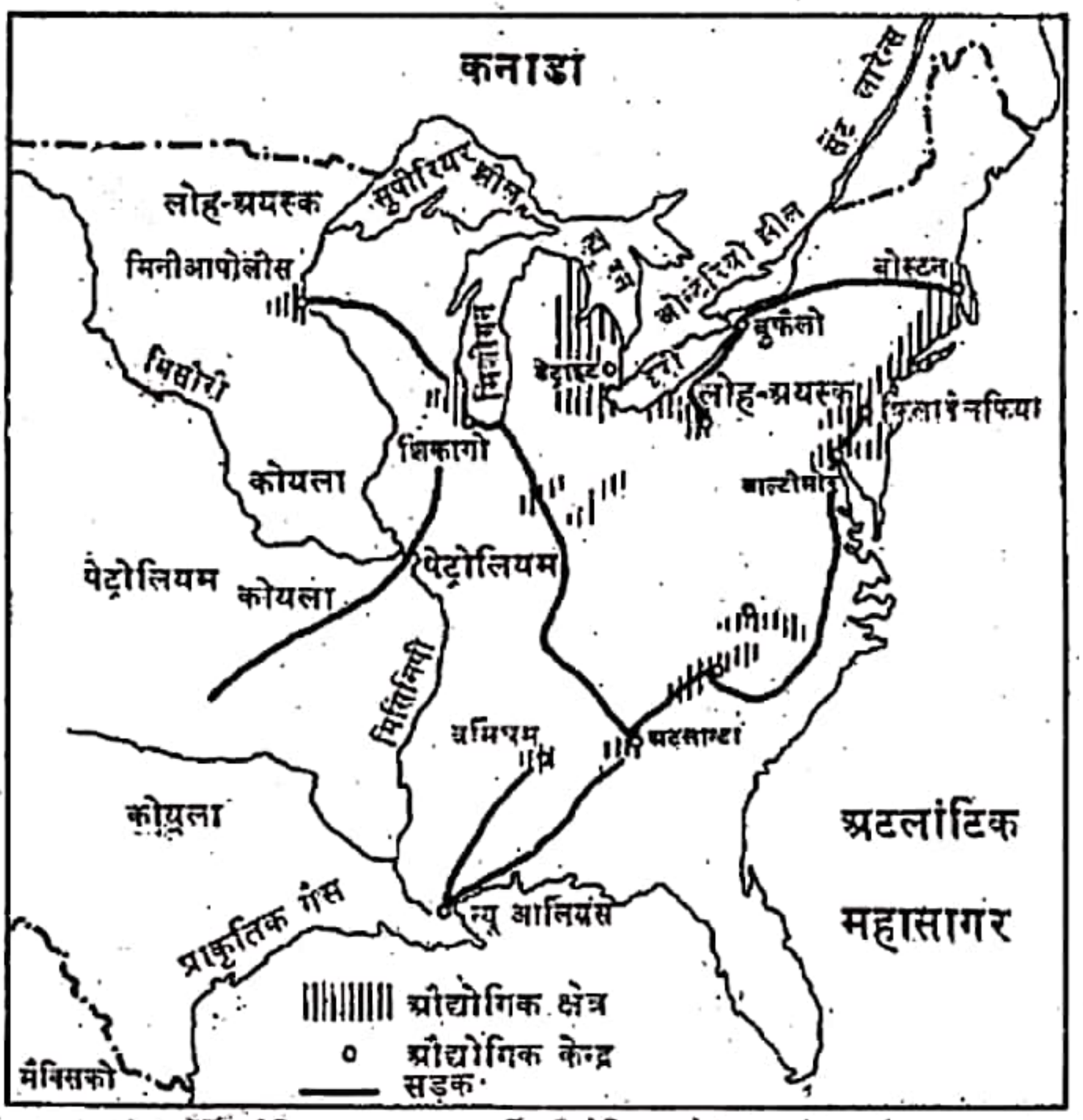

12.1 संयुक्त राज्य अमेरिका का उत्तर पूर्वी औद्योगिक प्रदेश

ध्यान दीजिए कि कोयले, लौह अयस्क और तेल क्षेत्रों की निकटता तथा परिवहन मार्गों का विकास इस प्रदेश की अनुकूल स्थिति के लिए कितना महत्वपूर्ण है।

महत्वपूर्ण कारक है। रेल मार्गों के बनने से पूर्व कनाडा के "प्रेरी" घास के मैदान यूँ ही पड़े थे। रेल मार्गों के विकास ने लोगों को वहाँ जाकर बसने के लिए प्रेरित किया। अब वहाँ केवल थोड़े से श्रमिकों की मदद से ट्रैक्टरों और अन्य कृषि-मशीनों का उपयोग करके, विस्तृत क्षेत्रों में गेहूँ की खेती होने लगी है। दक्षिण-पश्चिमी एशिया में खनिज तेल की खोज और उसके विकास से, इन प्रदेशों की बड़ी तेजी से आर्थिक प्रगति हुई। इस प्रकार नए साधनों की खोज, विज्ञान एवं तकनीकी में उन्नति तथा लोगों की आवश्यकताएँ और आकांक्षाएँ समय के अनुसार बदलती रही हैं। पर्यावरण के प्रदूषण, साधनों के ह्रास तथा थोड़े से समय में जनसंख्या में तेज वृद्धि से, कुछ क्षेत्रों में बुरा प्रभाव पड़ा है।

क्षेत्र विकास में समय एक महत्वपूर्ण कारक है, अतः हम विकास की अवस्थाओं या स्तर में स्पष्ट अंतर जान सकते हैं। उदाहरण के लिए, उष्ण कटिबंधीय वर्षा वनों के दुर्गम क्षेत्रों में रहने वाली जनजाति के लोग भोजन संग्रह करके तथा शिकार के द्वारा अपना निर्वाह करते हैं। इनका पर्यावरण पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है तथा साधनों का भी कम ही विकास हो पाया है। लोग सादा जीवन बिताते हैं और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्थानीय क्षेत्र से कर लेते हैं। विकासशील देशों को द्वितीय अवस्था में माना जा सकता है, क्योंकि उन्होंने अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कृषि, पशुचारण तथा खनिज-साधनों-का-विकास-कर-लिया-है। यदि उत्पादन का कुछ भाग बचता है तो कच्चे माल के रूप में उसका निर्यात भी कर दिया जाता है। उन्होंने निर्माण उद्योगों का विकास नहीं किया है। विकसित देश क्षेत्र विकास की तृतीय अवस्था में हैं। इन देशों में से अधिकतर लोग गौण और तृतीयक व्यवसायों में लगे हुए है। विकसित देशों में प्रति व्यक्ति आय बहुत अधिक है। अतः ये, भारी मात्रा में, खाद्यान्नों, शक्ति के साधनों, खनिज पदार्थों तथा अन्य साधनों का उपयोग करते हैं। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में इन देशों का ही बहुत बड़ा हिस्सा है। संयुक्त राज्य अमेरिका, पश्चिमी यूरोप के देश और जापान विकसित देशों के उदाहरण हैं।

साधनों के विकास में अंतर होने के कारण, हमारे देश के विभिन्न प्रदेशों के विकास में भी विषमताएँ आ गई हैं। इन विषमताओं को कम करने के उपाय किए जा रहे हैं। योजना आयोग तथा भारत सरकार, पिछड़े क्षेत्रों, पर्वतीय क्षेत्रों तथा जनजाति क्षेत्रों के विकास को प्रोत्साहन दे रही है। इसी प्रकार अनुसूचित जातियों, जनजातियों, विकलांगों और महिलाओं की उन्नति के लिए विशेष योजनाएँ चलाई जा रही हैं। इन उपायों से सभी क्षेत्रों तथा जनसंख्या के विभिन्न वर्गों का संतुलित विकास हो सकेगा।

क्षेत्र विकास—एक कृषि प्रदेश

चीन में चांग जिआंग नदी का डेल्टा एक विशेष कृषि प्रदेश है। चीनवासियों को "चालीस शताब्दियों के किसान" के नाम से जाना जाता है। इसका यही तात्पर्य है कि इस प्रदेश में मनुष्य 4000 वर्षों से खेती करते आ रहे हैं। प्रशांत महासागर के तट के निकट फैला यह प्रदेश बिल्कुल समतल मैदान है। चांग ज़िआंग एक सदानीरा बड़ी नदी है। इसमें अक्सर बाढ़ आ जाती है। निचले भागों को बाढ़ से बचाने के लिए नदी के किनारों पर तटबंध बनाए गए हैं। इस

प्रदेश की मिट्टी बहुत ही उपजाऊ है, क्योंकि चांग जिआंग तथा इसकी उपनदियों ने गाद लाकर यहाँ जमा कर रखी है। ग्रीष्म ऋतु में साधारण वर्षा होती है। यहां ग्रीष्म ऋतु कोण्ण तथा आर्द्र और शीत ऋतु शीतल तथा शुष्क होती है। वर्षा के पानी की कमी को नहरों द्वारा सिंचाई करके पूरा कर लिया जाता है। इसीलिये यहाँ नहरों का सुनियोजित विकास किया गया है।

जनसंख्या का घनत्व बहुत ऊँचा है। लोगों का मुख्य धंधा खेती है। खेत छोटे-छोटे हैं तथा खेती का अधिकतर काम मानव श्रम से होता है। खेतों की जुताई के लिए पशुओं की सहायता ली जाती है। खेतों में जीवों से प्राप्त खाद का प्रयोग किया जाता है। इसमें हरी खाद तथा मल-मूत्र शामिल होता है। इस प्रदेश में अधिक उपज देने वाली फसलें ही बोई जाती हैं। ग्रीष्म ऋतु में पैदा की जाने वाली मुख्य फसल चावल है। बोने से लेकर काटने तक की पूरी अवधि में फसल पर पूरा-पूरा ध्यान दिया जाता है। फसलों को कीड़ों-मकोड़ों से बचाने के उपाय काम में लाए जाते हैं। अधिकतर खेतों में एक से अधिक फसलें उपजाई जाती हैं। संसार में फसलों की औसत उपज की तुलना में यहाँ उपज बहुत अधिक है।

लोग गाँवों में रहते हैं। शिक्षा, चिकित्सा तथा अन्य सुविधाएँ गाँव में ही मिल जाती हैं। पुरुष और स्त्री दोनों ही खेतों में काम करते हैं या किसी कुटीर उद्योग में लगे रहते हैं। गाँववासियों को निकटतम नगरों तक जाने के लिए परिवहन की पूरी सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

समुद्र तट पर बसे कुछ गाँवों में लोगों का महत्वपूर्ण धन्धा मछली पकड़ना है। इस प्रदेश में मछलियाँ नगर के बाजारों में भेजी जाती हैं। यहाँ नदियों और नहरों में मछली पकड़ना सामान्य बात है। धान के खेतों में भी मछलियाँ पाली जाने लगी हैं, क्योंकि धान की बुआई के काफी दिनों बाद तक भी धान के खेत पानी से भरे रहते हैं। इस प्रकार धान के खेत चावल और मछली, दोनों ही प्रदान करते हैं। मछलियाँ चीनवासियों के भोजन को प्रोटीन से समृद्ध बना देती हैं।

गाँवो में सूअर भी पाले जाते हैं। सूअरों के पालने में अधिक ध्यान नहीं रखना पड़ता है, क्योंकि वे पौधों और जंतुओं के अवशेषों से अपना निर्वाह कर लेते हैं। सूअर शीघ्र मोटे हो जाते हैं तथा मादा सूअर एक बार में कई बच्चों को जन्म देती है। सूअरों को नगरों के बूचड़खानों में भेज दिया जाता है।

पिछले दशकों में जनसंख्या के तेजी से बढ़ने के पश्चात्, अब लोग भूमि पर जनसंख्या के दबाव को महसूस करने लगे हैं। सरकार छोटे परिवार का प्रचार कर रही है। इस जागृति के परिणामस्वरूप जनसंख्या वृद्धि दर दो प्रतिशत से घट कर लगभग एक प्रतिशत रह गई है। बच्चों के लिए अच्छी स्वास्थ्य सेवाओं के फलस्वरूप शिशु मृत्यु दर भी कम हो गई है। साधनों पर जनसंख्या के दबाव को कम करने के लिए तथा उपभोग घटाने के लिए "एक बच्चे" के आदर्श को प्रचारित किया जा रहा है।

शताब्दियों से लोग इस क्षेत्र में रहते आए हैं, अतः चीनी किसान ने अपने पर्यावरण के साथ सामंजस्य बनाकर रहना सीख लिया है। रासायनिक-उर्वरकों तथा कीटनाशकों का उपयोग अधिक नहीं है। अतः खेतों से बहकर आने वाले पानी से जलाशयों का प्रदूषण बहुत कम होता है। जैव खाद के प्रयोग से पोषकों का पुनः चक्रण हो

जाता है और इससे उपज भी अधिक मिलती है।

इस विशाल जलोढ़ निम्न भूमि प्रदेश में खनिज और वन-साधन उपलब्ध नहीं हैं। लेकिन गाँवों के चारों ओर पेड़ों के झुरमुट दिखाई पड़ते हैं। उद्योगों में निर्मित वस्तुएँ, पड़ौसी प्रदेशों से मँगा ली जाती हैं तथा कृषि उत्पादन का अतिरिक्त भाग नगरों के बाजारों में बेच दिया जाता है। खाद्यान्नों का संसाधन, इस प्रदेश की एक मात्र औद्योगिक क्रिया है। ऐसे उद्योगों से किसी प्रकार का प्रदूषण नहीं होता है।

क्षेत्र विकास—एक औद्योगिक प्रदेश—उत्तर पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका

इस प्रदेश में अटलांटिक तट से लेकर 'ग्रेट लेक्स' तक का विस्तृत क्षेत्र सम्मिलित है। यूरोप के प्रवासी सबसे पहले यहीं बसे थे। इस प्रदेश में तब मध्य-अक्षांशीय घने वनों का आवरण था। यहाँ की स्थलाकृति असमान है। अटलांटिक तट के साथ मैदान की संकरी पट्टी है। मैदानी भाग से अप्लेशियन पर्वत एकदम ऊपर उठ जाते हैं। समुद्र तट दंतुरित है। समुद्र स्थान-स्थान पर संकरी खाड़ियों के रूप में स्थल भाग घुसा हुआ लगता है। ऐसे तट पर जहाजों के लिए अच्छे सुरक्षित प्राकृतिक पोताश्रय बन गए हैं। अप्लेशियन पर्वतों के उस पार पश्चिम में तरंगित मैदान है, जिसका ढाल ग्रेट लेक्स की ओर है।

इस प्रदेश में ग्रीष्म ऋतु कोष्ण तथा शीत ऋतु ठंडी होती है। पहाड़ी ढालों पर वनों के उगने के लिए वर्षा की मात्रा पर्याप्त होती है। प्रदेश के भीतरी भाग में, ग्रेट लेक्स की ओर, वनों का स्थान घास भूमियाँ ले लेती हैं। इस ऊबड़-खाबड़ भूभाग में मिट्टी की परत पतली और अनुपजाऊ है। यूरोप के आप्रवासियों ने तट के समीपवर्ती कम ढाल वाली भूमि के वनों को साफ करके खेती शुरू की थी। दूध और मांस के लिए वे पशुओं को भी पालते थे। समुद्र से मछली पकड़कर वे अपने भोजन की कमी को पूरा कर लेते थे।

जब आप्रवासी लोग तट से अंदर की ओर बढ़कर अप्लेशियन पर्वतीय प्रदेशों में पहुँचे, वहाँ उन्हें कोयले के विशाल भंडार मिले। यही नहीं, ग्रेट लेक्स के तट के निकटवर्ती क्षेत्रों में लौह-अयस्क के बड़े भंडार भी उन्होंने खोज निकाले। इस प्रदेश में खनिज तेल के क्षेत्रों का भी विकास हुआ है। पूर्वी तट के साथ-साथ अनेक जल प्रपात पाए जाते हैं। इन जल प्रपातों को जल-विद्युत बनाने के काम में लाया गया है। प्रचुर मात्रा में शक्ति की उपलब्धि से विविध प्रकार के निर्माण उद्योगों का यहाँ विकास हुआ है॥ तट पर अनेक प्राकृतिक पोताश्रयों पर पत्तन विकसित हो गए हैं। इन पत्तनों ने कच्चे माल के आयात तथा उद्योगों में निर्मित वस्तुओं के निर्यात को प्रोत्साहन दिया है। ये पत्तन सड़कों, रेलों तथा अंत:स्थलीय जलमार्गों द्वारा भीतरी भागों से जुड़े हुए हैं। इस प्रदेश में परिवहन की उत्तम सुविधाएँ हैं।

इस प्रदेश में, सूती और ऊनी वस्त्र, लोहा तथा इस्पात, रसायन, इलैक्ट्रोनिक उद्योग आदि खूब विकसित हैं। इन उद्योगों के विकास का आधार यहाँ के कुशल कारीगर हैं। न्यूयार्क का महानगर, इस प्रदेश की सभी आर्थिक गतिविधियों का केंद्र है। न्यूयार्क के पोताश्रय की 1000 किलोमीटर लंबी जल सीमा है, जिससे बड़ी संख्या में जहाज आकर यहाँ रुक सकते हैं। यह संसार का विशालतम तथा व्यस्ततम पत्तन है। न्यूयार्क संसार में व्यापार और बैंकिंग का महत्वपूर्ण केंद्र भी है। संयुक्त राष्ट्र संघ का

मुख्यालय यहीं स्थित है, अतः न्यूयार्क में राजनीतिक हलचलें बड़ी तेज रहती हैं।

जब लोगों ने आकर यहाँ बसना शुरू किया था तब निर्वाह कृषि उनका मुख्य व्यवसाय था। वे मुख्य रूप से आलू तथा खाद्यान उपजाते थे। उद्योगों और नगरों के विकास के साथ, तटीय क्षेत्रों में निर्वाह कृषि का स्थान व्यापारिक बागवानी तथा दुग्ध व्यवसाय ने ले लिया है। व्यापारिक बागवानी में नगरवासियों के लिए सब्जियाँ पैदा की जाती हैं। दुग्ध व्यवसाय को व्यापारिक स्तर पर संगठित किया गया है। इस प्रकार ताजा दूध तथा दूध के उत्पाद नगरों में रहने वाली बहुत बड़ी जनसंख्या को उपलब्ध कराए जाते हैं।

इस प्रदेश में तट के समीप समृद्ध मत्स्य क्षेत्र हैं। न्यूफाउंडलैंड से कुछ दूर फैला ग्रांड बैंक, ठंडी और गर्म धाराओं के मिलने का क्षेत्र है। इस क्षेत्र में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध तत्वों को खाने के लिए झुंड की झुंड मछलियाँ यहाँ चली आती हैं। तट पर अनेक पत्तनों की स्थिति से व्यापारिक स्तर पर मछली पकड़ने को प्रोत्साहन मिला है। मछलियाँ और उनके उत्पाद संयुक्त राज्य अमेरिका के विभिन्न भागों को भेजे जाते हैं।

नगरों की संख्या अधिक होने के कारण यह प्रदेश घना बसा हुआ है। न्यूयार्क और इसके उपनगरों में डेढ़ करोड़ लोग रहते हैं। गगनचुंबी भवन न्यूयार्क तथा अन्य नगरों की विशेषता है। भूमि के अभाव में भवन आकाश की ओर ही बढ़ रहे हैं। इन भवनों में जल और बिजली की आपूर्ति निरन्तर बनी रहती है। यहाँ परिवहन की आधुनिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं। न्यूयार्क, वायु मार्गों द्वारा संसार के सभी प्रमुख नगरों से जुड़ा है।

न्यूयार्क तथा इसके आस-पास के क्षेत्र के विकास से पर्यावरण पर मनुष्य के असाधारण और अधिकतम प्रभाव का संकेत मिलता है। इस प्रदेश ने अन्य देशों के साधनों के विकास को भी प्रोत्साहित किया है, क्योंकि वे देश यहाँ के निर्माण उद्योगों के लिए कच्चा माल भेजते हैं। यहाँ उद्योगों के द्वारा पर्यावरण का प्रदूषण चरम सीमा पर पहुँच गया है। अब प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए नियमों का कड़ाई से पालन करवाया जा रहा है। उद्योगों के अलावा मोटरों और कारों के धुएँ से भी वायु प्रदूषण होता है। इस प्रदेश में बहुत अधिक जनसंख्या है, अतः यहाँ साधनों का उपयोग भी बड़े पैमाने पर होता है। इस प्रदेश का खाद्य पदार्थों और शक्ति का प्रति व्यक्ति उपभोग संसार में सबसे अधिक है। शक्ति की बर्बादी को कम ऊर्जा खर्च करने वाली मशीनों के उपयोग से घटाया जा सकता है। इस प्रदेश में प्रति व्यक्ति ऊँची आय से उपभोग तथा साधनों की बर्बादी को बढ़ावा मिला है। लेकिन अब लोग साधनों तथा पर्यावरण के संरक्षण की महत्ता को स्वीकार करने लगे हैं। फलस्वरूप जल, कागज तथा अन्य पदार्थों के पुनः चक्रण के उपाय किए जा रहे हैं। धातुओं से बनी पुरानी तथा बेकार वस्तुओं को गलाकर, धातुओं का पुनः प्रयोग प्रारंभ हो गया है। यद्यपि जनसंख्या का घनत्व अधिक है, लेकिन जनसंख्या की वृद्धि दर एक प्रतिशत से कम है। जनसंख्या को स्थिर करने का उद्देश्य यही है कि जीवन स्तर ऊँचा बना रहे। जीवाश्म ईंधनों की बर्बादी में कमी तथा उनका अधिक सक्षम उपभोग और शक्ति के संपूर्ति साधनों का अधिकाधिक उपयोग, अब अत्यावश्यक हो गया है, क्योंकि तेल साधनों के आगामी कुछ दशकों में ही समाप्त हो जाने की

आशंका है।

क्षेत्र विकास के इन दो उदाहरणों के द्वारा, विकास के दो भिन्न स्तरों पर, मनुष्य और पर्यावरण का संबंध बहुत अच्छी तरह स्पष्ट हो गया है। चीनी किसान अपनी अधिकतर आवश्यकताओं के लिए स्थानीय पर्यावरण पर आश्रित हैं। इसके विपरीत न्यूयार्क प्रदेश के निवासियों की आवश्यकताओं की पूर्ति, दूसरे देशों से आयात की गई वस्तुओं के द्वारा होती है। यहाँ के लोग अन्य देशों से लौह-अयस्क तथा अन्य कच्चे पदार्थ आयात करते हैं तथा अपने विकसित निर्माण उद्योगों में उनसे उपयोगी वस्तुएँ बनाकर ऊँचे मूल्यों पर निर्यात करते हैं। परिवहन और संचार के आधुनिक साधनों द्वारा, इन्हें आयात-निर्यात में सुविधा होती है। इससे इन्हें भारी लाभ होता है। परिणामस्वरूप इनका जीवन स्तर ऊँचा है। इस प्रकार वस्तुओं का अंतर्राष्ट्रीय विनिमय ही इस क्षेत्र के विकास का आधार है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार से ही इतनी विशाल नागरिक जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति हो पाती है।

क्षेत्र-विकास के लिए योजना बनाना बहुत आवश्यक है, ताकि साधनों का विकास लोगों को अधिकतम लाभ पहुँचाने के लिए हो सके। आर्थिक विकास के साथ पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखना भी बहुत आवश्यक है। इस कार्य में किसी क्षेत्र में उपलब्ध साधनों, उनके विकास की लागत, विकास का पर्यावरण पर प्रभाव तथा ऐसे साधनों की अंतर्राष्ट्रीय माँग का सर्वेक्षण सहायक होगा। संपूर्ति साधनों का संरक्षण भी अनिवार्य है, जिससे वनों और मिट्टी के विनाश की दर तथा उनकी संपूर्ति की दर में संतुलन बना रहे। धातुओं की पुरानी और बेकार एवं औद्योगिक कतरनों को गलाकर उनका पुनः प्रयोग किया जा सकता है। यह खनिज जैसे अनापूर्ति साधनों के संरक्षण की एक विधि का उदाहरण है। रद्दी कागजों तथा फटे-पुराने कपड़ों के पुनःचक्रण से बड़े पैमाने पर वनों के शोषण को कम किया जा सकता है। क्षेत्र विकास का उद्देश्य पर्यावरण की सुरक्षा तथा साधनों का संरक्षण होना चाहिए, तभी पृथ्वी मनुष्य के जीने लायक बनी रह सकेगी। इसके लिए संसार के राष्ट्रों और लोगों के बीच अंतर्राष्ट्रीय समझ की बड़ी आवश्यकता है, क्योंकि कुछ देशों द्वारा प्रदूषित वायु का दुष्प्रभाव अन्य देशों पर भी पड़ता है। ऐसी समझ से पृथ्वी पर मानव का आवास सुरक्षित और निश्चित हो सकेगा।

स्वाध्याय

पुनरावृत्ति प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षेप में उत्तर दीजिए–

(1) क्षेत्र विकास को प्रभावित करने वाले तीन कारकों के नाम लिखिए।

(2) साधन-विकास में विशिष्टीकरण के क्या कारण हैं?
(3) क्षेत्र विकास में मनुष्य की भूमिका की विवेचना कीजिए।
(4) विकास में विषमताएँ कम करने के कौन से उपाय हैं?
(5) चांग जिआंग डेल्टा प्रदेश के प्राकृतिक पर्यावरण का विवरण लिखिए।
(6) चांग जिआंग डेल्टा प्रदेश की कृषि की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
(7) उत्तर-पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका के औद्योगीकरण के कारणों की विवेचना कीजिए।

2. समय के अनुसार क्षेत्र विकास में परिवर्तन कैसे होता है? वर्णन कीजिए।
3. चांग जिआंग डेल्टा में विकास की प्रकृति का विस्तृत विवरण लिखिए।
4. उत्तर-पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका के क्षेत्र विकास में प्राकृतिक पर्यावरण की भूमिका की विवेचना कीजिए।

स्वयं करें और खोजें

1. अपने स्कूल के पास पड़ोस के क्षेत्र का अध्ययन करिए तथा साधनों के विकास में आई नई प्रवृत्तियों को नोट कीजिए।
2. किसी क्षेत्र का अध्ययन करके, वहाँ भूमि के उपयोग में आए परिवर्तन की जानकारी प्राप्त कीजिए।

पठनीय पुस्तकें

1. कैनेथ आर.सीले एण्ड हेनरी रीस : रीजनल स्टडीज ऑफ दि यूनाइटेड स्टेट्स एण्ड कनाडा, ज्यार्ज जी. हैरप एण्ड कंपनी लिमिटेड, लंदन।
2. हार्म जे.डी.ब्ल्यू : मैन शेप्स दि अर्थ—ए टॉपिकल ज्याग्रफी, हैमिल्टन पब्लिशिंग कंपनी, यू.एस.ए.।
3. एस्मंड राइट : दि वर्ल्ड टुडे, मैग्राहिल बुक कंपनी, इंग्लैंड।

परिशिष्ट

परिशिष्ट I

धरातल पर सूर्य की किरणों के गिरने का कोण तथा दिन के प्रकाश की अवधि

अक्षांश	21 सितम्बर अथवा 21 मार्च		21 जून		22 दिसम्बर	
	प्रकाश की अवधि	किरणों का कोण	प्रकाश की अवधि	किरणों का कोण	प्रकाश की अवधि	किरणों का कोण
90° उ०	12 घण्टे	0°	24 घण्टे	23°30′	0	0
66°30′ उ०	12 घण्ट	23°30′	24 घण्टे	47°	0	0
50° उ०	12 घण्टे	40°	16 घण्टे 18 मिनट	63°30′	7 घण्टे 42 मिनट	16°30′
23°30′ उ०	12 घण्टे	66°30′	13 घण्टे 27 मिनट	90°	10 घण्टे 33 मिनट	43°
0°	12 घण्टे	90°	12 घण्टे	66°30′	12 घण्टे	66°30′
23°30′द०	12 घण्टे	66°30′	10 घण्टे 33 मिनट	43°	13 घण्टे 27 मिनट	90°
50°द०	12 घण्टे	40°	7 घण्टे 42 मिनट	16°30′	16 घण्टे 18 मिनट	63°30′
66°30′द०	12 घण्टे	23°30	0	0	24 घण्टे	47°
90°द०	12 घण्टे	0°	0	0	24 घण्टे	23°30′

परिशिष्ट

विभिन्न जलवायु-प्रकार के प्रतिनिधि स्थानों के लिए जलवायु सबन्धी

क्रम संख्या	जलवायु-प्रकार	स्थान	स्थिति	ऊँचाई (मीटरों में)		ज.	फ.	मार्च
1.	विषुवतीय	सिंगापुर	1° उ०	3	ता०	26.7	26.7	27.2
			104° पू०		व०	25.1	16.8	18.8
2.	उष्ण कटिबंधी बरसाती	मनिला	15° उ०	14	ता०	25.0	25.6	26.7
			121° पू०		व०	2.0	1.0	2.0
3.	मानसूनी	मुबंई	19° उ०	11	ता०	24.4	24.4	26.7
			73° पू०		व०	0.2	0.2	
		दिल्ली	29° उ०	219	ता०	14.4	16.7	23.3
			77° पू०		व०	2.5	1.5	1.3
4.	गर्म मरुस्थलीय	जकोबाबाद	28° उ०	57	ता०	13.9	16.7	23.9
			68° पू०		व०	0.8	0.8	0.8
5.	उष्ण कटिबंधी	अस्वान	24° उ०	99	ता०	15.0	17.2	21.1
			33° पू०		व०	—	—	—
		सेलिस्बरी	18° द०	1480	ता०	21.1	20.6	20.0
			31° पू०		व०	19.0	18.8	11.4
6.	उष्ण शीतोष्ण कटिबन्धी पश्चिमी तट तुल्य	सैनफ्रांसिस्को	38° उ०	47	ता०	9.4	10.6	11.7
			122° प०		व०	12.2	9.1	7.9
		एडिलेड	35° द०	43	ता०	23.3	23.3	21.1
			139° पू०		व०	1.8	1.8	2.5
7.	उष्ण शीतोष्ण कटिबंधी पूर्वी तट तुल्य	ब्युनस आयर्स	35° द०	25	ता०	23.3	22.8	20.6
			58° प०		व०	7.9	6.9	11.2
8.	उष्ण शीतोष्ण कटिबन्धी महाद्वीपीय	तेहरान	36° उ०	1220	ता०	1.1	5.6	8.9
			51° पू०		व०	4.1	2.5	4.8
		लेह	34° उ०	350	ता०	8.3	-7.2	—0.6
			78° पू०		व०	1.0	0.8	0.8